DINKAR KA GADHYA SAHITHYA-EK ADHYAYAN

Thesis submitted to
Cochin University of Science and Technology
for the Degree of

Doctor of Philosophy

By

ALIAS P. P.

G5632

Supervising Teacher

Dr. P. V. VIJAYAN
Dean Faculty of Humanities

Prof. & Head, Department of Hindi

Dr. M. EASWARI

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

1994

C E R T I F I C A T E

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by Alias P.P. under my supervision for Ph.D degree and no part of this has hitherto been submitted for a Degree in any University.

Prof. (Dr.) P.V. Vijayan,
(Supervising Teacher),
Deen Faculty of Humanities,
Cochin University of
Science & Technology.

Kochi - 682 022
4th August 1994.

प्राक्कथन

महाकवि श्री रामधारी सिंह दिनकर हिन्दी के असाधारण प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं । वे साहित्य की सभी विधाओं में रचनारत रहे । उनके काव्य साहित्य का अनुशीलन अनेक दृष्टियों से हुआ है, लेकिन उनकी गद्य कृतियों का ऐसा विस्तृत विवेचन नहीं हुआ है । दिनकर जी का गद्य साहित्य अत्यन्त समृद्ध है और यह विविध विधाओं में व्याप्त है । उनके गद्य साहित्य का मूल्यांकन किया जाये तो विषय-चयन, भाषा शैली और मौलिकता की दृष्टि से हिन्दी गद्य साहित्य में दिनकर का स्थान ऊँचा ठहरता है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में दिनकर के गद्यसाहित्य के विवेचन का प्रयास किया गया है ।

प्रबंध के प्रथम अध्याय में दिनकर जी के जीवन-वृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है । साहित्यकार की कृति के अध्ययन के लिए उनके व्यक्तित्व को समझ लेना आवश्यक है । इसलिए हमने दिनकर के व्यक्तित्व के दोनों पक्षों - बाह्य एवं आन्तरिक - को उभारने का प्रयास किया है । इसके साथ ही साथ दिनकर जी की समस्त साहित्यिक कृतियों पर विहंगम दृष्टिपात भी किया गया है ।

प्रबंध के द्वितीय अध्याय में दिनकरजी के आलोचना साहित्य का विस्तृत अध्ययन हुआ है । दिनकरजी की मूल्य-दृष्टि सक्रिय और संवेदनात्मक होने के कारण मानवीय अस्तित्व के साथ संपृक्त है । इसलिए उनके सिद्धान्त काल सापेक्ष होते हुए भी कालातीत है । इस अध्याय में हमने दिनकर जी की साहित्यिक मान्यताओं एवं प्रतिमानों का प्रतिपादन करते हुए उनके आलोचना साहित्य की उपलब्धियों का मूल्यांकन किया है ।

दिनकर के निबंधों में विषय वस्तु की गहनता, व्यापकता और विविधता मिलती हैं और ये विशेषताएँ उनके निबंधों की महत्ता का प्रतिपादन करने में पूर्ण सक्षम है । अतः एक सफल और श्रेष्ठ निबन्धकार होने के नाते भी उनका मूल्यांकन अपेक्षित है । उनके यात्राविवरण और डायरी भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । त्रितीय अध्याय में दिनकर जी के निबंध, यात्रा विवरण और डायरी का विवेचन किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय में हमने दिनकर जी की सांस्कृतिक, संस्मरणात्मक और अन्य गद्य रचनाओं का विवेचन किया है । इसमें सांस्कृतिक और संस्मरणात्मक रचनाओं के अतिरिक्त दिनकर जी के गद्य काव्य, रेडियो रूपक और बाल कथा साहित्य पर विचार किया गया है ।

संपूर्ण साहित्य और उनकी विधाओं की अभिव्यक्ति का आधार भाषा ही है । शैली व्यक्ति के व्यक्तित्व की परिचायक होती है । दिनकर जी कठिन से कठिन विषय को यथासाध्य सहज शब्दों में व्यक्त करने के पक्षपाती थे । हमने पाँचवाँ अध्याय में दिनकर जी के गद्य साहित्य की भाषा एवं शैली का विस्तृत अध्ययन किया है ।

उपसंहार में हमने दिनकर जी के विविध विधाओं में व्याप्त गद्य साहित्य का मूल्यांकन किया है । इसमें पूरी रचना का सूक्ष्म अवलोकन करते हुए हमने हिन्दी गद्य साहित्य में दिनकर जी का क्या स्थान है, गद्य साहित्य में उनका क्या विशेष योगदान है, उसे व्यक्त करने का प्रयत्न किया है ।

इस शोध प्रबंध का प्रणयन कोचिन विश्व पिद्यालय के प्रोफेसर डा. पी. वी. विजयन के सफल निर्देश में हुआ । उन्होंने अत्यधिक स्नेह के साथ समय समय पर हमें उपदेश दिये हैं और ठीक रास्ता दिखाया है । हमारा यह शोध प्रबंध उनकी प्रेरणा और आशीर्वाद का परिणाम ही है । अतः हम उनके प्रति आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं ।

कोचिन विश्वविद्यालय की हिन्दी विभागीय अध्यक्षा डा. ईश्वरी ने भी इस प्रबंध के चयन में हमें बहुत अधिक प्रेरणा दी है । हम उनका भी आभारी हैं ।

उन सभी मनीषियों का भी हम कृतज्ञ हैं जिनके ग्रंथों का अध्ययन कर हम इस कार्य में पूर्ण रूप से सफल हो सके हैं । हम उन सभी गुरुजनों तथा मित्रों का आभार स्वीकार करते हैं जिन्होंने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में इस प्रबंध के चयन में सहायता दी है ।

हिन्दी विभाग
कोचिन विश्व विद्यालय
कोचिन पिन-682022

एलियास. पी. पी.

ता.

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

अध्याय - एक — 1 - 69

दिनकर - जीवन रेखा एवं रचना-यात्रा

दिनकर का जन्म - बचपन - शिक्षा - नौकरी - रचना-यात्रा- काव्य कृतियाँ - रेणुका - हुंकार - रसवंती - द्वन्द्वगीत - सामधेनी - बापू - इतिहास के आँसू - कुरुक्षेत्र - रश्मिरथी - उर्वशी - आलोचनात्मक रचनाएँ - मिट्टी की ओर - काव्य की भूमिका - शुद्ध कविता की खोज - पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण- साहित्यमुखी - वेणुवन - वट-पीपल - रेती के फूल - चेतना की शिखा - अर्धनारीश्वर - चक्रवाल{भूमिका} - निबंध संग्रह - धर्म, नैतिकता और विज्ञान - आधुनिक बोध - विवाह की मुसीबतें - राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता - राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गाँधीजी - मेरी यात्रायें - देश-विदेश - दिनकर की डायरी - संस्कृति के चार अध्याय - भारत की सांस्कृतिक कहानी - हमारी सांस्कृतिक एकता - भारतीय एकता - लोकदेव नेहरू - संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ - हे राम - उजली आग - चित्तौर की साका ।

अध्याय - दो — 70 - 12

दिनकर का आलोचना साहित्य

आलोचना-साहित्य का स्वरूप - हिन्दी आलोचना साहित्य का उद्भव एवं विकास - आधुनिक काल - भारतेन्दु युग - द्विवेदी युग - शुक्ल युग - स्वच्छन्दतावादी समीक्षा - प्रगतिवादी समीक्षा - मनोविश्लेषणवादी समीक्षा - स्वच्छन्द समीक्षा - नई समीक्षा - दिनकर का आलोचना साहित्य - सैद्धांतिक आलोचना -

पृष्ठ संख्या

काव्य का स्वरूप - काव्य की आत्मा - काव्य-हेतु - काव्य के तत्त्व - काव्य का प्रयोजन - काव्य के भेद - काव्य भाषा- काव्य में छन्द - काव्य की रचना प्रक्रिया - व्यावहारिक आलोचना - छायावाद - प्रगतिवाद - छायावादोत्तर कविता- प्रयोगवाद - नई कविता - भविष्य की कविता - विद्यापति - मैथिलीशरण गुप्त - जयशंकर प्रसाद - सुमित्रानंदन पंत - महादेवी वर्मा - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ।

अध्याय - तीन 127 - 203

दिनकर का निबंध साहित्य

हिन्दी निबंध साहित्य का स्वरूप एवं विकास - दिनकर के निबंध- साहित्यिक निबंध - सामाजिक निबंध - धर्म नैतिकता और विज्ञान से संबंधित निबंध - राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रीय एकता से संबंधित निबंध - शिक्षा संबंधी निबंध - राष्ट्रीयता और अंतर्राष्ट्रीयता से संबंधित निबंध - आधुनिकता संबंधी निबंध - भावात्मक निबंध - दिनकर के यात्रा विवरण - दिनकर की डायरी ।

अध्याय - चार 204 - 248

दिनकर की अन्य गद्य रचनाएँ

दिनकर की सांस्कृतिक रचनाएँ - लोकदेव नेहरू - अन्य संस्मरणात्मक निबंध - गद्य-काव्य - उजली आग - रेडियो रूपक - हे राम - बाल-कथाओं का संग्रह - चित्तौर की साका ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय - पाँच 249 - 270

दिनकर का गद्य शिल्प

दिनकर की गद्य-शैली - विचारात्मक शैली - विवेचनात्मक शैली - विवरणात्मक शैली - भावात्मक शैली - काव्यात्मक शैली - व्यंजनात्मक शैली - सूक्ति शैली - व्यंग्यात्मक शैली- भाषा

उपसंहार 271 - 28

व्यक्तित्व और कृतित्व - आलोचक दिनकर - दिनकर की निबंध कला - यात्रा-विवरण - दिनकर की डायरी - सांस्कृतिक रचनाएँ - संस्मरण लेखक - अन्य गद्य रचनाएँ - मूल्यांकन

ग्रंथ-सूची 282 - 2

अध्याय - एक

दिनकर - जीवन रेखा एवं रचना - यात्रा

हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार श्री रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 1908 में 30 सितम्बर को बिहार प्रांत के सिमरिया नामक ग्राम के एक कृषक परिवार में हुआ । दिनकर जब दो साल के हुए तब पिता रविसिंह की अकाल मृत्यु हुई । माता मनरूप देवी ने दिनकर के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध किया । घर में दिनकर का बडा भाई श्री बसन्त सिंह तथा छोटा भाई सत्य नारायण सिंह भी थे । इन तीनों के पालन-पोषण का भार विधवा माँ पर पडा था । दिनकर का बचपन अवश्य बडी आर्थिक कठिनाईयों में बीता । उनके जीवन के इस युग के संबंध में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती । शायद इसलिए डॉ. मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है - "सच तो यह है कि यह उनके जीवन का अज्ञात युग है, जिस पर कहीं से रोशनी नहीं पडी, पर इसी युग में उनके उस मानस की सृष्टि हुई, जिसमें अपने परिवार के प्रति प्रतिबद्धता उनकी मानसिकता का सबसे प्रबल नहीं तो अत्यन्त प्रबल घटक बन गयी ।"[1] यह तो सच है कि वे एक सामान्य किसान परिवार में जन्मे, अभावों में पले-बढे और क्रमशः उच्चतर स्थितियों तक पहुँचे ।

दिनकर के व्यक्तित्व के निर्माण में उनकी माँ और पत्नी के त्याग और बलिदान का महत्वपूर्ण योग रहा है । दिनकर ने अपनी माता के प्रति भक्ति, प्रेम और आदर यों प्रकट किया है - "माँ तो मूर्तिमति करूणा हैं । उन्होंने हम लोगों के लिए अपने को होम दिया । मुझे ऐसी कोई घटना नहीं

---

1. अपने समय का सूर्य दिनकर - डा. मन्मथनाथ गुप्त - पृ. 1

याद है जिससे मुझे कोई अभाव झेलना पडा था ।"[1] दिनकर की शादी किशोरावस्था में ही हुई थी । तब से पत्नी श्यामा पूरे दिल से उनकी सेवा-शुश्रूषा करती रही । "वह अपने को मिटाकर दिनकर को बनाती रही । युवावस्था में भोग के स्थान पर विराग ही उसके जीवन का सत्य बन गया ।"[2] अपनी पत्नी के स्नेहपूर्ण व्यवहार से प्रभावित होकर दिनकर ने लिखा -

"तुम सखी इन्द्रपुरी के तन में सावित्री का मन लाई ।
ताप-तप्त मरू में मेरे हित शीत-स्निग्ध जीवन लाई ।"[3]

दिनकर के चार संतान थीं - दो बेटे (रामसेवक सिंह और केदारनाथ सिंह) और दो बेटियाँ (विनता और विभा) । दिनकर में अपने परिवार के प्रति प्रतिबद्धता थी । वे सही अर्थ में एक पारिवारिक जीव थे - "दिनकर पारिवारिक जीव हैं तथा परिवार के प्रति अपने दायित्वों के प्रति वे पूर्ण सजग है । वे एक कुशल गृहपति तथा बडे ही स्नेही पिता, पुत्र और पति हैं । परिवार से घुले-मिले होने के कारण उनके जीवन में रास्ते से बेरास्ते होने की गुंजाइश नहीं होती ।"[4] (श्री गंगा सरन सिंह - डा. सावित्री सिन्हा द्वारा किये गये इन्टरव्यू में दिये हुए वक्तव्य से)

सिमरिया की प्रकृति और अपने परिवार का प्रभाव दिनकर के हृदय पर पडा था । कृषक परिवार में जन्म लेने के कारण कृषकों की

---

1. युग चारण दिनकर - डा. सावित्री सिन्हा - पृ. 2
2. युग चारण दिनकर - डा. सावित्री सिन्हा - पृ. 2
3. रसवंती - रामधारी सिंह दिनकर - पृ. 43
4. युग चारण दिनकर - डा. सावित्री सिन्हा - पृ. 4 से उद्धृत

समस्याओं से वे खूब परिचित थे । इसलिए अपने गाँव के गरीब किसानों का जीवन उनकी कल्पना से अभिन्न हो गया । "वास्तव में दिनकर की कविता में अत्याचार, अनाचार, शोषण और सामाजिक वैषम्य के प्रति जो विद्रोह का भाव व्यक्त हुआ है उसकी प्रेरणा के बीज सिमरिया की शोषित, पीडित, निर्धन जनता के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं में विद्यमान है ।"[1]

सिमरिया गाँव तो गंगा के उत्तरी तट पर स्थित है । दिनकर बचपन से मौसमों के बदलने के साथ रूप और रंग बदलनेवाली गंगा को देख आये थे । इसी गंगा को पार करके मोकामाघाट के स्कूल जाना पडता था । गंगा के शांत, सुन्दर एवं भयानक रूपों से दिनकर परिचित थे । सिमरिया की प्रकृति से वे घुल-मिल गये थे । उनके व्यक्तित्व के निर्माण में इस गाँव की प्रकृति का बडा हाथ रहा । "सिमरिया की प्रकृति हलचलपूर्ण और जीवन से भरी हुई थी, उसका संबन्ध केवल चिन्तन और कल्पना से नहीं, वहाँ के वासियों के अस्तित्व मात्र से था । मानव और प्रकृति एक दूसरे पर निर्भर थे । दिनकर को बचपन से ही उसकी गतिविधियों से बडा रस आता ।"[2]

दिनकर की आरंभिक शिक्षा का कार्य गाँव की पाठशाला में हुआ । उनका अधिकांश जीवन-काल बाधा-विषमताओं से जूझने तथा प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करने में व्यतीत हुआ । आर्थिक कठिनाई एवं प्रकृति जन्य विषमताओं को झेलते हुए उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की । दिनकर के लिए

---

1. युग चारण दिनकर - डा. सावित्री सिन्हा - पृ. 6
2. युग चारण दिनकर - डा. सावित्री सिन्हा - पृ. 4

विधा कठिन साधना की वस्तु बन गयी । "प्रारंभ-काल से ही विधार्जन दिनकर के लिए साधना के रूप में आया । यह साधना यद्यपि परिस्थिति जन्य थी, परन्तु उसने उनको एक कर्मठ जीवन दर्शन प्रदान किया जिसके फलस्वरूप आज वह इतने निर्भीक साहित्यकार बन सके हैं ।"[1]

प्रारंभिक शिक्षा के पश्चात् दिनकर ने बारो नामक गाँव की एक राष्ट्रीय पाठशाला में शिक्षा प्राप्त की । यहाँ के स्वस्थ वातावरण ने उन्हें एक स्वस्थ एवं उदार दृष्टि प्रदान की । इस राष्ट्रीय पाठशाला के संस्कार उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हो गये । सन् 1922 में राष्ट्रीय पाठशाला के बंद हो जाने पर दिनकर को राजकीय मिडिल स्कूल में जाना पडा । 1928 में मैट्रिक पास करने के बाद वे पटना आए । 1932 में इतिहास में आनेर्स के साथ बी.ए.की परीक्षा उत्तीर्ण की ।

बचपन से ही साहित्य जगत् की ओर दिनकर आकर्षित हुए । मैट्रिक के समय "युवक" के संपादक श्री बेनीपुरी, "युवक-संघ" के अन्य कार्यकर्त्ता श्री गंगा सरन्, जनार्दन मिश्र तथा विश्व मोहन से संपर्क प्राप्त हुआ । "युवक" पत्र में दिनकर की आरंभिक कविताएँ प्रकाशित हुई । उन दिनों दिनकर अमिताभ के नाम से लिखते थे । दिनकर के कविता पाठ से अभिभूत होकर बाबू गंगा सरन् सिंह ने कहा था - "जैसे सयाने और ओझा के चलते व्यक्ति अपने में नहीं रह जाता किसी दूसरी सत्ता से अभिभूत होकर उसका व्यक्तित्व ही दूसरा हो जाता है उसी प्रकार दिनकर भी कविता पढते समय शरीर और मन से कहीं और पहुँच जाते हैं ।"[2]

---

1. युग चारण दिनकर - डा. सावित्री सिन्हा - पृ. 5
2. युग चारण दिनकर - डा. सावित्री सिन्हा - पृ. 8

दिनकर के छात्र जीवन में जो सरलता थी वह आजीवन उनके साथ रही । विदेशी पोशाक के प्रति कभी उनका कोई आकर्षण नहीं रहा । भारत की जन सामान्य की सरलता उनके जीवन का भी अंग बन गयी थी । "मोटी धोती, मोटी मारकीन का कुरता, कन्धे पर चादर और कभी-कभी देहाती कट का मामूली जूता, यही उनकी पोशाक थी ।"[1] अपने विद्यार्थी जीवन में दिनकर एक सफल एवं समर्थ विद्यार्थी रहे । लेकिन धीरे-धीरे उनका ध्यान कविता और साहित्य पर अधिक होने लगा । वास्तव में दिनकर की संघर्षमय ज़िन्दगी यहीं शुरू होती है ।

दिनकर का पूरा बचपन राष्ट्रीय-आन्दोलन के वातावरण में गुज़रा था । पिता की मृत्यु के बाद उनको संघर्षमय जीवन बिताना पडा । बडे लोगों ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया । इसलिए वे जीवन के उषाकाल में ही ज़मीन्दारी प्रथा के विरुद्ध हो गये । उस समय की राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ उनके संवेदनशील व्यक्तित्व को चुनौती देनेवाली थीं । ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दमन-चक्र से समस्त देश में संकट एवं संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई थी । दिनकर ने सन् 1930 में नमक सत्याग्रह में भाग लेने का निश्चय किया । चार महीने तक उस आन्दोलन में वे सक्रिय भाग ले सके । लेकिन परिवार के दायित्व ने उन्हें नौकरी ढूँढने को बाध्य कर दिया । उन्हें एक हाईस्कूल में हेडमास्टरी का पद मिला । लेकिन स्कूल के चेयरमैन और मन्त्री से उनका मतभेद हो गया क्योंकि वे लोग साम्राज्यवाद के पक्षपाती बडे बडे ज़मीन्दार थे । आखिर विवश होकर 1934 में दिनकर ने बिहार सरकार के अधीन सब-रजिस्ट्रारी की । लेकिन वातावरण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ । राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत उस समय की उनकी रचनायें सरकार की

---

1. युग चारण दिनकर - डा. सावित्री सिन्हा - पृ. 8

दृष्टि में विद्रोह की कविताएँ थीं ।

द्वितीय महायुद्ध के समय दिनकर को बड़े मानसिक द्वन्द्व का सामना करना पड़ा । सरकार की युद्ध-नीति का समर्थन करना वे नहीं चाहते थे । इस स्थिति में दिनकर बातचीत में युद्ध का समर्थन करते थे और कविताओं में सरकार के खिलाफ लिखते थे । उस समय का उनका अहं-केन्द्रित द्वन्द्व "सामधेनी" की एक कविता में व्यक्त हुआ है -

"ओ अशेष ! निःशेष बीन का एक तार था मैं ही !
स्वर्भू की सम्मिलित गिरा का एक द्वार था मैं ही !
तब क्यों बाँध रखा कारा में ?
कूद अभय उत्तुंग श्रृंग से
बहने दिया नहीं धारा में
लहरों की खा चोट गरजता,
कभी शिलाओं से टकराकर
अहंकार प्राणों का बजता !"[1]

सन् 1950 में दिनकर राजकीय पोस्ट ग्रेजुएट कालेज में हिन्दी विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए । वहाँ उनको एक खुला वातावरण मिला । सन् 1952 ई. में वे राज्यसभा के कांग्रेसी सदस्य बन गये । लेकिन दिनकर ने अपने भीतर के साहित्यकार को निगलने का अवसर राजनीति को नहीं दिया । 1964 में वे भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति बन गये । इसी बीच दिनकर कई विदेश यात्रायें भी कर चुके थे । अनेक साहित्यिक सम्मान भी वे प्राप्त कर चुके थे ।

---

1. सामधेनी - रामधारी सिंह दिनकर - पृ. 7

जीवन के इन व्यस्त क्षणों में भी उनके भीतर का साहित्यकार हमेशा सक्रिय रहा ।

हिन्दी के इस प्रतिभावान् कलाकार का स्वर्गवास बुधवार 24 एप्रैल 1974 ई. में हुआ । आखिर हिन्दी साहित्याकाश का दिनकर सदा केलिए अस्ताचलगामी हो गया ।

दिनकर का जीवन साधना एवं समझौते की कहानी है । वे परिस्थितियों से केवल जूझना ही नहीं समझौता करना भी जानते थे । कहा जाता है, प्रत्येक व्यक्ति के निर्माण में परिस्थितियों का हाथ रहता है । दिनकर का जीवन भी परिस्थितियों के अनुसार ढला हुआ है । स्वयं दिनकर ने लिखा है - "मेरे व्यक्तित्व की रचना भी परिस्थितियों के कारण हुई होगी । मैं न तो सुख में जनमा था, न सुख में पलकर बढा हूँ । किन्तु मुझे साहित्य में काम करना है यह विश्वास मेरे भीतर छुटपन से पैदा हो गया था । इसलिए ग्रेजुएट होकर जब मैं परिवार की रोटी अर्जित करने में लग गया तब भी साहित्य की मेरी साधना चलती रही ।"[1]

जीवन के दोनों-वैयक्तिक तथा साहित्यिक- क्षेत्रों में कवि को संघर्ष करना पडा । लेकिन संघर्ष की कटुता से दिनकर का व्यक्तित्व विश्रृंखल और लक्ष्यभ्रष्ट नहीं हुआ । उनके अन्दरवाली सात्विकता को ठेस नहीं पहुँची । लेकिन इसके साथ यह भी सत्य है कि इन संघर्षों ने दिनकर को किसी हद तक कठोर अवश्य बना दिया है ।

---

1. दिनकर सृष्टि और दृष्टि - डा. मन्मथनाथ गुप्त - पृ. 18

दिनकर सचमुच एक क्रांतिवादी कवि हैं । वे मानव-प्रेम के प्रतिनिधि है । महात्मा गाँधी के विराट् व्यक्तित्व का प्रभाव दिनकर पर पडा था । उन्होंने गाँधीजी पर एक कविता भी लिखी थी । लेकिन दिनकर का हार्दिक समर्थन क्रांतिकारी नवयुवकों को ही प्राप्त था । अपनी पहली रचना "बारदोली विजय" में ही दिनकर ने राष्ट्रीयता और विद्रोह की लीक पकड ली थी । दिनकर के भीतर धधकनेवाली क्रांति की ज्वाला "जयप्रकाश" नामक कविता में प्रकट हुई । यह कविता सत्तारूढ कांग्रेस के खिलाफ लिखी गई थी । समस्त मानव समाज को दृष्टि में रखकर दिनकर ने अपनी रचनाओं में क्रांति का सन्देश दिया है । दिनकर इस दृष्टि से एक सफल जनवादी कवि हैं ।

व्यक्तित्व

दिनकर जी एक प्रखर कवि, साहित्यकार और चिन्तक के रूप में हिन्दी जगत् में व्याप्त रहे । वे मूलतः राष्ट्रीयता, शौर्य, तेज़ और पौरुष के कवि के रूप में जनता का प्यार पाते रहे । "गोरा-चिट्टा रंग, लंबाई पाँच फुट ग्यारह इंच, भारी भरकम शरीर, बडी बडी आँखें, ललकार भरी बुलन्द आवाज़, तेज़ चाल और क्षिप्र बुद्धि - ये हैं वे बहिरंग विशेषतायें जिनसे दिनकर का व्यक्तित्व बना है ।"[1]

गद्य हो अथवा पद्य, भाषण हो अथवा वार्तालाप, हर जगह दिनकर जी अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति अत्यन्त ही शक्त एवं जीवन्त भाषा के माध्यम से करते थे । वे अत्यन्त अध्ययनशील और चिन्तनशील भी थे । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समसामयिक परिस्थितियों का विश्लेषण वे

---

1. अपने समय का सूर्य दिनकर - डा. मन्मथनाथ गुप्त - पृ. 1

अपनी कविताओं, निबन्धों एवं अन्य गद्य रचनाओं में जिस खूबी के साथ करने में माहिर थे, वह अपने आप में एक अनोखी मिसाल है ।

साहित्य दिनकर जी का प्रधान क्षेत्र था, जिसपर उनका सारा यश निर्भर था । अतः अपने साहित्य की जो दशा उन्होंने निर्धारित की थी, उसे दमघोंटू वातावरण में साँस लेते हुए भी अक्षुण्ण रखा । सरकारी फाईलों पर कलम घिसते हुए भी कागज़-कलम लेकर राष्ट्रीयता, विद्रोह और क्रांति की निर्भीक आवाज़ भरी पंक्तियाँ वे जोडते रहे ।

दिनकर के व्यक्तित्व में धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति गहरी आस्था और विद्रोह के प्रति सहज सम्मान ये दोनों तत्व निहित थे । डा. गोपालराय ने लिखा है - "कलाकार की हैसियत से दिनकर को मैं सबसे अधिक ईमानदार पाता हूँ । दिनकर अपनी भावनाओं की सीमा छोडने को कहीं भी तैयार नहीं, कहीं भी आरोपित विश्वासों एवं मान्यताओं का सहारा दिनकर ने नहीं लिया ।"[1]

ईमानदार होने के साथ दिनकर विनयशील भी है । विनय उनका स्वभाव सिद्ध गुण है । अपनी महिमा पर वे बहुत कम ध्यान देते हैं । उनमें जुआरी की हिम्मत है । उनमें क्रोध और भावुकता दोनों का मिश्रण है । "दिनकर मूलतः भावप्रवण व्यक्ति है । अधिकतर उनकी प्रतिक्रियायें विवेकात्मक न होकर भावात्मक होती है, इसी कारण उग्रता के प्रति उनका सहज आकर्षण रहा है ।"[2]

---

1. समीक्षा - डा. गोपाल राय - मई-जून-1974 - पृ. 2,3
2. युग चारण दिनकर - डा. सावित्री सिन्हा - पृ. 25

दिनकर के व्यक्तित्व में संवेदनशीलता, द्रवणशीलता, क्रोध और दया की भावनायें सामान्य से अधिक है । कहा जाता है कि क्रोध उनकी सृजनात्मक प्रक्रिया का मूल प्रेरणा-स्रोत रहा है । स्वयं दिनकर ने कहा है - "क्रोध सामाजिक काव्य का मूल रहा है । सन्तुष्ट कवि कविता नहीं उपदेश और आराधना लिखता है ।"[1] दिनकर के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए बेनीपुरी जी ने हुंकार की भूमिका में एक सूक्ति कही थी, "अंगारे जिन पर इन्द्रधनुष खेल रहे हैं ।"[2] डा. यतीन्द्र तिवारी ने दिनकर के व्यक्तित्व को छायावादी कवियों के बहुमुखी व्यक्तित्व का समाहार मानते हुए लिखा है - "कवि दिनकर का व्यक्तित्व छायावादोत्तर युग में एक ऐसा मेरूदण्ड है जिसमें छायावादी कवियों के बहुमुखी व्यक्तित्व का समाहार मिलता है । दिनकर ऐसे ही साहित्य सृष्टा हैं जो अपने युग की विचार धारा और भाषा का प्रतिनिधित्व करते हैं । उनके व्यक्तित्व पर साहित्यिक प्रतिभा हावी रही है ।"[3] डा. नगेन्द्र ने आस्था के चरण में दिनकर के काव्य सिद्धांतों की चर्चा करते हुए उनके व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला है । नगेन्द्र के अनुसार "दिनकर का व्यक्तित्व अनुभूतिप्रधान है, साथ ही गत्यात्मक भी । द्विविधा उनके व्यक्तित्व में व्यक्त है ।"[4]

दिनकर अत्यधिक चिंतनशील, मननशील और अध्ययनशील कलाकार हैं । उनका व्यक्तित्व बडा ही आस्था संपन्न और ऊर्जस्वित था ।

---

1. रामधारी सिंह दिनकर - डा. मन्मथनाथ गुप्त - पृ. 35
2. हुंकार की भूमिका - श्री बेनी पुरी - पृ.
3. दिनकर की काव्य भाषा - डा. यतीन्द्र तिवारी
4. आस्था के चरण - डा. नगेन्द्र - पृ.

उनके इस प्राणवान व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी सभी रचनाओं पर पडा है । उनकी निर्भीकता की स्पष्ट छाप उनकी कविता एवं आलोचना में प्राप्त होती है । दिनकर हमेशा स्पष्टता के प्रेमी रहे । चक्रवाल की भूमिका में अपनी इस निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता को उन्होंने प्रकट किया है । - "कविता के संबंध में अब जो मेरे मत हैं, उनकी कसौटी पर मेरी अपनी कविताएँ खंडित हो जाती है ।..... अपनी कविताओं की हित हानि के भय से अपने मतों को दबा रखना मुझे अच्छा नहीं लगा ।"[1]

जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त दिनकर जी का पुरा जीवन संघर्षों एवं दायित्वों से भरा रहा । दिनकर की रचनात्मक शक्ति इसी विरोध एवं संघर्ष से उद्दीप्त हुई । दिनकर क्रांति के संदेशवाहक मानवतावादी कवि रहे । दिनकर का व्यक्तित्व अत्यन्त गत्यात्मक था । साहित्य के क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकसित होने की प्रवृत्ति दिनकर के इस गत्यात्मक व्यक्तित्व का प्रभाव है । उनकी रचनाओं में उनका इन्द्रधनुष वर्ण व्यक्तित्व प्रबल रूप से वर्तमान है ।

दिनकर मूलत: कवि थे और एक कवि के रूप में ही उन्हें अधिक ख्याति प्राप्त हुई । उनका गद्य साहित्य भी विशेष महत्व का है । देश के स्वाधीन होने के समय वे हिन्दी के एक प्रमुख और प्रतिष्ठित साहित्यकार थे । उनकी रचनाएँ राष्ट्रीय आन्दोलन की समसामयिक गतिविधियों से अभिन्न रूप से संबद्ध रही थीं । कहा जाता है कि वे अपने समय के हाथ में पडी हुई बंशी थे जिसमें उनका काल अपने को अभिव्यक्त करता था । दिनकर का साहित्य अधिकांशत: उनकी व्यक्तिगत एवं बाह्य परिस्थितियों से नियंत्रित रहा है । स्वातन्त्र्योत्तर काल में दिनकर साहित्य के क्षेत्र में न केवल सक्रिय रहे

---

1. चक्रवाल की भूमिका - डा. रामधारी सिंह दिनकर - पृ.

बल्कि उनके व्यक्तित्व का ठीक ठीक दिशा में विकास हुआ । उन्होंने अपने को निरन्तर नया बनाने का प्रयत्न किया और इस कार्य में सफलता प्राप्त की ।

आगे के पृष्ठों में दिनकर की रचनायात्रा का विश्लेषण किया जायेगा । हमारा विचार है, परिस्थितियों का प्रभाव व्यक्तित्व पर और व्यक्तित्व का प्रभाव रचनाओं पर पडता है । उसी तरह किसी साहित्यकार की रचनाओं को ठीक तरह से समझने के लिए उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आपसी संबन्ध को समझना भी आवश्यक है । दिनकर की गद्य रचनाओं पर उनके कवि व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य पडा है । इसलिए यहाँ गद्य रचनाओं के साथ साथ उनकी मुख्य काव्य-कृतियों का संक्षिप्त विवरण भी दिया गया है ।

दिनकर की रचना-यात्रा

दिनकर के तैंतीस (33) काव्य-संग्रह एवं सत्ताईस (27) गद्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं जो उनके विस्तृत रचना-क्षेत्र का गवाह देते हैं । दिनकर की कृतियों का विषयगत वर्गीकरण इस तरह हो सकता है - (1) काव्य कृतियाँ (2) आलोचनात्मक रचनायें (3) निबंध, यात्राविवरण और डायरी (4) संस्कृति संबंधी संस्मरणात्मक और अन्य विषयक गद्य ।

दिनकर की काव्य कृतियाँ

दिनकर की काव्य कृतियों को हम तीन विभागों में विभाजित कर सकते हैं । उनकी रचनाओं को क्रमशः मुक्तक, प्रबन्ध एवं गीतिनाट्य, ऐसे तीन विभागों में विभाजित करके उनका आलोचनात्मक परिचय दिया जायेगा ।

दिनकर की मुक्तक रचनाएँ

1. रेणुका

रेणुका दिनकर की काव्य-यात्रा का प्रारूप है जिसका प्रकाशन 1935 ई. में हुआ था । रेणुका के प्रकाशन से ही उनकी प्रतिभा का आलोक संपूर्ण हिन्दी जगत् में छा गया और वे एक यशस्वी कवि के रूप में सर्वत्र ख्यात हो गये । उन्हें एक उदीयमान राष्ट्रकवि के रूप में सर्वप्रथम अभिज्ञापित करने का श्रेय इसी कृति को है ।

रेणुका की रचनाओं में विविध भाव संबंधी रचनाएँ मिलती हैं । उनमें राष्ट्रीय रचनाएँ हैं, प्रकृति चित्रण संबंधी रचनाएँ हैं, निराशावादी रचनाएँ हैं । इस संग्रह की कई कविताएँ नारी, प्रेम और सौन्दर्य से संबंधित हैं । इसमें 33 कविताएँ हैं । ताण्डव, हिमालय, समाधि के प्रतीप से, वैभव की समाधि, मिथिला, पाटलीपुत्र की गंगा, अमा संध्या, फूल, कला तीर्थ, विधवा, परदेशी, मनुष्य, जीवन-संगीत, सुन्दरता और काल, बोधि सत्व, बागी आदि इस संग्रह की कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं । समग्र "रेणुका" के अध्ययन से कवि की प्रथम कृति के विषय में हरप्रसाद शास्त्री का यह कथन बडा ही सुसंगत लगता है । -"कवि की प्रथम कृति होने के कारण रेणुका में विचारों के द्वैधी भाव और द्वन्द्वपूर्ण मनस्थिति की रचनाएँ हैं । उसमें कहीं पौरुष का उद्दाम और उच्छल आवेग है, तो कहीं सुकुमार कोमल अनुभूतियों की रूमानी पेशलता ।"[1] निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि रेणुका दिनकर की काव्य यात्रा का वह प्रारूप है, जिसमें हुंकार से परशुराम की प्रतीक्षा तथा रसवन्ती के उर्वशी तक की

---

1. दिनकर: सं. सावित्री सिन्हा {रेणुका : हरप्रसाद शास्त्री} पृ. 39

तमाम कृतियों के भाव एवं कला के उत्स सन्निहित हैं । अतः यह उनकी काव्यप्रतिभा में निहित रूप, रस, गन्ध, स्पर्श एवं शब्द का विधान करनेवाली क्षमता की समस्त संभावनाओं की एक पूर्वसूची है, जिसमें बीज रूप में वह सबकुछ है, जिसकी विवृत्ति उनके संपूर्ण साहित्य में हुई है ।

2. हुंकार

हुंकार दिनकर की राष्ट्रीय रचनाओं का दूसरा संग्रह है, जिसका प्रकाशन सन् 1938 में हुआ था । यह दिनकर की क्रान्तिकारी कविताओं का संग्रह है जिसके माध्यम से छायावादोत्तर हिन्दी कविता के नये मोड की पहचान की जा सकती है । हुंकार की कविताओं में सर्वत्र मानव पीडा, विद्रोह की ऊर्जा, और बलिदान का स्वर गूँज रहा है । इसका धरातल सामाजिक और राष्ट्रीय दोनों है । इसमें आनेवाले संदर्भ दोनों के हैं ।

"हुंकार" में तीन विभिन्न भावों की कविताएँ संकलित हैं - क्रांतिपूर्ण रचनाएँ, द्वन्द्वमूलक रचनाएँ और समसामयिक रचनाएँ । इस संग्रह की आलोक धन्धा, दिगम्बरी एवं विपथगा क्रांति और विध्वंस के भावों को अभिव्यक्त करनेवाली रचनाएँ हैं । स्वर्ग दहन, चाह एक, भीख, प्रगति, व्यक्ति आदि रचनाओं में भी इस क्रांति का स्वर मुखरित है । इस संग्रह की कुछ रचनायें ऐसी है जो मानसिक द्वन्द्व को व्यक्त करती है । असमय आह्वान, वसंत के नाम पर, साधना और द्विधा ऐसी रचनाएँ हैं । हुंकार की अन्य कुछ रचनाओं में कवि ने तत्कालीन विषम परिस्थितियों का चित्रांकन भी किया है । देश की भूख, गरीबी और शोषण को कवि ने वाणी दी है । मेघ-रन्ध्र में बजी रागिनी, दिल्ली, तकदीर का बटवारा आदि रचनाएँ इस वर्ग में आती हैं ।

दिनकर जी ने क्रांति को साधन के रूप में अपनाया था । क्रांति और लोकमंगल की भावना हुंकार की आत्मा बन गई हैं । हुंकार के संबंध में श्री विश्वनाथ प्रसाद सिंह जी का यह कथन सार्थक प्रतीत होता है - "दिनकर के उदयकालीन विस्फोट को ही हम हुंकार के नाम से जानते हैं, जिसके मन्त्र-घोष ने छायावन की रास का वंशीवादन बन्द करके छोडा ।"[1] निस्सन्देह हुंकार छायावाद की हेलिका और स्वैर-विहार से बाहर निकलनेवाली सामयिक रचना थी ।

3. रसवन्ती

रसवन्ती दिनकर की सौन्दर्य, प्रेम और श्रृंगारिक भावनाओं को व्यक्त करनेवाली रचना है । रसवन्ती में कवि की वैयक्तिक सौन्दर्य भावनाओं को प्रश्रय मिला है । यह तो दिनकर की बत्तीस कविताओं का संग्रह है जितकी मूल चेतना श्रृंगारिक है ।

रसवन्ती की कविताओं में विभिन्न भाव प्रकट हुए हैं । इसमें श्रृंगार चेतना को व्यक्त करनेवाली कविताएँ हैं, नारीभावना से संबद्ध रचनाएँ हैं, विचारात्मक कविताएँ हैं और विभिन्न विषयक कविताएँ भी हैं । गीत-अगीत, प्रीति, दाह की कोयल, अगरू-धूम, रास की मुरली, पावसगीत, सावन में आदि श्रृंगारपूर्ण रचनाएँ हैं जिनमें कवि के कोमल भावों की प्रतिच्छाया को अभिव्यक्ति मिली है । नारी को लेकर लिखी गई तीन कविताएँ इनमें संगृहित हैं । नारी के विविध रूपों का चित्रण इसमें हुआ है । दिनकर की विचारात्मक रचनाओं में रास की मुरली, मरण, समय, प्रभावी रहस्य और

---

1. दिनकर : सं. सावित्री सिन्हा हुंकार: विश्वनाथ प्रसाद सिंह - पृ. 4।

शेषगान आदि विशेष उल्लेखनीय है । मलिन का गीत, "कवि और अज्ञेय की ओर" आदि कविताएँ भी विशेष महत्व की हैं ।

"रसवंती"के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें विषयगत विविधता के बावजूद भावगत एकात्मता है । इसकी भाषा में व्यंजकता और कलात्मक मार्दव हैं । इस संग्रह की अधिकतर रचनाएँ अपेक्षाकृत अपनी मृदुता के बावजूद गहरे स्तर पर देशकाल से जुडी हैं । रसवन्ती का एक अतिरिक्त महत्व यह भी है कि यह कवि की उर्वशी तक की काव्य यात्रा का पदचिह्न प्रस्तुत करती है ।

4. द्वन्द्वगीत

यह तो दिनकर की स्फुट कविताओं का संग्रह है जिसमें रेणुका से रसवन्ती तक की अनेक अनुभूतियों का आम व्यक्तिकरण हुआ है । द्वन्द्वगीत में कवि का अन्तर्जगत् और बाह्यजगत्, सुख-दुःख तथा आस्था और अनास्था का द्वन्द्व दिखाई देता है । द्वन्द्वगीत में कवि के विविध विचार प्रकट हुए हैं । कवि का स्वर तो सर्वत्र द्वन्द्वात्मक है परन्तु उसकी ध्वनि में सर्वत्र परपीडा के प्रति द्रवित होना ही मुखरित हुआ है । द्वन्द्वगीत में परस्पर विरोधी मनोभावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करनेवाले अनेक पद हैं ।

द्वन्द्वगीत के पद एकायामी हैं, उसमें अर्थ की बहुस्तरीयता है ही नहीं, द्वन्द्वगीत तात्कालिक प्रतिक्रियाओं, खिन्न मनःस्थितियों, मन में समय समय पर उभरनेवाले विचारों और जिज्ञासाओं का पद्यबद्ध रूप बन पडा है ।

इसमें से कोई गंभीर जीवन दर्शन उभर कर नहीं आता, अनुभूति का कोई सुश्रृंखलित रूप लक्षित नहीं होता । फिर भी द्वन्द्वगीत की उस अवसादग्रस्त मानसिकता प्रशंसनीय है जिसने उसे एक सुन्दर काव्य का परिवेश दिया है ।

5. सामधेनी

सामधेनी में दिनकर की इक्कीस ऐसी कविताएँ संगृहित हैं जो राष्ट्रीयता के प्रसन्न आलोक में उपस्थित की गई हैं । दिनकर की राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व करनेवाले प्रमुख काव्य-संग्रहों में सामधेनी का विशेष स्थान है । इस कृति का मूल स्वर क्रांति का है । अचेतमृत-अचेतन शिला, अन्तिम मनुष्य हे मेरे स्वदेश, आग की भीख, जवानियाँ, जयप्रकाश, साथ, जवानी का झण्डा, दिल्ली और मोस्को आदि इसकी कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं ।

सामधेनी की कविताएँ एक साथ ही अपने समय और कवि के व्यक्तिगत इतिहास से संबद्ध है । इसकी गर्जन तर्जन करनेवाली कविताओं के नीचे कहीं व्यथा की, अवसाद की अन्तर्धारा भी बह रही है । इस संग्रह की रचनाओं का सन्दर्भ अन्तर्राष्ट्रीय है, राष्ट्रीय है और वैयक्तिक भी । असल में दिनकर की कविताओं की यह प्रमुख प्रवृत्ति-राष्ट्रीयता- सामधेनी की आत्मा बन गयी है ।

6. बापू

बापू चार खण्डों में विभक्त एक लंबी कविता है जिसकी रचना उस समय हुई थी, जब गाँधीजी जीवित थे । दिनकर कभी पूर्णतः गाँधीवादी

नहीं रहे हैं लेकिन गाँधीजी के व्यक्तित्व ने उनपर गहरा प्रभाव डाला था । कवि ने अपनी इस रचना के माध्यम से बापू के व्यक्तित्व की विराटता का आभास दे दिया है । उनकी अन्य रचनाओं की अपेक्षा इसमें अनुभूति की एकतानता वर्तमान नहीं । इसमें गंभीर विचारों की अभिव्यक्ति नहीं हुई है । लेकिन इसकी मार्मिक शैली और भाषा ने इस संग्रह को मधुर और सुग्राह्य बना दिया है ।

इतिहास के आँसू, धूप और धुआँ, दिल्ली, नीम के पत्ते, नीलकुसुम, परशुराम की प्रतीक्षा, कोयला और कवित्व, मृत्ति-तिलक आदि रचनाएँ भी मुक्तक रचनाएँ हैं । इतिहास के आँसू कवि की ऐतिहासिक कविताओं का संग्रह है । इस संग्रह में कवि स्वतंत्रता के पश्चात् देश के भ्रष्टाचार आदि कुरीतियों को देख पुनः इतिहास के माध्यम से देशवासियों में प्रेरणा जागृत करना चाहता है । दिनकर की इन रचनाओं में हमें भारतीय अतीत के साथ कवि के रागात्मक संबन्ध का परिचय प्राप्त होता है ।

दिनकर जी की कवि चेतना के विकास का प्रकाश बिन्दु है धूप और धुआँ । यह दिनकर की एक दिशा दर्शक काव्य कृति है । इसमें स्वतंन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् के राष्ट्रीय जन जीवन की अभिव्यक्ति है । इस संग्रह की रचनाओं में स्वतंन्त्रता, राष्ट्रहित भावनाएँ तथा बापू और अन्य महारथियों के प्रति श्रद्धांजलि के भाव स्पष्ट हुए हैं । कवि की संक्रान्ति चेतना की सूचना देनेवाली इस रचना का विषय की दृष्टि से विशेष महत्व है ।

दिल्ली से संबंधित समय समय पर लिखी गई चार कविताओं का संग्रह है "दिल्ली" । इसकी कविताएँ हैं - नई दिल्ली के प्रति, दिल्ली और मोस्को, हक की पुकार एवं भारत का यह रेशमी नगर । कवि ने इसमें देश की दुर्दशा का सुन्दर चित्र खींचा है । कवि ने शासक वर्ग पर जो व्यंग्य किए हैं वे उसकी निर्भीकता और राष्ट्रीयता के परिचायक हैं ।

नीम के पत्ते दिनकर जी की व्यंग्य एवं वक्रोक्तिपूर्ण कविताओं का लघु संग्रह है । इसमें कवि ने स्वतंत्र भारत में होनेवाले अत्याचार और असमान व्यवहार पर व्यंग्य किया है । इस संग्रह की प्रमुख रचनाएँ हैं - अरुणोदय, सपनों का धुआँ, व्यष्टि, पंचतिक्त, राहु, जनता और जवाहर, पहला वर्षगाँठ, रोटी और स्वाधीनता स्वाधीन भारत की सेना आदि । कवि ने इस कृति में व्यंग्यात्मक शैली को अपनाकर आधुनिक काँग्रेसी और नेतागिरी पर व्यंग्य किए हैं । कवि ने अपने भावों को वक्रोक्ति की सहायता से लाक्षणिक एवं व्यंग्यपूर्ण शैली में व्यक्त किये हैं । यह कृति भाषा की दृष्टि से भी बडी ही सुन्दर है ।

नीलकुसुम दिनकर की प्रयोगवादी कविताओं का संग्रह है । उनकी कविताएँ वैसी प्रयोगवादी नहीं हैं जैसा कि हम प्रयोगवादियों की कृतियाँ देखते हैं । परंपरा का त्याग, नूतन विचार और तकनीक की दृष्टि से यदि हम इसे प्रयोगवादी कृति कहें तो अधिक संगत होगा । नई आवाज़, जनतंत्र का जन्म, शबनम की जंजीर, गृह-रचना, आशा की बंशी, गायक, कवि की मृत्यु, काँटों के गीत, भूदान, राष्ट्रदेवता की विसर्जन, अर्धनारीश्वर, चाँद और कवि, संकेत आदि इसकी कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं । नीलकुसुम में कवि कवियों को श्रद्धांजलि

अर्पित करता है । वह नए युग का स्वागत करता दिखाई देता है । वह जानता है "इस अन्धाधुंध प्रवाह में वे ही स्थिर रह सकेंगे जिनका जल आश्विन का होगा ।"[1] नीलकुसुम दिनकर जी के नए विचारों का वह दर्पण है जिसमें कवि व्यक्ति, समाज, धर्म आदि को नए परिवेश में देखने का प्रयास करता है । इसकी कविताओं की भाषा ज़ोरदार, लाक्षणिक और व्यंजक हो गई है । भाव एवं भाषा में दिनकर ने जो नए प्रयोग किए हैं वे अन्य प्रयोगवादियों की तरह ऊट-पटाँग न होकर अत्यन्त मनोहारी रहे हैं ।

नए सुभाषित दिनकर के करीब दो सौ पदों का एक संक्षिप्त संग्रह है । इसमें कवि ने व्यंग्य और विनोद के माध्यम से मार्मिक शैली में अपने भाव व्यक्त किये हैं । दिनकर की स्पष्टवादिता, प्रतिभा और निर्भीकता भी इसमें झलक उठी है । दिनकर ने अपने इस छोटे संग्रह में विशाल भावों को भर दिया है । उसने ऐसे सुभाषित इसमें प्रस्तुत किये हैं जो हमारे जीवन के प्रत्येक पहलू को स्पर्श करते हैं और हमें विकास पथ की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते हैं ।

परशुराम की प्रतीक्षा दिनकर की 18 रचनाओं का संग्रह है । इसमें गरजते भारतवर्ष के क्रोध और गर्जन, एकता और त्याग, कर्तव्य और बलिदान को वाणी मिली है । जैसे श्री विमल कुमार जैन ने कहा है - "यह दिनकर की किरण-जाल का दह्यमान कुण्ड है, जो स्वयं जल रहा है और शत्रुओं को भस्म कर देगा ।"[2] संग्रह की सभी रचनाओं की ध्वनि क्रांति की आराधना है । राष्ट्रीय जागरण ही कवि का सर्वोपरि लक्ष्य है ।

---

1. नीलकुसुम - (समर्पण)
2. महाकवि दिनकर : उर्वशी और अन्य कृतियाँ, विजयकुमार जैन - पृ. 60

कोयला और कवित्व कवि की विविध नवीन रचनाओं का संग्रह है । इस संग्रह की प्रमुख रचनाएँ हैं - पुरानी और नई कविताएँ, गृहमुख, अन्तिम पुरुषार्थ, समुद्र, नदी और पेड, धन्यवाद, भौतिकी श्मशान, चुनौती आदि । कवि ने त्याग की महिमा, संसार की क्षणभंगुरता, ईश्वर की सर्वव्यापकता तथा नारी प्रेम की आध्यात्मिक भूमि पर प्रकाश डाला है । ऐसी रचनाओं में नदी और पीपल, बादलों की फटन आदि प्रमुख हैं । वैज्ञानिक युग की प्रतिक्रिया-स्वरूप लिखी गई कविताएँ भी हैं इसमें । भविष्य, विज्ञान, गाँधी आदि रचनाएँ इस कोटि में आनेवाली हैं । इसकी सर्वाधिक प्रमुख रचना कोयला और कवित्व है । इसमें उन्होंने "कला के लिए" सिद्धांत का समर्थन किया है । कवि ने इस रचना के माध्यम से कला और धर्म दोनों के सामंजस्य पर बल दिया है ।

मृत्ति-तिलक दिनकर की 27 रचनाओं का संग्रह है जिसमें उनकी मुक्तक एवं अनूदित रचनाएँ संकलित हैं । भारत व्रत, वीरवंदना, ज़मीन दो ज़मीन से, अमृतमंथन, स्वर्णधन, संजीवन धन दो, तन्तुकार आदि इसकी कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं । मेघ सन्देश, वरगद, राजकुमारी और बांसुरी, प्लेग आदि अनूदित रचनाएँ हैं । इस कृति में कवि का राष्ट्र-हितैषी स्वर प्रधान है ।

दिनकर के प्रबन्ध काव्य

दिनकर की दो ही रचनाएँ प्रबंध हैं, वे हैं कुरुक्षेत्र और रश्मिरथी । स्वतंत्रता पूर्व का प्रबंध है कुरुक्षेत्र और स्वातन्त्र्योत्तर प्रबन्ध है रश्मिरथी ।

कुरुक्षेत्र

कुरुक्षेत्र दिनकर का प्रथम प्रबंध काव्य है । इसमें कवि ने महाभारत के युद्ध के एक खंड को लेकर अपने विचारों को प्रकट किया है । कवि के ही शब्दों में कहें तो -"कुरुक्षेत्र की रचना भगवान् व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत का दुहराना ही मेरा उद्देश्य था । मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर औ. भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था, किन्तु तब यह रचना, शायद, प्रबन्ध के रूप में लाने की मेरी कोई निश्चित योजना नहीं थी । कुरुक्षेत्र के प्रबन्ध की एकता उसमें वर्णित विचारों को लेकर है ।"[1]

कुरुक्षेत्र के कथानक का मूलस्रोत कवि ने महाभारत के शांतिपर्व से ग्रहण किया है । परन्तु उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा से आधुनिक युग की मुख्य समस्या युद्ध पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं और समस्या के समाधान-स्वरूप उन्होंने शांति, समाजवाद और समय की भावनाओं को स्वीकार किया है । कुरुक्षेत्र के मुख्य पात्र भीष्म और युधिष्ठिर हैं । युधिष्ठिर को कवि ने शंकाकुल द्वन्द्वग्रस्त मानव के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है । भीष्म उस जीवित पुरुष के प्रतीक हैं जो अन्याय और अत्याचार के प्रतिकार हेतु युद्ध की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं ।

दिनकर संसार की कल्मषता को धोने के लिए युद्ध का स्वीकार अवश्य करते हैं, परन्तु सुख और समृद्धि के लिए शांति का महत्व ही स्वीकार करते हैं । कवि इसमें निवृत्ति से अधिक प्रवृत्तिमय बनकर युद्ध को टालने का

---

1. कुरुक्षेत्र - (निवेदन) - पृ. 1-2

सन्देश देते हैं ।

"आशा के प्रतीप को जलाए चलो धर्मराज ।
एक दिन होगी भूमि मुक्त रणभीति से ।
भावना मनुष्य की न रक्त में रहेगी लिप्त,
सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से ।"[1]

कवि कुरुक्षेत्र में अपने राष्ट्रवादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण का विशेष समर्थन करते दिखाई पडते हैं ।

कुरुक्षेत्र में कवि ने वीर, करुण और शांत रसों की सुन्दर ढंग से प्रस्थापना की है । संपूर्ण काव्य में ओज गुण की प्रधानता है । कुरुक्षेत्र पर विचार करते हुए डा. प्रभाकर माचवे ने जो कुछ कहा, उचित ही लगता है - "यह हमारी विचार-शक्ति को उत्तेजित करता है और युद्ध और शांति, हिंसा और अहिंसा, व्यक्ति और समूह, राज्य व्यवस्था और लोकतंत्र के कई प्रश्नों को सामने लाता हैं । इस दृष्टि से हिन्दी में इस काव्य का अपना एक विशिष्ट स्थान है । हिन्दी में राष्ट्रीय कवियों में से राष्ट्रीय महत्व के विषय को लेकर रचना करनेवालों में दिनकर की गणना साहित्य के इतिहासकार करेंगे ।"[2] संक्षेप में कहा जाये तो यह विचार काव्य अपने समय और समाज के प्रति जागृति का सन्देश देनेवाला एक सफल काव्य है।कुरुक्षेत्र की सफलता इसमें है कि कवि की पूरी विचारधारा इसमें उभर कर आयी है ।

रश्मिरथी

दिनकरजी का स्वातन्त्र्योत्तर प्रबंध काव्य "रश्मिरथी"

---

1. कुरुक्षेत्र - सप्तम सर्ग - पृ. 146
2. दिनकर सृष्टि और दृष्टि - सं. गोपालकृष्ण कौल {मंगल कामना का काव्य कुरुक्षेत्र - डा. प्रभाकर माचवे - पृ. 185 }

काव्य कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है । महाभारत के तेजस्वी पात्र कर्ण को लेकर इस प्रबन्ध काव्य की रचना हुई है । कवि ने युगों से उपेक्षित कर्ण को आधुनिक सन्दर्भ में प्रस्तुत करते हुए उनकी चारित्रिक महानताओं का उद्घाटन किया है । इसमें विचारोत्तेजकता है, कथा, संवाद और वर्णन का माहात्म्य भी है ।

रश्मिरथी उस पुरुष का प्रतीक है जिसका रथ आलोकित है । इधर कवि ने कर्ण के जीवन की यशोगाथा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । सात सर्गों में विभक्त इस काव्य में कवि ने कर्ण के व्यक्तित्व के विकास की रेखा प्रस्तुत करते हुए महाभारत के उस ओजस्वी पुरुष को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया है । कवि ने इसका कथानक महाभारत से लिया है । इसका कथानक सुव्यवस्थित है और संपूर्ण कथानक कर्ण के उज्वल चरित्र का उद्घाटन करता है ।

कर्ण के चरित्र के माध्यम से दिनकर ने इस नई विचारधारा को प्रस्तुत करने की कोशिश की है कि व्यक्ति की पूजा उसके गुणों के कारण होनी चाहिए । रश्मिरथी की भूमिका में भी उन्होंने इसी तथ्य को व्यक्त किया है - "यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है । अतएव यह बहुत स्वाभाविक है कि राष्ट्रभारती के जागरूक कवियों का ध्यान इस चरित्र की ओर जाय जो हजारों वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एवं कलंकित मानवता का मूक प्रतीक बनकर खडा रहा है × × × आगे मनुष्य केवल उस पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता हैं, उस पद का नहीं जो उसके माता-पिता या वंश की देन है ।"[1] यह प्रबन्ध काव्य कवि की नवीन मानवतावादी

---

1. रश्मिरथी - भूमिका - पृ. ।

दृष्टिकोण का परिचायक है । इस कृति के अध्ययन से हमें ऐसा लगता है कि एक पौराणिक कृति के चित्रांकन में भी राष्ट्रीय सामाजिक समस्या का समाधान ढूँढने की यह रीति अत्यन्त आकर्षक है ।

रश्मिरथी का सूक्ष्म विवेचन करें तो हम समझ पायेंगे, इसमें कला एवं कलाकार की अभिव्यक्ति एकसाथ हुई है । भाव पक्ष एवं कलापक्ष की दृष्टि से भी यह एक सबल कृति है । इस कृति में वीर रस की प्रधानता है । इस वीर रस के अनुरूप इसकी भाषा भी ओजपूर्ण है । इसकी भाषा सरल है और प्रसाद गुण से संपृक्त है । संक्षेप में कह सकते हैं कि दिनकर का यह प्रबन्ध काव्य हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।

उर्वशी

उर्वशी दिनकर की सर्वश्रेष्ठ कृति है, जिसके लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था । उर्वशी का आद्योपांत अनुशीलन करने के पश्चात् हम समझ पाते हैं कि इसे एक गीतिनाट्य कहना समीचीन है । इसमें वैयक्तिक अनुभूति की तीव्रता को संगीतात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

उर्वशी की प्रमुख कथा पुरूरवा और उर्वशी के प्रसिद्ध प्रेम प्रसंगों को समेटती है । यह प्रेमकथा आधिकारिक कथा के रूप में प्रस्तुत की गयी है । अप्सराओं का कार्य-व्यापार, औशीनरी का दुःखी और तिरस्कृत रूप, सुकन्या और च्यवन ऋषि की कथा प्रासंगिक कथा के रूप में इसमें प्रस्तुत हैं । दिनकर ने इस पौराणिक कथानक को एक नवीन दृष्टि देते हुए अनेक मनोवैज्ञानिक तथ्यों का निरूपण किया है ।

उर्वशी की सबसे बडी विशेषता यह है कि एक पौराणिक कथा के माध्यम से मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व को कवि ने आधुनिकता के संदर्भ में प्रस्तुत किया है । अपनी इस नूतन दृष्टि को अभिव्यक्त करते हुए कवि ने उर्वशी की भूमिका में लिखा है -"पुरूखा द्वन्द्व में है क्योंकि द्वन्द्व में रहना मनुष्य का स्वभाव है । सुख की कामना करता है और उसमें आगे निकलने का प्रयास भी ।"[1] उर्वशी के अन्तर्गत में कवि ने नारी के विविध रूपों को प्रस्तुत किया है ।

वस्तुत: उर्वशी दिनकर की भावनाओं और शिल्प का सर्वोच्च फल है । जैसे डा. नगेन्द्र जी ने कहा -"भाव, कल्पना और विचार से परिपुष्ट उर्वशी की कविता में भावों को आन्दोलित करने, प्रबुद्ध कल्पना के सामने मूर्त-अमूर्त के रमणीय चित्र अंकित करने और विचारों को उद्बुद्ध करने की अपूर्व क्षमता है ।"[2] उर्वशी का मुख्य रस श्रृंगार है । अन्य रस भी प्रसंगानुसार स्थान पा सके हैं । निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि कवि की भाषा, गुण, छन्द, अलंकार, प्रकृति चित्रण सभी का चरम विकास उर्वशी है ।

दिनकर की काव्य कृतियों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उनकी कृतियों का मूल विषय राष्ट्रीयता एवं श्रृंगार भावना है । श्रृंगार के साथ साथ कवि ने प्रेम, काम आदि विषयों को भी स्थान दिया है । कवि ने ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथानक को लेकर उसको एक नयी दृष्टि प्रदान करने की कोशिश की है । काव्य कला की दृष्टि से संपूर्ण हिन्दी काव्य जगत् में दिनकर जी की रचनाओं का विशेष महत्व रहा है ।

---

1. उर्वशी - (भूमिका) -पृ. ख
2. दिनकर सृष्टि और दृष्टि - सं. कौल (अन्तर्मंथन का काव्य उर्वशी - नगेन्द्र पृ. 223

दिनकर की आलोचनात्मक रचनाएँ

हिन्दी आलोचना साहित्य के विकास में दिनकर जी का महत्वपूर्ण योगदान है । उन्होंने अनेक निबन्ध लिखे हैं जिनमें से अधिकांश आलोचनात्मक हैं । सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में इन निबन्धों का महत्वपूर्ण स्थान है । उनकी प्रसिद्ध आलोचनात्मक रचनाएँ हैं - मिट्टी की ओर, काव्य की भूमिका, शुद्ध कविता की खोज, पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण, वेणुवन, वट-पीपल, साहित्यमुखी, चेतना की शिखा, अर्धनारीश्वर, रेती के फूल आदि । इनके अतिरिक्त दिनकर की डायरी एवं चक्रवाल की भूमिका में भी उनके आलोचक रूप प्रकट हुए हैं । उनकी ये रचनाएँ उनके गहन अध्ययन, चिन्तन और आलोचनात्मक दृष्टि की परिचायिका हैं ।

1. मिट्टी की ओर

मिट्टी की ओर दिनकर जी के लेखों और भाषणों का संग्रह है जिनके भीतर से एक समकालीन कवि का अपने सहकर्मियों को देखने की दृष्टि प्रत्यक्ष होती है । यह दिनकरजी का प्रथम आलोचनात्मक ग्रंथ है जिसमें छायावाद, प्रगतिवाद तथा कविता और समाज के संबंधों का सम्यक् विवेचन है । स्वयं दिनकरजी ने इस पुस्तक के संबन्ध में लिखा है कि "इसमें तो केवल उन्हीं निबन्धों का संग्रह है जो छायावाद की कुहेलिका से निकलकर प्रसन्न आलोक के देश की ओर बढनेवाली हिन्दी कविता को लक्ष्य करके लिखे गये हैं ।"[1]

इस पुस्तक में चौदह निबन्ध संकलित हैं - इतिहास के दृष्टिकोण से, दृश्य और अदृश्य का सेतु, कला में सोद्देश्यता का प्रश्न, हिन्दी कविता पर

---

1. मिट्टी की ओर - भूमिका

अशक्तता का दोष, वर्तमान कविता की प्रेरक शक्तियाँ, समकालीन सत्य से कविता का वियोग, हिन्दी कविता और छन्द, प्रगतिवाद, समकालीनता की व्याख्या, काव्य समीक्षा का दिशा निर्देश, साहित्य और राजनीति, खड़ीबोली का प्रतिनिधि-कवि, बलिशाला ही हो मधुशाला, कवि श्री सियाराम शरणगुप्त, तुम घर आओगे कब ।

पहले निबन्ध में दिनकर ने छायावाद के आरंभ की परिस्थितियों का उल्लेख किया है । छायावाद के संबंध में दिनकर की धारणायें अत्यन्त स्पष्ट रही हैं । वे लिखते हैं -"छायावाद हिन्दी में उद्दाम वैयक्तिकता का पहला विस्फोट था ।"[1] दिनकर के अनुसार "छायावाद एक क्रांति का सन्देश लेकर आया था, किन्तु अपने क्रांतिकारी होने के प्रचार में वह ऐसा फँसा कि वास्तविक उद्देश्य का कहना ही भूल गया ।"[2] दिनकर प्रगतिवाद को छायावाद के परिपूरक की क्रिया मात्र मानते हैं । वे प्रगतिवाद को कोई विशिष्ट नवजागरण नहीं मानते । दूसरे निबन्ध में दिनकर ने यह व्यक्त करने का प्रयास किया है कि कविता की जो नवीन शैली अब प्रचलित हो रही है उसकी स्वीकृति जनसाधारण के बीच अब तक नहीं हो पायी है । आगे वे कविता के प्रयोजन के संबंध में विचार करते हुए सफल कवि को दृश्य और अदृश्य के बीच का वह सेतु मानते हैं जो मानवता को देवत्व की ओर ले जाता है । तीसरा निबन्ध सोद्देश्यता के प्रश्न को उठाता है । दिनकर को काव्य की सार्थकता इसमें दिखाई देती है कि वह मिट्टी से कल्पना का संबंध बना रहे । इसके संबंध में वे लिखते हैं - "मिट्टी से कल्पना का संबंध टूट नहीं सकता । काव्य की सबसे

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 10
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 23

बड़ी मर्यादा इसमें है कि वह राष्ट्र की आधिभौतिक उन्नति और विकास तथा उसके स्थूल इतिहास के ऊपर कोमल और पवित्र आकाश बनकर फैलता रहे ।"[1]

अगले निबन्ध में दिनकर ने हिन्दी कविता की अशक्तता के संबंध में अपना विचार व्यक्त किया है । उनके अनुसार सच तो यह है कि "वर्तमान हिन्दी कविता के सुन्दर और सुकुमार फूलों में गहरी दिलचस्पी लेनेवाले थोड़े ही लोग हैं ।"[2] पाँचवें निबन्ध में दिनकर ने वर्तमान कविता में रोमान्टिक जागरण के प्रभाव को स्वीकार करते हुए लिखा है - "हिन्दी में रोमान्टिक जागरण के प्रभावों ने अपने को कम से कम चार रूपों में व्यक्त किया, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें से किसी एक वर्ग के साहित्यकार में शेष तीन लक्षणों का सर्वथा अभाव था ।"[3] इनमें सबसे पहले वे थे जिन्होंने रोमांसवाद से कर्म प्रेरणा ग्रहण की और रणक्षेत्र की ओर बढ़े । दूसरी श्रेणी में वे लोग थे जो सामने की दुनिया से असन्तुष्ट होकर वर्तमान की चित्रपटी पर भूतकाल को संभाव्य बनाने की चेष्टा करने लगे । तीसरी श्रेणी के लोग भी वर्तमान समाज से असन्तुष्ट थे और उन्होंने वस्तु जगत को अजनबी समझा और उसके प्रति अपना विरोध प्रकट करना चाहा । आखिर अब वह धारा बच गयी है जो छायावाद की कुछ प्रत्यक्ष विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती थी । आगे वे लिखते हैं - "जिस व्यक्तिवादी दृष्टिकोण ने रोमांसवाद की साहित्यिक क्रांति को पूर्ण करने में सहायता पहुँचायी, ठीक उसी के दुरुपयोग ने उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया को जन्म दिया ।"[4] इधर दुविधा यह है कि दिनकर प्रगतिवाद को चाहते भी हैं और

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 48
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 49
3. " " " पृ. 59
4. " " " पृ. 63

नहीं भी चाहते । चाहते हैं तो उसे मानवात्मा की एकता का आदर्श बनाकर - जिस पद की सार्थकता में एक प्रगतिवादी को प्रत्यक्ष असहमति होगी ।

समकालीन सत्य से कविता का वियोग शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने लिखा है कि -सामयिक जीवन के तिरस्कार और समकालीन सत्य की अवहेलना से कविता को विशिष्टता भले ही मिली हो, लेकिन वह विशिष्टता काव्य और कवि-वर्ग, दोनों ही को महंगी पड रही है और आज दोनों में से कोई भी जन जीवन का अंग नहीं रह गया है ।"[1] "हिन्दी कविता और छन्द" शीर्षक निबन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमें पारंपरिक छन्दों और उनके नये संस्कार का व्यवस्थित विश्लेषण है । दिनकर के अनुसार छन्दों के क्षेत्र में सबसे बडी क्रांति छायावाद युग में हुई है । हिन्दी कविता में प्रयुक्त छन्दों का विश्लेषण करते हुए दिनकर लिखते हैं - "अभिनव हिन्दी काव्य में छन्दों में जो परिवर्तन हुए हैं वे किसी प्रकार भी भावों के परिवर्तन से कम विचित्र और विशाल नहीं है । जितने प्रकार के भाव तथा मनोदशायें नई कविताओं में अभिव्यक्त हुई हैं, छन्दों में भी उसी परिमाण और प्रकार के विकार उत्पन्न हुए हैं ।"[2]

प्रगतिवाद समकालीनता की व्याख्या शीर्षक निबन्ध में दिनकर लिखते हैं - साहित्य की जननी कल्पना नहीं बल्कि स्मृति है और स्मृति का रचना और विकास कल्पित वेदनाओं तथा नकली अनुभूतियों से नहीं, प्रत्युत् पद्धबद्ध शिक्षाओं, मनुष्य तथा प्रकृति के संसर्ग एवं ऐतिहासिक तथा समकालीन ज्ञान के अर्जन से होगा । दिनकर कला की आनन्दमयता को

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 70
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 93

समकालीनता के संसर्ग से दूषित होने का यही कारण बताया है कि साहित्यकार राजनीति के दूषित प्रभाव से बच नहीं पाये हैं । लेकिन समकालीन सत्य से साहित्यकार दूर रहें, इससे दिनकर सहमत नहीं है ।

काव्य समीक्षा का दिशा निर्देश में दिनकर ने काव्य समीक्षा संबंधी अनेक मौलिक उद्‌भावनाएँ व्यक्त की हैं । दिनकर समालोचना को केवल नीर-क्षीर-विवेक नहीं मानते । उनके अनुसार समालोचना उन समस्त कला कौशलों के विश्लेषण का नाम है जिनके द्वारा कलाकार अपनी कृति में सौन्दर्य तथा अलौकिकता उत्पन्न करता है । काव्य समीक्षा के दिशा निर्देश के साथ साथ दिनकर ने शब्द-चयन, भाषा की पहचान, विशेषणों की क्षमता, छन्दों की प्रधानता आदि विषयों पर भी अपना सुचिंतित मत व्यक्त किया है ।

साहित्य और राजनीति शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने प्रगतिवाद के संबंध में उभरी हुई धारणाओं का विश्लेषण किया है । दिनकर साहित्य और राजनीति को एक दूसरे का पूरक नहीं मानते । उनके अनुसार "साहित्य राजनीति का अनुचर नहीं, वरन् उससे भिन्न एक स्वतंत्र देवता है और उसे पूरा अधिकार है कि जीवन के विशाल क्षेत्र में से वह अपने काम के योग्य वे सभी द्रव्य उठा ले जिन्हें राजनीति अपने काम में लाती है ।"[1]

खड़ीबोली का प्रतिनिधि कवि शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने श्री मैथिली शरण गुप्त को खड़ीबोली का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हुए उनके कवि

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 124

व्यक्तित्व के विश्लेषण करने का सफल प्रयास किया है । दिनकर के अनुसार भारतेन्दु के बाद से अब तक के हिन्दी कवियों में श्री मैथिली शरण गुप्त जी निर्विवाद रूप से सर्वश्रेष्ठ हैं । दिनकर यह मानते हैं कि कविता को अपने सामाजिक लक्ष्य का ध्यान गुप्तजी ने दिलाया था । वे गुप्तजी को प्राचीनता के सन्देशवाहक नवीन कवि मानते हैं ।

दिनकर ने, शरीर से योद्धा, हृदय से प्रेमी, आत्मा से विह्वल भक्त और विचारों से क्रान्तिकारी पंडित माखनलाल चतुर्वेदी जी की साहित्य साधना का विश्लेषण "बलिशाला हो हो मधुशाला" शीर्षक निबन्ध में किया है । दिनकर लिखते हैं - "कविता माखनलालजी के जीवन का कोई प्रमुख अंग नहीं, वरन् उनकी अलस-लीला-भूमि है ।"[1] दिनकर यह भी मानते हैं कि अपने व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों के समन्वय से माखनलाल जी की कविताएँ दुर्बोध भी हुई हैं तथा सुन्दर और समर्थ भी ।

अगले निबन्ध में दिनकर जी ने कवि श्री सियाराम शरण गुप्त की काव्य साधना की चर्चा की है । दिनकर सियाराम जी की कविताओं के पीछे एक ऐसी मनोदशा को विद्यमान पाते हैं जो प्राचीन और नवीन दोनों ही दिशाओं की ओर बँटी हुई है । दिनकर के अनुसार सियाराम शरणजी शैली से रोमांसप्रिय और विचारों से शास्त्रीय है । दिनकर सियाराम जी को एक संयमशील कवि मानते हैं ।

तुम घर कब आओगे कवि शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने विश्वेतिहास, विश्व साहित्य और विश्व-मानव की खोज में अपना घर छोड़कर

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 137

बाहर घूमनेवाले कवियों की कटु आलोचना की है । उनके अनुसार ये कवि प्रवासी हैं । उन कवियों के लिए दिनकर का यही सन्देश है कि "प्रवासी कवि ! तुम बहुत बड़ा काम कर रहे हो, लेकिन प्यारा काम नहीं । तुम दूसरों का घर सजा रहे हो, अपना घर नहीं । तुम्हें अमरता के लोभ ने आ घेरा है ; लेकिन मरनेवालों के आशीर्वाद और प्यार से तुम वंचित हो रहे हो । आकाश और पाताल को बाँधनेवाले वीर, तुमने अपनी माँ की झोंपड़ी नहीं बाँधी ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि "मिट्टी की ओर" में वर्तमान हिन्दी कविता से संबंधित आलोचनात्मक निबन्ध संकलित हैं । आलोचना के क्षेत्र में "मिट्टी की ओर" का अपना महत्वपूर्ण स्थान है । इस पुस्तक के आदर का एक कारण यह भी है कि इसका गद्य अंग्रेज़ी के ऊँचे से ऊँचे गद्य के साथ स्पष्टता और सबलता में टक्कर ले सकता है । यह तो स्पष्ट है कि इस पुस्तक ने दिनकर को हिन्दी के आधे दर्जन श्रेष्ठ आलोचकों में स्थान पाने योग्य बना दिया है ।

2. काव्य की भूमिका

"काव्य की भूमिका" दिनकर जी के ऐसे स्फुट आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह है जिसमें रीतिकाल से लेकर प्रयोगवाद तक के हिन्दी काव्य का विस्तृत विश्लेषण एवं मूल्यांकन तथा काव्य से संबंधित कुछ अन्य समस्याओं पर विचार किया गया है । कुछ निबन्धों में कविता के भावि स्वरूप, काव्य का प्रयोजन, प्रेरणा और परख पर विचार भी किया गया है ।

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 157

इसमें ग्यारह निबन्ध संकलित हैं - रीतिकाल का नया मूल्यांकन, छायावाद की भूमिका, छायावादोत्तर काल, प्रयोगवाद, कोमलता से कठोरता की ओर, भविष्य की कविता, कविता ज्ञान है या आनन्द, रूपकाव्य और विचार काव्य, प्रेरणा का स्वरूप, सत्यं, शिवं सुन्दरं और कविता की परख ।

रीतिकालीन कविताओं का मूल्यांकन करते हुए दिनकर ने लिखा है कि "रीतिकाल की निंदा चाहे जितनी भी की जाय, हिन्दी कविता के इतिहास में उसका एक महत्व है और यह महत्व तब भी न्यून नहीं होता जब हम यह कहते हैं कि रीतिकालीन कवि इस अनुभूति तक पहुँच ही नहीं सके कि कवि का कर्म केवल मनोरंजन ही नहीं, समाज की चेतना को आलोडित करना भी होता है ।"[1] वे रीतिकालीन कविता की अशक्तता का उत्तरदायी मात्र रीतिकालीन कवियों को नहीं मानते । उनके अनुसार इसका उत्तरदायी उस समय का समाज भी है । दिनकर के अनुसार रीतिकालीन कविता का दोष श्रृंगारिकता नहीं, निर्जीवता और नकलीपन हैं । दिनकर मानते हैं कि इस काल की कविताएँ बुरी नहीं निस्तेज है । लेखक का मन्तव्य है कि चित्रकला की कसौटी रीतिकाल के साथ न्याय करने की सबसे अनुकूल कसौटी होगी । निष्कर्ष रूप में उन्होंने लिखा है कि रीतिकाल चाहे जितने भी निर्जीव सौन्दर्य का काल रहा हो, किंतु वह हिन्दी के आधुनिक काल की **पार्श्व भूमि** में पडता है और उसमें नवीनता के बीज जहाँ तहाँ अवश्य मिलते हैं ।

छायावाद की भूमिका में दिनकर ने लिखा है - "यह आन्दोलन विचित्र जादूगर बनकर आया था । जिधर को भी इसने एक मुट्ठी

---

1. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 6

गुलाल फेंक दी, उधर का क्षितिज लाल हो गया ।"[1] दिनकर छायावाद का आरंभकर्ता घनानन्द को मानते हैं । फिर भी वे पूर्वयुगों से छायावाद को भिन्न मानते हैं । छायावादी कविताओं के विश्लेषण के साथ उन्होंने द्विवेदी युग की कविताओं पर भी विचार किया है । उन्होंने द्विवेदीयुगीन कविता को गृहस्थ की संज्ञा दी है । वे छायावाद, रहस्यवाद जैसे नामों को आवश्यक नहीं मानते । उनकी यही मान्यता रही है कि यह आन्दोलन रूप और स्वभाव दोनों में रोमांटिक आन्दोलन के समान था । इस संबंध में उन्होंने लिखा है - "वास्तव में छायावाद की विशेषता ध्वनि और वेदनाप्रियता नहीं, प्रत्युत् भावुकता और कल्पना की अतिशयता तथा परिचित से दूर जाकर अपरिचित में विहार करने की प्रवृत्ति थी ।"[2] वे छायावाद की सबसे बडी देन खडीबोली की कर्कशता को गलाकर मोम बनाने की कला को मानते हैं । छायावाद की सीमाओं की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है कि छायावादी कवि अपनी प्रेरणा को ठीक से पहचान नहीं सके और जो समझ में आया उसे पूरी विविधता से लिख नहीं सके । दिनकर के अनुसार छायावाद की मूल कमज़ोरी अभिव्यक्ति की अक्षमता है, पलायनवादिता नहीं ।

"छायावादोत्तर काल" शीर्षक निबन्ध में छायावादी और प्रगतिवादी कविता के, जिसे आलोचक "प्रगतिशील कविता" नाम देता है, बीच की कविताओं पर विचार किया गया है । दिनकर छायावादोत्तर कालीन कविताओं का आरंभ भारतेन्दु से मानते हैं । दिनकर के अनुसार छायावादोत्तर कविताओं की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं - भाषा के बोलचाल के निकट लाने का प्रयास, हृदय की सच्ची अनुभूति को व्यक्त करने का साहस

---

1. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 42
2. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 23

और काव्य में प्रसाद गुण की वृद्धि । छायावादोत्तर काल की कविताओं की महत्ता स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा है - "भाषा की सजीवता अनुभूति की सचाई और अभिव्यक्ति की प्रसन्नता ये ऐसे गुण हैं जिनके समन्वय से कोई भी कविता सप्राण हो सकती है । × × × मेरा अनुमान है कि काव्य रसिकों में छायावादोत्तर की रचनाएँ जिस रोचकता से पढ़ीं गयीं उस रोचकता से छायावाद युग की रचनाएँ नहीं पढ़ीं गई थीं ।"[1]

प्रयोगवाद शीर्षक निबन्ध में प्रगतिशील कवियों के भटकाव की चर्चा करते हुए लेखक ने बताया है कि कवियों का दायरा जो साम्राज्यवाद, औपनिवेशिकवाद तथा शोषण की कहानी तक फैला था, सीमित होकर मार्क्सवाद दर्शन की आराधना करने लगा । आगे वे लिखते हैं - "मेरा विचार है कि प्रयोगवाद हिन्दी कविता को जिस ओर जाने का संकेत दे रहा है, वह काव्यमात्र की सबसे श्रेष्ठ दिशा है और इसीलिए, प्रयोग की साधना भी ऐसी साधना है जिससे अधिक कठोर साधना की कल्पना नहीं की जा सकती ।"[2] दिनकर के अनुसार प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों को पहचानने की दिक्कत यह है कि यह चतुर्दिक नक्काबों से भर गया है और असली कवि भीड़ को दबा कर निकल नहीं पा रहे हैं । दिनकर जी छन्दों के बन्धन तोड़ने को कोई दोष नहीं मानते हैं परन्तु इन कवियों के इस आग्रह को, कि जो भी लिखें कविता है, दोषपूर्ण मानते हैं । उन्होंने इन कविताओं को असमर्थ गद्य कहा है ।

कोमलता से कठोरता की ओर शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने छायावाद से संबंधित शुक्लजी के कुछ विचारों का खंडन करने का प्रयास किया हैं ।

---

1. काव्य की भूमिका - पृ. 47
2. काव्य की भूमिका - पृ. 67

शुक्लजी के मतानुसार छायावाद रवीन्द्रनाथ से प्रभावित है । लेकिन दिनकर यह मानते हैं कि रवीन्द्रनाथ से बहुत पहले छायावाद का आरंभ हुआ था । शुक्लजी ने छायावाद को चित्रभाषावाद कहना उचित समझा । लेकिन दिनकर उसे प्रतीकवाद कहना ज़्यादा ठीक समझते हैं और उसका संबंध प्रकृतिवाद से जोडता है ।

"भविष्य की कविता" निबन्ध में वैज्ञानिक युग में कविता संबन्धी बदले हुए मानदंड की चर्चा करते हुए दिनकर ने बताया है कि दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होने पर संवेगों की गर्मी और कविता का आदेश घटता जाता है । शैली में सुनिश्चितता आती है और प्रभाव क्षीण हो जाता है । दिनकर के अनुसार अगला युग विचारक कवियों का युग होगा । "अगले युग की कवि-प्रतिभा सजावट, रंगीनी और रोचकता में कुशल होने के कारण पूजी नहीं जायेगी, प्रत्युत, उसके सम्मान का कारण यह होगा कि वह प्रातिभ विस्फोट अथवा आविष्कारवाली प्रतिभा से संपन्न होगी ।"[1] आगे वे लिखते हैं कि कविता की अगली राह जुही और चमेली के कुंज से होकर नहीं, प्रत्युत, समर्थ बुद्धि की कडी चट्टान पर से जानेवाली है । दिनकर जी का विचार है कि भविष्य कविता गद्यमय, छन्दों से मुक्त हो तथा इसकी भाषा बोलचाल के निकट हो । भविष्य की कविता गाने सुनने की चीज़ न होकर सोचने समझने की वस्तु होगी ।

कविता ज्ञान है या आनन्द शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों की कविता संबंधी धारणाओं का विश्लेषण किया है । भारतीय आचार्यों में कुन्तक ने साहित्य को शब्द और अर्थ की

---

1. काव्य की भूमिका - पृ. 104

पारस्परिक स्पर्धा का परिणाम कहा । उन्होंने काव्य में अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों पर बल दिया । लेकिन आगे के आचार्यों ने अनुभूति को नगण्य मानते हुए सरल अभिव्यक्ति पर बल दिया । पश्चिम में प्लेटो से लेकर रिचार्डस तक सबने इन दोनों पक्षों पर विचार किया है । वे दो टूक उत्तर नहीं दे पाते कि कविता ज्ञान है या आनन्द । दिनकर जी का मत है कि कविता ज्ञान के लिए नहीं पढी जाती । वह दर्शन और इतिहास से ऊपर है । ज्ञान का सहारा लेने के कारण वह उच्च है ।

अगला निबन्ध है रूप काव्य और विचार काव्य । रूप काव्य और विचार काव्य की परिभाषा देते हुए दिनकर ने इन दोनों की तुलना करने की सफल कोशिश की है । उनके अनुसार समस्त काव्य को इन दो वर्गों में बाँटा जा सकता है । इन दोनों की तुलना करते हुए लेखक ने बताया है कि काव्य की सार्थकता तभी मानी जायेगी जब विचार चित्रों में परिवर्तित कर दिए जाएँ । दिनकर का विचार है कि भारतीय साहित्य में यदि खाँटी कविता पर विचार किये जाए तो रीतिकालीन कविताएँ इसके दायरे में आयेंगी । अंत में उन्होंने यह भी बताया है कि "ज़ोर हमें बराबर इसी बल पर देना चाहिए कि काव्य विचारों से नहीं, कल्पना और भाव से बनता है और विचार काव्य भी काव्य इसलिए नहीं माने जाते कि उनमें ऊँचे ऊँचे विचार हैं, वरन् इसलिए कि उनके रचयिताओं को इन विचारों की अनुभूति कल्पना के आवेश में हुई थी और उन्होंने अभिव्यक्ति का मार्ग भी वही चुना, जो शास्त्रकारों का नहीं कलाकारों का मार्ग है ।"[1]

---

1. काव्य की भूमिका - पृ. 125

"प्रेरणा का स्वरूप" निबन्ध में दिनकर ने भारतीय और पाश्चात्य विचारों का विश्लेषण करते हुए इस निष्कर्ष पर बल दिया है कि प्रेरणा इहलौकिक नहीं अपितु लोकोत्तर शाक्ति है । लेकिन आज के बुद्धिवादी प्रेरणा को बुद्धि का पहलू मानते हैं । दिनकर जी का मत है कि कवि की प्रेरणावस्तु अलौकिक हो या न हो वह ऐसी अवश्य है जिस पर कवि का वश नहीं चल सकता । इसके साथ ही साथ उन्होंने इस प्रश्न पर भी विचार किया है कि रचना में प्रेरणा का अधिक महत्व है या प्रयास का । इस संबंध में उन्होंने लिखा है कि "प्रेरणा अदृश्य की वह दूती है जो कवि कल्पना को जगा कर फिर तुरन्त छिप जाती है । कवि प्रतिभा का काम यह रह जाता है कि वह कल्पना को उस प्रकार चलाये, जैसे कवि की रूचि उसे चलाना चाहती हो ।"[1]

सत्यं, शिवं, सुन्दरम् शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने बताया है कि कला की सर्वोपरि धर्म सौन्दर्य है परन्तु सर्वोत्तम कलाकृति वह है जो सुन्दर के साथ सत्य भी हो और शिव भी । वे मानते हैं कि कला में सौन्दर्य के साथ स्वास्थ्य भी होना चाहिए । वे कला को कलाकार के जीवन का प्रस्वेद मानते हैं । दिनकर सत्यं, शिवं और सुन्दर के समन्वय पर बल देते हैं । उनके अनुसार इन तीनों का समन्वय केवल कलम या कूँची से नहीं किया जा सकता । इस समन्वय की साधना आचरणों से ही की जा सकती है ।

अंतिम निबन्ध "कविता की परख" में दिनकर ने कविता संबंधी अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है । दिनकर यह मानते हैं, ऊँची कविताओं की पहचान ऊँचे विचार नहीं प्रत्युत् उनकी पारदर्शिता है । दिनकर

---

1. काव्य की भूमिका - पृ. 126

के अनुसार श्रेष्ठ कवि वह है जो भावों को नया रूप दे देता है ।

उपर्युक्त विश्लेषण से दिनकर जी की काव्य संबंधी मान्यताओं का एक स्पष्ट चित्र हमें मिलता है । स्पष्ट है कि दिनकर केवल कलावाद के पोषक नहीं परन्तु साथ ही वे उपयोगितावादी विचारधारा के अतिवादी छोर के भी प्रबल विरोधी है । कविता में आनन्द और चित्र को उन्होंने प्रथम स्थान दिया है । इसी दृष्टि से उन्होंने रीतिकाल का एक नया मूल्यांकन प्रस्तुत किया । दिनकर ने आलोचना की एक नूतन कसौटी को जन्म दिया है जिसमें साहित्य का ऐतिहासिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि में विश्लेषण करने की रीति पर बल दिया गया है । भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य का गहन अध्ययन प्रस्तुत करते हुए दिनकर ने अपने गंभीर विचारों को वाणी दी है । उनकी विवेचन शैली स्पष्ट, सुबोध एवं सुपाच्य है । प्रत्येक निबन्ध में अपना समीक्षात्मक निर्णय उन्होंने प्रस्तुत किया है ।

3. शुद्ध कविता की खोज

काव्य का नया आन्दोलन सन् 1870 के आसपास फ्रांस में उठा था । अब वह समस्त साहित्य का अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन हो गया है । "शुद्ध कविता की खोज" में दिनकर ने इस पृष्ठभूमि पर साहित्य के इस नये आन्दोलन का विश्लेषण-विवेचन किया है । इस पुस्तक का उद्देश्य कविता के उस नये आन्दोलन का विवेचन है जिसकी लपेट में सारा अन्तर्राष्ट्रीय काव्य आ गया है ।

दिनकर ने इस नये आन्दोलन का उत्स काव्य में शुद्धतावादी प्रवृत्ति को माना है और इसी आधार पर उन्होंने शुद्ध कविता का संक्षिप्त इतिहास भी खडा किया है । उन्होंने इस पुस्तक में अनेक प्रश्नों पर विचार किया है जैसे कविता में दुरूहता की वृद्धि क्यों हो रही है ? क्या शुद्ध काव्य ही सर्वश्रेष्ठ काव्य है ? नयी कविता की विद्रोहप्रियता का कारण क्या है ? अगर कविता हमेशा शुद्ध रहने का आग्रह करे तो कवि का समाज में क्या स्थान रहेगा ? क्या नयी कविता सन्यास की कविता है ? व्यक्तित्व और चरित्र में से नयी कविता किसके साथ है आदि । इसमें पश्चिम के अधतन साहित्यिक वादों का सूक्ष्म गंभीर विवेचन हुआ है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि इसके लेखक में आलोचक की नैसर्गिक प्रतिभा है और वे पाश्चात्य वाङमय में उतना ही व्युत्पन्न है जितना हिन्दी साहित्य में ।

पुस्तक के आरंभ में दिनकर ने कविता और शुद्ध कविता की चर्चा की है । उनके अनुसार शुद्ध कविता साहित्य की कोई सर्वथा नवीन विधा नहीं है । जब से मनुष्य ने काव्य कला का आविष्कार किया, शुद्ध कविता की रचना वह तभी से करता आ रहा है । कविता और शुद्ध कविता का भेद व्यक्त करते हुए दिनकर ने सोद्देश्य काव्यों की चर्चा भी की है । वे यह मानते हैं कि कला के लिए कला का सिद्धांत बार बार खंडित हो जाने पर भी सत्य है । लेकिन वे सोद्देश्य काव्य को त्याज्य नहीं मानते हैं । उनके अनुसार शुद्धता की साधना में अन्तर्राष्ट्रीय काव्य अब एक ऐसी ऊँचाई पर पहुँच गया है, जहाँ काव्य विषयक हमारी परंपरागत मान्यताएँ छूँछी और सारहीन दिखाई देने लगी हैं । दिनकर मानते हैं कि शुद्ध कवित्व विषयक इस नवीन धारणा का प्रभाव कविता पर ज़ोर से पडा है । आगे उन्होंने इन विषयों पर विचार किया है कि शुद्ध कवित्व विषयक यह धारणा कैसे कैसे बढी है, उस पर कला के

किन आन्दोलनों का प्रभाव पडा है तथा शुद्ध कवित्व के आन्दोलन से साहित्य और समाज का संबंध कैसे जटिल हो गया है ।

भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यकारों की शुद्ध कविता संबंधी मान्यताओं का विश्लेषण करते हुए दिनकर ने शुद्ध कविता का इतिहास व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है । उन्होंने साहित्यिक वादों को ठीक से देखा परखा है । रोमान्टिक कविता की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है कि रोमांटिक कविता शुद्ध कावता नहीं, पर रोमान्टिक विद्रोह भावना ने ही शुद्ध कविता को जन्म दिया है । शुद्ध कविता का आरंभ दिनकर एडगर अलन पो से मानते हैं - "हमारा ख्याल है कि शुद्धतावादी आन्दोलन का आरंभ एडगर अलन पो से ही माना जाना चाहिए । क्योंकि आगामी काव्य के उन्होंने केवल लक्षण ही नहीं कहे, बल्कि, प्रतीकों के प्रयोग से उन्होंने शुद्ध कविताएं भी लिखकर एक नयी परंपरा को जन्म दिया ।"[1] दिनकर ने शुद्ध कविता की इस चर्चा के दौरान मलार्मे के प्रतीकवाद, रेम्बू के काव्यशास्त्र आदि की चर्चा भी की है । उन्होंने बोदलेयर, मलार्मे और रेम्बू को शुद्धतावादी प्रवृत्ति के प्रवर्त्तक माना है ।

शुद्ध कविता के इस आन्दोलन का प्रभाव विभिन्न भाषा के साहित्य पर कहाँ तक पडा है, इसका विवेचन करते हुए दिनकर ने जर्मन, रूसी और अंग्रेज़ी भाषा की प्रवृत्तियों पर विचार किया है । उनके अनुसार शुद्ध कविता की इस प्रवृत्ति का आभास जर्मनी में पहले पहल नीत्से ने दिया था । रूस में सन् 1900 से लेकर शुद्ध कविता के आन्दोलन ने प्रतीकवाद के रूप में साकार रूप धारण किया । शुद्धता की दृष्टि से अंग्रेज़ी के कवि पिछडे हुए थे । फिर भी

---

1. शुद्ध कविता की खोज - पृ. 41

स्विनबर्न, ओस्कार वाइल्ड आदि साहित्यकारों ने इस आन्दोलन को आगे बढाने का कार्य किया ।

दिनकर मानते हैं कि शुद्ध कविता की प्रेरणा चित्रकला से भी आयी है । प्रभाववाद का आन्दोलन चित्रकला का आन्दोलन है । लेकिन सुररियलिज़्म, अभिव्यंजनावाद तथा बीट आन्दोलन चित्रकला के आन्दोलन नहीं हैं । दिनकर के अनुसार नयी चित्रकला अत्यन्त बौद्धिक है, अत्यन्त विश्लेषणात्मक है । चित्रकला का प्रभाव दिनकर इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि "चित्रवादी कवि कविता के विशिष्ट कलाकार हो गये । कविता के सामान्य पाठकों से उनका संबन्ध छिन्न हो गया और वे अपनी तुष्टि एवं अपने मित्रों के सन्तोष को अलम् मानकर नयी चेतना को नये ढंग से अभिव्यक्त करने में एकचित्त होकर लग गये ।"[1]

दिनकर ने "कविता में दुरूहता", "शुद्ध काव्य की सीमाएँ" आदि विषयों पर अपना मौलिक विचार किया है । उनके अनुसार नयी कविता के उत्थान के साथ दुरूहता के आयामों में वृद्धि अवश्य हुई है । दुरूहता की अपेक्षा सुस्पष्टता को दिनकर काव्य केलिए आवश्यक मानते हैं । उन्होंने लिखा है - "नयी कविता ने जिस शैली को अपनाया है, वैसी कठिन शैली संसार में कभी भी देखी नहीं गयी थी । यही कारण है कि कवि कर्म में सफलता अब विरले ही साधकों को ही प्राप्त होती है । दुरूहता चाहे जिस कारण से भी उत्पन्न होती हो, किन्तु वह धर्म नहीं, आपद्धर्म है । आज भी उन कवियों के शिखर आसानी से सबसे ऊपर उठ जाते हैं, जो गहरे भी है और सुस्पष्ट भी, जो संक्षेप में सब कुछ कह डालते हैं, किन्तु, सर्वत्र प्रकाश भी रहता है ।"[2]

---

1. शुद्ध कविता की खोज - पृ. 118
2. शुद्ध कविता की खोज - पृ. 137

शुद्ध कविता की सीमाओं पर विचार करते हुए दिनकर ने लिखा है कि शुद्ध कवित्ववादी शैली को प्रमुख, विषय को बहुत ही गौण समझता है । उसमें कोई दृष्टिबोध नहीं होता, कोई विचार नहीं होता, न किसी पात्र के चरित्र का विकास उनका ध्येय है । वह अपनी सारी दृष्टि शब्दों पर रखता है, शैली के तंत्र पर रखता है । शुद्ध कवि का दायित्व अत्यन्त सीमित होता है । वह सिर्फ शैली का प्रेमी होता है । शुद्ध कविता की एक सीमा यह भी है कि जबसे शुद्ध कवित्व का आन्दोलन उठा है, महाकल्पना का उपयोग, दिनों दिन, कम होता जा रहा है ।

कविता का समाज के साथ क्या संबंध है ? व्यक्तित्व और चरित्र का कला में क्या स्थान है, कविता का संन्यास आदि विषयों पर दिनकर ने एक तटस्थ व्याख्याकार के रूप में काम किया है । कविता की उन्नति के लिए दिनकर कर्मन्यास को आवश्यक मानते हैं । वे मानते हैं कि कविता के इस सन्यास का अर्थ कर्म त्याग नहीं । केवल फलासक्ति का त्याग है । उनके अनुसार अनासक्ति से योगी और कलाकार दोनों की स्वतंत्रता में वृद्धि होती है, किन्तु अकर्मण्यता इन दोनों में से किसी के लिए भी विहित नहीं है ।

"साहित्य में आधुनिक बोध" की चर्चा करते हुए दिनकर ने लिखा है कि आधुनिक साहित्य आधुनिक इसलिए नहीं कि उसके सारे के सारे विषय नवीन हैं । आधुनिक वह इसलिए है कि उसके पीछे काम करनेवाली मनोवृत्ति नवीन है, मनोदशा, मानासकता और दृष्टि नवीन है । आधुनिक साहित्य पर विज्ञान का जो प्रभाव पडा है उसपर दिनकर ने विचार किया है । वे मानते हैं कि आधुनिक साहित्य की बुद्धिवादी प्रवृत्ति विज्ञान के

प्रभाव के कारण बनी है । धर्म पर जो अश्रद्धा विज्ञान के प्रभाव से बढी है, उसका प्रभाव भी साहित्य पर काफी पडा है । दिनकर की यही मान्यता रही है कि आधुनिक बोध का दर्शन कितना भी निराशजनक क्यों न हो किन्तु वह उस सभ्यता का स्वाभाविक परिपूरक है, जिसमें हम जी रहे हैं ।

दिनकर ने इस पुस्तक के माध्यम से शुद्ध कविता का इतिहास खडा करने की कोशिश की है । और उसी दृष्टिकोण से उन्होंने कविता की अनेक समस्याओं पर विचार किया है । नयी कविता के आन्दोलन को समझने का प्रयास भी उन्होंने किया है । फिर भी यह स्पष्ट है कि उनकी अन्य आलोचनात्मक रचनाओं के समान मूल्यांकन का कार्य इसमें नहीं हुआ है । जैसे स्वयं दिनकर जी ने लिखा है, इस पुस्तक का एक सीमित उद्देश्य है -"हिन्दी के जो लेखक, कवि और पाठक अंगेज़ी अथवा किसी अन्य विदेशी भाषा के द्वारा पाश्चात्य साहित्य के सीधे संपर्क में नहीं है, इस पुस्तक का उद्देश्य विशेषत: उन्हीं के साथ वार्तालाप करना है ।"[1] निस्सन्देह हम कह सकते हैं कि इस उद्देश्य में दिनकर को पूरी सफलता प्राप्त हुई हैं ।

4. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण

हिन्दी के तीन शीर्षस्थ कवियों के संबंध में लिखे गये तीन निबन्धों का संग्रह है "पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण" । दिनकर ने इस पुस्तक में आधुनिक काल के इन तीन महाकवियों का विस्तृत अध्ययन तथा नवीन दृष्टि से मूल्यांकन किया है । व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में दिनकर की इस रचना का विशेष महत्व रहा है ।

---

1. शुद्ध कविता की खोज - भूमिका

खड़ीबोली के इन तीन कवियों को अपनी आलोचना का विषय बनाते हुए दिनकर ने द्विवेदी काल से छायावाद और उसके बाद उस सीमा तक की दूरी नापने का भी प्रयत्न किया है जहाँ पहुँचकर पन्त विचारक की भूमिका अपना लेते हैं । एक ओर मैथिलीशरण गुप्त को उन्होंने पुनरूत्थानवादी कवि के रूप में स्वीकार किया तो दूसरी ओर पंतजी के विचारक रूप को उन्होंने अपना लिया । प्रसादजी के विषय में उनकी आलोचना का मार्ग बिलकुल भिन्न है । प्रसाद जी की रचना "कामायनी" को उन्होंने अपनी आलोचना का विषय बनाया है । इस रचना की यही विशेषता रही है कि इसमें दिनकर ने इन तीन कवियों के प्रमुख दृष्टिकोणों को देखा परखा है । इसकी आलोचना पूरे कवित्व को लेकर लिखी गई नहीं है । दिनकर का निर्णायक समीक्षक इस रचना के माध्यम से हमारे सामने उभर कर आया है । कविता की जो पकड और गहरी समझ दिनकर में थी, उसका स्वाभाविक विकास उनकी इस आलोचना में भी लक्षित होता है । जैसे डा. आनन्द प्रकाश दीक्षित ने लिखा है - "उनकी आलोचना में उनका कवि झाँकता हुआ नज़र आता है ।"[1]

मैथिलीशरण गुप्त को दिनकर खड़ीबोली के सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं । एक पुनरूत्थानवादी कवि के रूप में दिनकर जी ने मैथिली शरण को बहुत अधिक आदर दिया है । दिनकर मानते हैं कि पुनरूत्थानवाद नयी मानवता के वैचारिक आन्दोलन के रूप में पनपा है । इसी दृष्टि से परखें तो हम समझ पायेंगे कि गुप्तजी की रचनाओं में उनके प्राचीन संस्कार और नवीन दृष्टि घुल-मिलकर उपस्थित हुए हैं । दिनकर के अनुसार "वे ऐसे कवि है जिनमें भारत की परंपरा अभी तक सर्वाधिक जीवित और चैतन्य है तथा दूर से देखने पर वे नवीनता नहीं, प्राचीनता के प्रतिनिधि मालूम होते हैं ।"[2] दिनकर ने यह भी

---

1. समीक्षा - मार्च-एप्रैल 1975
2. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण - पृ. 23

लक्षित किया है कि प्राचीनता युक्त होने पर भी गुप्त जी की रचनाओं में देशभक्ति की उत्तेजना नवीन रूप में व्यक्त हुई है । 'जयद्रथ वध' इसका एक प्रत्यक्ष नमूना है । उसी प्रकार 'साकेत' में भी नवयुग का प्रतिबिम्ब उपस्थित है । दिनकर ने मान लिया है कि गुप्तजी अपने युग की माँग को स्वर देने में सफल हुए थे ।

पंतजी के विचारक पक्ष पर बल देते हुए दिनकर जी ने पन्तजी के काव्य जीवन के उत्तरकालिक रूप को अपना विवेच्य विषय बना दिया है । हिन्दी के अन्य आलोचकों की यह धारणा रही है कि पन्त का विकास छाया, प्रगति और दर्शन के तीन चरणों में हुआ है । किन्तु दिनकर युगवाणी से उनके विकास का संबंध जोडकर केवल दो चरणों की मान्यता स्वीकार करते हैं । दिनकर के मत में पन्तजी का विकास एक स्वाभाविक गति से होता रहा है, उनके विचारों में क्रांति जैसी कोई घटना नहीं हुई है । पन्त की सामाजिकता को दिनकर ने स्वीकार किया है । पंतजी की आशा एवं आस्थावादी रचनाओं पर दिनकर का पूरा भरोसा है । पंत की महिमा का गायन करते हुए उन्होंने लिखा है कि आगे की पीढियाँ उन्हें अवतारी, सन्देशवाहक, कवि के रूप में याद करेंगी अन्यथा उत्थानवादी तो मानेंगी ही ।

कामायनी संबंधी लेख में दिनकर ने कवित्व को उसकी सारी प्रासंगिकता के साथ कसौटी पर कसा है । इसमें उनके प्रखर आलोचक का रूप उभर कर सामने आया है । दिनकर ने कामायनी संबंधी लेख में संपूर्ण गुणदोषों के साथ "कामायनी" को छायावाद का संपूर्ण उदाहरण मान लिया है । उनके मत में कथानक, विराट् कल्पना और उदात्त रूप चित्रण की दृष्टि से कामायनी महत्वपूर्ण है । लेकिन भाषा प्रयोग की दृष्टि से कामायनी सफल नहीं हुई है ।

कामायनी के कथानक को दिनकर आदरणीय मानते हैं । उन्होंने यह स्वीकार किया है कि कामायनी के कथानक के आदरणीय धरातल ने समूचे काव्य के धरातल को ऊँचा उठाया है । अन्य आलोचकों ने कामायनी के महाकाव्यत्व पर बल दिया है । लेकिन दिनकर मानते हैं कि कामायनी श्लघ्य अपने महाकाव्यत्व के कारण नहीं है, अपने कवित्व के कारण है जो यत्र तत्र सभी सर्गों में दिखाई पडता है । दिनकर की निर्भीकता एवं पूर्वाग्रहविहीनता इस निबन्ध में स्पष्ट हुई हैं । दोष और दुर्बलताएँ दिखाते हुए दिनकर ने कामायनी की भाषा की असमर्थता के अनेक नमूने प्रस्तुत किए हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि यह रचना आलोचक दिनकर की भिन्नमुखी क्षमताओं को उद्घाटित करती है । डा. आनन्द प्रकाश दीक्षित जी ने लिखा है "उनमें अपनी बात को निर्भीकता और साफगोई से कहने और उसे धार देने की क्षमता थी और यदि वे इस क्षेत्र में और भी अधिक उतरते तो कदाचित् काव्यालोचन को दिशा ही दे सकते ।"[1] दर असल पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण के संबंध में लिखी गई इस आलोचनात्मक रचना ने व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में एक क्रांति ही मचा दी है ।

5. साहित्यमुखी

"साहित्यमुखी" कवि - आलोचक दिनकर के इक्कीस ऐसे निबन्धों का संग्रह है जिनमें उन्होंने अपने युग में उपलब्ध ज्ञान की सभी राशियों का उपयोग किया है । दिनकर के परिपक्व भावक की दो अन्योन्याश्रित विशेषताएँ - गंभीर चिंतन और आत्मसात्करण - साहित्यमुखी में व्यक्त हुई हैं ।

---

1. समीक्षा - मार्च-एप्रैल - 1975

इस संग्रह के सभी निबन्ध ऐसे हैं जो साहित्य संबंधी दिनकर की धारणाओं को व्यक्त करते हैं ।

"साहित्यमुखी" में संगृहित निबन्ध ये हैं - "शीर्षक मुक्त चिंतन, आधुनिकता और भारत धर्म, कविता में परिवेश और मूल्य, आधुनिकता का वरण, हिन्दी साहित्य पर गाँधीजी का प्रभाव, हिन्दी और उसकी उपभाषाओं का संबंध, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता, हिन्दी साहित्य में निगम धारा, साहित्य में आधुनिकता आदि । शेक्सपियर नामक एक अत्यन्त विचारोत्तेजक निबन्ध भी इसमें प्रस्तुत है ।

आरंभिक लेख - शीर्षक मुक्त चिंतन पर पाश्चात्य साहित्यकारों का प्रभाव देखा जा सकता है । दिनकर, हरमन, हेरा, कान्ट, नीत्से प्रभृति से प्रभावित दीखते हैं । कविता में परिवेश और मूल्य निबन्ध में उन्होंने लिखा है कि परिवेश वह वातावरण है जिसमें साहित्य लिखा जाता है और मूल्य वे नैतिक मान्यताएँ हैं, साहित्य जिनका समर्थन या विरोध करता है । पारास्थिति के कारण साहित्य के मूल्य में कैसा बदलाव होनवाला है ? इसकी ओर संकेत देते हुए उन्होंने लिखा है कि "स्वामी दयानन्द के उपदेशों के कारण उत्तरभारत में जो पवित्रतावादी विचारधारा फैली, वह उसी का प्रभाव था कि द्विवेदी युगीन हिन्दी कविता नीरस और खुलकर सोद्देश्य हो गई । यूरोप में जब रिफारमैशन का दौर-दौरा हुआ - कला में नैतिकता की वृद्धि हुई, किन्तु सौन्दर्य कला से बहिष्कृत हो गया ।"[1] दिनकर ने आधुनिकता को नयी दृष्टि या पहचान के रूप में परिभाषित किया है । दिनकर का यही अन्यत्र

---

1. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 60

संकेत है कि परिवेश साहित्य को प्रभावित ही नहीं करता उसके मार्ग में बाधा भी उपस्थित करता है, अवरोध भी डालता है । दिनकर साहित्य में आधुनिकता को लेकर बनी संकीर्ण धारणाओं के विरुद्ध है । उनकी दृष्टि में आधुनिकता एक प्रक्रिया है, अस्तित्व भाव या रोमांटिक दृष्टि अनिवार्य रूप से आधुनिकता विरोधी नहीं है । दिनकर ने गिरिजाकुमार माथुर और शेक्सपियर के संबंध में जो चंद बातें कही हैं उनमें भी नवीनता है और प्रभूत युक्तियुक्तता भी । उन्होंने माथुर की काव्य भाषा के संबंध में अच्छे संकेत दिये हैं । गिरिजाकुमार माथुर को उन्होंने लेन्डस्केप का कवि कहा है । शेक्सपियर पर वे लिखते हैं -"शेक्सपियर इसी अंतर्मन या अवचेतन के कवि थे । उनका उद्देश्य आदर्श-निरूपण नहीं, मनुष्य की इन्हीं अपरिचित वृत्तियों का चित्रण था । उनके नाटक हमारी ज़िन्दगी का खाका स्वप्न के रंगों में खींचते हैं, हमारा ही चेहरा हमें वे मुखौटा लगाकर दिखलाते हैं ।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि इस संग्रह के अधिकांश निबन्ध विचारोत्तेजक है और साहित्य तथा परिवेश के जटिल संबंधों को प्रकाशित करते हैं । दिनकर के गद्य की क्षमता इन निबन्धों में व्यक्त हुई है । उनका गद्य स्पष्ट और अमुक है । ये समीक्षाएँ उनके परिनिष्ठित एवं उदार समीक्षक का मूल्यांकन प्रस्तुत करती हैं ।

6. वेणुवन

यह दिनकर जी के वैयक्तिक, सांस्कृतिक एवं आलोचनात्मक निबन्धों का एक संग्रह है । इस संग्रह के अधिकांश निबन्ध आलोचनात्मक हैं

---

1. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 54

जैसे महादेवी जी की वेदना, निर्गुण पंथ की सामाजिक पृष्ठभूमि, विद्यापति और व्रजबुलि, मैथिल कोकिल विद्यापति आदि ।

इस संग्रह का पहला निबन्ध अर्धनारीश्वर है जिनमें दिनकर जी का चिंतक रूप अपने पूर्ण गांभीर्य के साथ प्रकट हुआ है । इसमें उन्होंने नर-नारी समस्या पर अपना गंभीर विचार प्रस्तुत किया है । कलाकार की सफलता शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने साहित्य की उपयोगिता तथा सोद्देश्यता जैसे विवादास्पद प्रश्न पर विचार किया है और जीवन तथा जगत् के प्रति स्वस्थ मानसिकता के विकास और रूचि परिष्कार को रचनाकार का उत्तरदायित्व माना है । कलाकार की सफलता पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है कि "कलाकार की सफलता की कसौटी केवल यह हो सकती है कि उसकी कृतियों से समाज आन्दोलित हुआ है या नहीं और यदि हुआ है तो उसकी रचनाओं से प्रभावित होनेवालों का सांस्कृतिक धरातल क्या है ।"[1] शान्ति की समस्या पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है कि शान्ति की आवश्यकता आज जितनी अधिक प्रतीत होती है उतनी वह पहले कभी और अनुभूत नहीं हुई थी ।

"आदर्श मानव राम" में दिनकर जी ने रामकाव्य के प्रमुख प्रणेताओं - वाल्मीकि, भवभूति, तुलसीदास और मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रामचरित्र की परिकल्पना का विवेचन किया है और यह सिद्ध कर दिया है कि युगीन मूल्यों से प्रेरणा ग्रहण कर तथा समय के दबाव को झेलते हुए रचनाकार अपने चारित्र नायकों की सृष्टि करते हैं । अगला निबन्ध हमें यह सोचने को बाध्य कर देता है कि राष्ट्रीयता पर कहीं-न-कहीं लगाम अवश्य लगायी जानी चाहिए । कबीर साहब से भेंट में दिनकर ने कबीर की जनवादी चेतना की ओर

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 23

संकेत दिया है । अगले दो निबन्धों में भारतीय संस्कृति का एक छोटा सा चित्र खींचा गया है । आगे उन्होंने बौद्ध धर्म की विश्वव्यापकता का विवेचन भी किया है । मैथिल कोकिल विद्यापति और विद्यापति और व्रजबुलि में उन्होंने विद्यापति के काव्य सौन्दर्य और महत्व का उद्घाटन किया है । विद्यापति के संबंध में दिनकर ने लिखा है कि "विद्यापति किसी भी वर्ग में समा नहीं सकते । उनके सत्कार के लिए ऐसा सिंहासन चाहिए जिसपर केवल वही बैठ सकते हैं ।"[1]

निर्गुण पंथ की सामाजिक पृष्ठभूमि एक आलोचनात्मक निबंध है जिसमें दिनकर ने हिन्दी के सन्त कवियों की क्रांतिकारी चेतना पर प्रकाश डाला है । महादेवी की वेदना शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने महादेवीजी की कविताओं के उस मूल भाव को- वेदना को - अपनी आलोचना का विषय बनाया है । महादेवी की कविताओं में जो अस्पष्टता, सांकेतिकता और रहस्य का आवरण है, इसकी ओर उन्होंने संकेत दिया है । 'साहित्य का नूतन ध्येय' से दिनकर ने साहित्यकार के सामाजिक दायित्व की ओर दृष्टिपात किया है ।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में इन निबन्धों की विशेष महत्ता रही है । ये निबन्ध दिनकर जी के आलोचक व्यक्तित्व को हमारे सामने उपस्थित करते हैं । साथ ही साथ सोचने - समझने की एक नयी दिशा हमें प्रदान कर देते हैं ।

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 64

7. वट-पीपल

यह तो दिनकर जी के बीस निबन्धों का संग्रह है जिसमें उनके व्यक्तित्व के विचारक एवं अनुभूति प्रधान पक्ष उभर कर आये हैं । दिनकर अपने विचार और लेखन में सदा निर्भीक और स्पष्ट रहे हैं । यहाँ भी उसकी कला, साहित्य तथा भाषा संबन्धी विचार अत्यन्त स्पष्ट रूप में व्यक्त हुए हैं । उनके विचार केवल विचारित ही नहीं वरन् अनुभूत भी हैं ।

कला के संबंध में दिनकर की स्पष्ट धारणायें रही हैं । उनका मत है कि साधना के लिए आत्मोसर्ग और आत्मदान करना पडता है । साथ ही वे भावुकता विहीन कला को नीरस मानते हैं । श्रेष्ठ साहित्य अथवा कला के लिए उन्होंने अनुभूति के समय भावुकता तथा रचना के समय बुद्धि का सहयोग आवश्यक माना है । कला संबंधी उनकी मान्यताओं का विश्लेषण करें तो एक प्रकार की द्विविधात्मकता इसमें दृष्टिगोचर होती है । कभी वे आत्मतत्व की अनिवार्यता पर बल देते हुए कहते हैं, कवि को अपने आपके प्रति पूर्ण ईमानदार होना चाहिए और कहीं निषेधात्मक वाणी में कहते हैं कि आज साहित्य को वैयक्तिक अनुभूतियों की अपेक्षा सार्वजनिक अनुभूतियों को अधिक महत्व देना है । लेकिन काव्य के उद्देश्य के संबंध में वे असन्दिग्ध हैं । उनके मत में कवि का लक्ष्य आत्मानुभूति होता है । उसका काम संसार को कुछ सिखाना नहीं प्रसन्न रखना है । कवि के शब्दों में सुन्दर काव्य का प्रेय है परन्तु उपयोगिता उसका श्रेय है । अपने सभी निबन्धों में यथाप्रसंग दिनकर ने काव्य की भौतिक तथा सामाजिक प्रकृति की वकालत की है । साहित्य के अतिरिक्त भाषा पर भी दिनकर ने अपने स्वतंत्र विचार प्रस्तुत किये हैं । वे भाषा को आत्मीयता उत्पन्न करने का साधन मानते हैं । उनके विचार में भाषा की आत्मीयता ही देश की एकता को बल प्रदान कर सकती है ।

इन निबन्धों के अध्ययन से हम समझ पाते हैं कि इन निबन्धों की मूलचेतना में एक ओर कवि के भारतीय संस्कारों के आदर्शवाद की छाया है तो दूसरी ओर सामाजिक कर्तव्यता के प्रति जागरूकता है । कला संबंधी लेखकीय दृष्टिकोण विशेष महत्व का है और वह आलोचना जगत् में विशेष विचारणीय रहा है ।

8. रेती के फूल

रेती के फूल दिनकर के पन्द्रह निबन्धों का एक संग्रह है जिनमें से केवल दो तीन निबन्ध आलोचनात्मक हैं । हिन्दी कविता में एकता का प्रवाह बिलकुल एक साहित्यिक निबन्ध है जिनमें हिन्दी कविता में हुए उतार-चढाव का लेखा जोखा है । कवि दिनकर ने इसमें पुनः नये सिरे से हिन्दी कविता का मौलिक चिन्तन किया है ।

दिनकर के अनुसार हिन्दी में एकता के आदर्श के लिए काम करनेवाले कवियों में माधवप्रसाद शुक्ल, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिली शरण गुप्त और सुभद्रा कुमारी चौहान के नाम आदर से लिये जाते हैं । वे मानते हैं कि गुप्तजी का "भारत भारती" हिन्दी राष्ट्रीयता को उत्थान देने में सफल हुई है ।

कला, धर्म और विज्ञान में दिनकर ने इन तीनों के परस्पर संबंध पर अपना विचार व्यक्त किया है । विज्ञानवालों ने कविता से आँख फेर ली है । दिनकर ने इसे एक बुरी घटना मान ली है । उन्होंने आज की

धार्मिक परिस्थितियों की कटु आलोचना भी की है । उनके अनुसार अब कला की प्रतिष्ठा खोई हुई है । उसे वापस लेने का मार्ग उन्होंने बताया है "कला की खोई हुई प्रतिष्ठा को वापस लाने का सही तरीका यह नहीं है कि हम उसकी प्रचारात्मकता पर ज़ोर दें, बल्कि यह कि हम उन गुणों की कद्र करें जिनका प्रतिनिधित्व करने के कारण कला आज तक आदरणीय रही है, उन मूल्यों पर ज़ोर डालें जिनका दर्शन या विकास वैज्ञानिक तर्कों से नहीं, प्रत्युत् कल्पना और सहज वृत्ति से किया जाता है ।"[1]

दिनकर की यह रचना निबन्ध काव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । लेकिन आलोचना की दृष्टि से इसका विशेष महत्व नहीं रहा है । दिनकर की अन्य रचनाओं की अपेक्षा इसमें मूल्यांकन का अभाव है ।

9. चेतना की शिखा

चेतना की शिखा दिनकर जी के सात निबन्धों का संग्रह है जो श्री अरविन्द और उनके काव्य तथा दर्शन से संबद्ध है । इसमें दिनकर ने श्री अरविन्द के काव्य की गहनता, मौलिकता एवं नवीनता का संकेत किया है । एक समझदार, प्रतिभासंपन्न आलोचक की दृष्टि इन निबन्धों में व्यक्त हुई हैं ।

अरविन्द जी के गंभीर व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए उन्होंने लिखा है -"मुझे अब तक ऐसा आदमी नहीं मिला जो यह दावा कर सके कि श्री अरविन्द को उसने पूरी तरह समझ लिया है ।"[2] श्री अरविन्द की

---

1. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 66
2. चेतना की शिखा - भूमिका

साहित्यिक मान्यताएँ शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने अरविन्द के साहित्य सृजन संबंधी अनुभूतियों की वार्ता अति संक्षिप्त रूप में उपस्थित की है । उनकी दृष्टि में श्री अरविन्द की साधना अथाह थी, उनका व्यक्तित्व गहन और विशाल था और उनका साहित्य दुर्गम समुद्र के समान है । स्वर्णिम प्रकाश, विकास, आत्म-समर्पण, शरीर, जन्म का चमत्कार, निर्वाण, सुररियल विज्ञान का स्वप्न, एलेक्ट्रोण आदि रचनाओं को दिनकर अरविन्द की साहित्य साधना का ज्वलंत उदाहरण मानते हैं । दिनकर मानते हैं कि अरविन्दजी की रचनाएँ उनके दर्शन के समान गंभीर, मौलिक एवं नवीन हैं ।

असल में चेतना की शिखा वह प्रकाश बिन्दु है जिसके माध्यम से श्री अरविन्द जी की साहित्य साधना मूर्त रूप धारण करते हुए हमारे सामने उपस्थित हो जाती है । इसमें सन्देह नहीं है कि इस रचना के माध्यम से दिनकर जी ने आलोचना की एक नूतन कसौटी प्रस्तुत की है और हिन्दी साहित्यालोचन के स्तर को ऊँचा उठाने की कोशिश की है ।

10. अर्धनारीश्वर

अर्धनारीश्वर के निबंधों के माध्यम से दिनकर ने साहित्य की कुछ विशेष प्रवृत्तियों, कुछ साहित्यकारों की साहित्यिक उपलब्धियों तथा कुछ विचारकों के निष्कर्षों का विश्लेषण किया है । इस संग्रह के अधिकांश निबंध बौद्धिक चिन्तन या विश्लेषण प्रधान हैं । दिनकर जी ने यहाँ रवीन्द्रनाथ, अरविन्द, विवेकानन्द, मार्क्स, गाँधी, जार्ज रसल आदि के विचारों का काफी विवेचन विश्लेषण किया है ।

इस पुस्तक में दिनकर ने विशेष रूप से रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री अरविन्द के चिन्तन और सृजन पर विचार किया है । कला के अर्धनारीश्वर शीर्षक निबन्ध में रवीन्द्र और इकबाल की तुलना करते हुए उन्होंने लिखा है - "एक अन्य रूप में देखने पर रवीन्द्र और इकबाल के बीच वह भेद झलकता है जो तांडव और लास्य में है । × × × सत्य दोनों में से किसी एक के तिरस्कार में नहीं, प्रत्युत् दोनों के समुचित सहयोग में है ।"[1] दिनकर ने अपनी इस रचना में रवीन्द्र के मानववाद, अरविन्द के अध्यात्म और गाँधी के अहिंसावादी विचारों को प्रसारित करने की कोशिश की है ।

इस निबन्ध संग्रह के कुछ निबन्ध बिलकुल साहित्यिक हैं जैसे - कविता का भविष्य, कविता राजनीति और विज्ञान, गुप्तजी कवि के रूप में, कविवर मधुर, जार्ज रसल का साहित्य-चिंतन, महर्षि अरविन्द की साहित्य साधना और कला के अर्ध नारीश्वर । नयी कविता के उत्थान की रेखायें और महाकाव्य की वेला भी इस विभाग में आते हैं ।

कविता का भविष्य में दिनकर ने काव्य कला के सामने आज जो बाधायें उपस्थित हैं, उसकी ओर प्रकाश डाला है ।- "एक बाधा तो यह है कि मनुष्य के संस्कार बड़े ही वेग से रूपान्तरित हो रहे हैं और कल्पना सेवी संप्रदाय के लिए इस प्रगति के कदम से कदम मिलाकर चलना ज़रा कठिन हो रहा है । × × × दूसरी बाधा बहुत कुछ पहली ही बाधा का स्वाभाविक परिणाम है । जब कविता और जीवन के बीच विज्ञान का कोलाहल और संस्कृति के रूपान्तारत होने का शोर छा गया और इस कोलाहल में कविता की

---

1. अर्ध नारीश्वर - दिनकर - पृ. 232

सत्ता विलीन होने लगी ।"[1] नई कविता की उत्थान की रेखाएँ शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने यह सूचित किया है कि विशिष्ट होते होते आज की हिन्दी कविता पतली हो गयी है । दिनकर ने बाबू बाल मुकुन्द गुप्त पर विचार करते हुए लिखा है कि वे कवि के रूप में कम, आलोचक और निबन्धकार के रूप में अधिक विख्यात हैं । इसी प्रकार उन्होंने भारतीय आत्मा की सरणी पर चलनेवाले श्री रामसिंहासन सहाज मधुर जी की काव्य-साधना पर प्रकाश डालने का प्रयास भी किया है । पाश्चात्य साहित्य के प्रमुख लेखक श्री जार्ज रसल के साहित्य-चिन्तन का विश्लेषण विवेचन भी उन्होंने किया है ।

अर्धनारीश्वर के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्तव में यह रचना दिनकर के आलोचक व्यक्तित्व का प्रतीक है । इसके आलोचनात्मक निबन्धों में मूल्यांकन का अभाव कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता ।

11. चक्रवाल (भूमिका)

"चक्रवाल" दिनकर का एक प्रमुख काव्य संकलन है जिसकी भूमिका में दिनकर ने रीतिकाल से लेकर प्रयोगवाद तक की हिन्दी कविता के विकास का अत्यन्त सुलझा हुआ सुसंबद्ध विवेचन किया है । यह भूमिका दिनकर के गंभीर अध्ययन का परिचय तो देती है साथ ही वह उनके मौलिक चिन्तन और आलोचनात्मक दृष्टि की भी परिचायिका है । उन्होंने पर्याप्त सहानुभूति और तटस्थता के साथ रीतिकाल, छायावाद और प्रयोगवाद पर विचार किया है । चक्रवाल अपनी भूमिका और संकलित कविताओं के द्वारा दिनकर के काव्य-विकास को समझने का सर्वोत्तम ज़रिया रही है ।

---

1. अर्ध नारीश्वर - दिनकर - पृ. 20-21

दिनकर के निबंध, यात्रा विवरण और डायरी

निबंध संग्रह

दिनकर के निबंधों के प्रमुख संग्रह है - धर्म नैतिकता और विज्ञान, आधुनिक बोध, विवाह की मुसीबतें, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गाँधी । इनके अलावा, साहित्यमुखी, वट-पीपल, वेणुवन, रेती के फूल, अर्ध नारीश्वर आदि रचनाओं में भी उनके निबंध संगृहीत हैं ।

1. धर्म नैतिकता और विज्ञान

धर्म नैतिकता और विज्ञान में दिनकर के तीन निबंध संकलित हैं । इन निबन्धों में दिनकर जी के चिंतन का एहसास हमें मिलता है । धर्म नैतिकता और विज्ञान की शाश्वत समस्याओं पर विचार करने के लिए दिनकर ने एक नवीन जीवन दर्शन को आधार बनाया है । इस जीवन दर्शन का निर्माण उन्होंने परंपरा प्राप्त भारतीय संस्कार और आधुनिक युग बोध के मिश्रण से किया है ।

पुस्तक के प्रथम निबन्ध में लेखक ने पुरानी और नयी वैयक्तिकता का तुलनात्मक विवेचन किया है । दिनकर मानते हैं कि पुरानी नैतिकता का आधार युवकों और युवतियों का सेक्स विषयक अज्ञान था । लेकिन नयी नैतिकता का आधार बुद्धिवाद है । वेश्या प्रथा के संबंध में अपना मत व्यक्त करते हुए दिनकर कहते हैं - जब तक आर्थिक वैषम्य और आर्थिक शोषण रहेगा, कोई भी नैतिकता इस समस्या को दूर नहीं कर पायेगी । दिनकर ने यहाँ सेक्स और

कला का अनिवार्य संबंध स्थापित करने का प्रयास भी किया है ।

"प्रेम एक है या दो" शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने प्रेम के स्वरूप पर विचार किया है । उन्होंने प्रेम के स्वरूप का स्पष्टीकरण काम भावना के संदर्भ में किया है । "प्रेम प्रजनन भी है और मानसोल्लास भी" जैसी उक्तियों में यह स्पष्ट है ।

धर्म नैतिकता और विज्ञान शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने धर्म और दर्शन पर पडनेवाले विज्ञान के गहरे प्रभाव का विवेचन किया है । वैज्ञानिक चिंतन का संक्षिप्त इतिहास इसमें प्रस्तुत किया गया है । आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है ।

2. आधुनिक बोध

आधुनिकता नए पुराने हर लेखक के लिए एक चुनौती के रूप में रही है । "आधुनिक बोध" में दिनकर ने आधुनिकता को अपनी तरह से समझने की कोशिश की है । कुछ निबन्धों में उन्होंने साहित्य पर विज्ञान के प्रभाव की चर्चा भी की है ।

आधुनिकता के प्रसार की प्रक्रिया में उसकी टकराहट परंपरा से होती है । यूरोप में जहाँ आधुनिकता परंपरा को रौंदकर आगे बढ रही है, भारत में परंपरा अब भी अपने अस्तित्व रक्षा के लिए संघर्ष कर रही है ।

आधुनिकता के प्रसार की प्रक्रिया के जो भिन्न रूप यूरोप और भारत में हैं, दिनकर इसमें भारत के पक्ष में खडे हुए हैं । उनका कहना है - "भारत की एक विशेषता यह है कि वह समस्त संसार की लडाई अकेला लड रहा है । जब से विज्ञान की बढती हुई है, प्रायः सभी देशों में अतीत और वर्तमान के बीच संघर्ष छिड गया और प्रायः सभी देशों में अतीत वर्तमान से हार गया । केवल भारत में वह आज भी ज़ोरों से युद्ध कर रहा है ।"[1]

आधुनिक बोध के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आधुनिकता के प्रति खीझ एवं अविश्वास का भाव दिनकर में हैं - "आधुनिकता का कोई मूल्य नहीं है, बल्कि अत्याधुनिक कवि और लेखक जो कुछ लिखते हैं, उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह मूल्यों के विघटन का पर्याय है ।"[2] परंपरा को एकदम रौंदकर आगे बढनेवाली आधुनिकता से दिनकर काफी निराश और क्षुब्ध हैं । मध्यकालीन समझ एवं मानसिकता से निर्मित दिनकर के विचारों को समझने में ये निबंध अवश्य मदद देते हैं । इन निबन्धों की भाषा साफ सुथरी है और शैली अत्यन्त आकर्षक ।

3. विवाह की मुसीबतें

विवाह की मुसीबतें दिनकर के नौ निबंधों का संग्रह है । इसके निबंध प्रेम, विवाह, काम, नैतिकता, शिक्षा, लोकतन्त्र, धर्म, विज्ञान, उपासना, और देश-दशा से संबंधित हैं । ये निबंध काफी गंभीर और जीवन्त चिन्तन के परिणाम हैं । इस पुस्तक के तीन निबन्ध पहले भी प्रकाशित हु हैं । अन्य

---

1. आधुनिक बोध - पृ. 15
2. आधुनिक बोध - पृ. 36

निबन्धों की चर्चा करते हुए कहना पडता है - उनमें वस्तु स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण, भारतीय प्रसंगों से उनका अन्त:संबंध और विचार-प्रेरकता है । अपने इन निबन्धों में लेखक ने सामाजिक स्थितियों में निहित मनोवैज्ञानिक विचित्रताओं को भी परखा है । कहीं कहीं लेखक ने सुन्दर व्यंग्योक्तियों का सहारा लेकर अपनी बातों का समर्थन किया है । सचमुच दिनकर के ये निबंध मनुष्य को सिखाने और उसको मोदित करने में सफल सिद्ध हुए हैं ।

4. राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता

'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता दिनकर के भाषणों एवं लेखों का संकलन है जिसमें उन्होंने मुख्य रूप से राष्ट्रभाषा हिन्दी के संबंध में अपने विचार स्पष्ट किए हैं । दिनकर की दृष्टि में भाषा मनुष्य के अस्तित्व के साथ जुडी होती है । एक स्वतंत्र देश के लिए एक स्वतंत्र भाषा की ज़रूरत होती है । पराई भाषा के माध्यम से देश कभी भी मौलिक चिन्तन नहीं प्रस्तुत कर सकता । दिनकर के अनुसार "पराई भाषा सांस्कृतिक दृष्टि से गुलाम बनाती है जो गुलामी की पराकाष्ठा है ।"[1]

दिनकर राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का समर्थन करते थे । लेकिन उनका लक्ष्य प्रादेशिक भाषाओं का विरोध कभी नहीं था । उनकी दृष्टि में संपूर्ण देश की संपर्क भाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में एक भाषा का होना अनिवार्य है और व्यापकता और समृद्धि की दृष्टि से हिन्दी ही इस पद पर बिठलाने योग्य है । भाषा का राष्ट्रीय एकता से गहरा संबंध है ।

---

1. राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता - दिनकर - पृष्ठ-4,5

भाषा को लेकर खडे होनेवाले झगडों को साफ करना राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिए आवश्यक है - "भाषा को लेकर खडे होनेवाले झगडों से यह एकता का सूत्र छिन्न-भिन्न होता है । अतः ज़रूरत इसको जोडने की है । हमारी राष्ट्रीय एकता के हित में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अंग्रेज़ी को प्रभुता के पद से शीघ्र हटाकर उसकी जगह देशी भाषाओं को प्रतिष्ठित करें ।"[1] यह बताने की ज़रूरत नहीं कि इन निबंधों में एक हिन्दी प्रेमी के विचार ही नहीं बल्कि एक देशप्रेमी के विचार भी अभिव्यक्त हुए हैं ।

5. राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गाँधी

प्रस्तुत रचना में दिनकर ने राष्ट्रभाषा आन्दोलन की विभिन्न समस्याओं पर विचार करते हुए इस आन्दोलन में गाँधीजी की भूमिका निर्धारित की है । प्रथम अध्यायों में राष्ट्रभाषा आन्दोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देते हुए दिनकर जी ने साबित किया है कि हिन्दी की प्रकृति शुरू से ही सार्वदेशिक रही । हिन्दी सारे हिन्दुस्तान की संपर्क भाषा रही है । गाँधीजी की भाषानीति का विश्लेषण भी दिनकर ने किया है । उनकी भाषा नीति की प्रशंसा करते हुए दिनकर ने कहा कि अगर देश स्वराज्य के बाद गाँधीजी के इन विचारों पर चला होता तो भाषा नीति के प्रश्न पर इतनी समस्यायें कभी नहीं होती । एक ज़माने में दक्षिण भारत के लोगों ने हिन्दी प्रचार आन्दोलन का खुलकर समर्थन किया था । इन हिन्दी प्रचार कार्यों का उल्लेख भी इस पुस्तक में मिलता है ।

---

1. राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता - दिनकर - पृ. 24

दिनकर के विचारात्मक, भावात्मक, साहित्यिक और मनोविकार संबंधी कुछ निबंध रेती के फूल में मिलते हैं । हिम्मत और ज़िन्दगी, 'ईर्ष्या, तू न गयी मेरे मन से,' हृदय की राह, कर्म और वाणी, खड्ग और वाणी, 'कला, धर्म और विज्ञान,' भविष्य के लिए लिखने की बात, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता, 'नेता नहीं, नागरिक चाहिए,' भगवान बुद्ध, संस्कृति है क्या तथा भारत एक है जैसे विभिन्न विषय पर लिखे गये अनेक सुन्दर निबंध रेती के फूल में हैं ।

पुरुष और नारी के अविच्छेद्य संबंध पर प्रकाश डालनेवाला "अर्ध नारीश्वर," राष्ट्रप्रेम और विश्व प्रेम का परस्पर संबंध दिखानेवाला "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी", भारतीय संस्कृति के विभिन्न चरणों का विवेचन करनेवाला "संस्कृति संगम", बौद्ध धर्म की प्रासंगिकता पर लिखा हुआ "बौद्ध धर्म की विश्वव्यापकता" शान्ति की समस्या आदि वे श्रेष्ठ निबंध हैं जो वेणुवन में संकलित हैं ।

वट-पीपल, साहित्य मुखी, जैसी रचनाओं में भी दिनकर के निबंध संगृहीत हैं । विभिन्न विषयों को लेकर लिखे गये निबंधों पर दिनकर के व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य पड़ा है ।

यात्रा-विवरण

1. मेरी यात्रायें

यह यात्रावृत्त दिनकर की विदेशी यात्राओं का रोचक वर्णन प्रस्तुत करता है । कवि के भाव-बोध, युगबोध और संस्कृति बोध का

उदात्त रूप इस रचना में भी व्यक्त हुआ है । इंगलैंड, पालैन्ड, जर्मनी, रूस, चीन और मारेशस की यात्राओं से उत्पन्न मानसिक प्रतिक्रियाओं को दिनकर ने गहरी अनुभूति के साथ व्यक्त किया है ।

2. देश-विदेश

देश विदेश में सौराष्ट्र, काश्मीर और यूरोप की यात्रा का वर्णन हुआ है । सौराष्ट्र की सांस्कृतिक विशेषताओं और कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन बड़ी ही सरल एवं रोचक भाषा में किया गया है । पुस्तक के यूरोप यात्रा संबंधी भाग में लेखक के अनुभवों, प्रतिक्रियाओं, उद्‌गारों और विचारों की झलक मिलती है ।

दिनकर की डायरी

दिनकर की डायरी एक साहित्यिक की डायरी है । अतः इसमें स्वभावतः उनके साहित्य विषयक विचार सबसे अधिक मिलते हैं । इसमें दिनकर के व्यक्तित्व का पूरा चित्र नहीं उभरता, साहित्यिक गतिविधियों की झलक भी नहीं मिलती । लेकिन हिन्दी भाषा और साहित्य, काव्य साधना तथा विभिन्न साहित्यकारों की रचनाओं के विषय में दिनकर के विचार उपलब्ध होते हैं । दिनकरजी के विचारों को जानने की दृष्टि से भी इस डायरी का विशेष महत्व है ।

संस्कृति संबंधी, संस्मरणात्मक और अन्य विषयक गद्य

संस्कृति संबंधी रचनायें

1. संस्कृति के चार अध्याय

संस्कृति के चार अध्याय में दिनकर जी ने भारतीय संस्कृति

की विशेषता को एक बडे सुन्दर रूपक द्वारा प्रस्तुत किया है । दिनकर की मूल चेतना राष्ट्रवादी थी । वे मानते हैं कि राष्ट्रीयता को पक्की नींव डालने के लिए भारत के अतीत की खोज ज़रूरी हो जाती है । इसी विश्वास से ही उन्होंने संस्कृति के चार अध्याय की रचना की है । "संस्कृति के चार अध्याय" सचमुच भारतीय संस्कृति का विश्वकोश बन गया है । भारतीय चेतना की सतत विकास धारा को दिनकर ने इस तरह प्रस्तुत किया है कि वह सहज रूप से एक साहित्य ग्रंथ बन गया है ।

2. भारत की सांस्कृतिक कहानी

भारत की सांस्कृतिक कहानी में भी दिनकर ने भारतीय सांस्कृतिक चेतना की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है । भारतीय संस्कृति, जिसने अपने आलोक से संपूर्ण विश्व को आलोकित किया, वहीं दिनकर के साहित्य का प्रमुख प्रतिपाद्य रही है । यह पुस्तक वास्तव में संस्कृति के चार अध्याय का एक लघुरूप है, जिसमें भारतीय संस्कृति का संक्षिप्त, किन्तु स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया गया है । भाषा की सरलता एवं विवेचन की स्वच्छता के कारण यह रचना सर्वजन ग्राह्य बन पायी है ।

3. हमारी सांस्कृतिक एकता

हमारी सांस्कृतिक एकता में दिनकर ने भारतीय संस्कृति के उद्भव एवं विकास की रेखाएँ खींची हैं । दिनकर जी का मत है कि भारत वर्ष की राष्ट्रीय एकता हमारी संस्कृति में परिलक्षित होती है । इसमें उन्होंने संस्कृति की परिभाषा देने का प्रयास किया है । साथ ही देश की एकता, भारतीय समाज की रचना, आर्य एवं आर्येतर जातियों के मिलन आदि विषयों पर विचार किया है ।

4. भारतीय एकता

भारतीय एकता में दिनकर ने राष्ट्रीय एकता की ज्वलंत समस्या को हमारे सामने उपस्थित किया है । इसमें भारतीय एकता के सभी पहलुओं पर बडी ही छानबीन, अन्तर्दृष्टि और स्पष्टता के साथ विचार किया गया है । इसकी भूमिका में दिनकर ने सूचित किया है कि - "स्वतंत्रता तो हमने प्राप्त कर ली, लेकिन राष्ट्रीय एकता का प्रश्न, ज्वलन्त रूप में हमारे सामने खडा है । हमारे सारे इतिहास की शिक्षा है कि हम स्वतन्त्र तभी तक रहते हैं जब तक हम एक रहते हैं । जब भी एकता खिडकी से होकर निकल भागती है, हमारी स्वतंत्रता सदर दरवाज़ा खोलकर चल देती है ।"[1] भारतीय एकता के सवाल का दिनकर ने सुविदित ढंग से इसमें विवेचन किया है ।

संस्मरणात्मक रचनायें

1. लोकदेव नेहरू और 2. संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ

लोकदेव नेहरू में दिनकर ने नेहरूजी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की है । विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार, कुशल राजनीतिज्ञ, दार्शनिक एवं चिन्तक नेहरूजी का बहुत ही आकर्षक चित्र इस रचना में प्रस्तुत किया गया है । पहले दो अध्यायों में पंडित नेहरू के संस्मरण हैं । अन्य तीन अध्यायों में दिनकर ने नेहरू के सार्वजनिक विचार, जीवन दर्शन और कर्म आदि उपलब्धियों का विश्लेषण संस्मरणात्मक शैली में किया है ।

"संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ" इस बात का निदर्शक है कि कवि होने के कारण दिनकर में संस्मरण-लेखन कलाक्षमता विद्यमान है । इन

---

1. भारतीय एकता -(भूमिका) - दिनकर

संस्मरणों की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ रचना धर्मिता के आयाम बहुत पुष्ट रूप में उभरे हैं । जायसवाल जी, श्री राहुल सांस्कृत्यायन, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, आचार्य रघुवीर, निराला, बेनीपुरी जी, काका साहेब, लोहिया, डा. राधाकृष्णन, डा. राजेन्द्र प्रसाद, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, किशोरी दास वाजपेयी, टैडन जी जैसे अनेक महान विभूतियों के संस्मरण इसमें हैं । इनमें संकलित संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ व्यक्तिगत होते हुए भी अधिकांश रूप में कर्तृत्वगत हैं ।

अन्य विषयक गद्य

1. हे राम

प्रस्तुत पुस्तक तीन रेडियो रूपकों का संग्रह है जो क्रमशः स्वामी विवेकानन्द, महर्षि रमण एवं महात्मा गाँधी के जीवन से संबद्ध हैं । भारतीय सांस्कृतिक चेतना के इन तीन महान उन्नायकों के चिन्तन और जीवन को लोकप्रिय शैली में प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास इसमें हुआ है ।

2. उजली आग

उजली आग दिनकर जी की 46 बोधकथाओं का संग्रह है । आदमी का देवत्व, सुकरात का मकान, गुफावासी, दो ध्रुव, मन्दिर की वेदी, मृत्यु, साहसी माता, कौआ और बाज इसकी कुछ मार्मिक कहानियाँ हैं जो जीवन में क्रियाशील होने के लिए प्रेरणा देती हैं । दिनकर जी ने यहाँ जीवन का सार निचोड कर रख दिया है ।

3. चित्तौर का साका

दिनकर की सात बाल कथाओं का संग्रह है चित्तौर का साका । हठी हम्मीर, मेवाड मुकुट, राणा सांगा, चित्तौर का पहला साका जैसी कहानियों के माध्यम से दिनकर ने राष्ट्रीय उद्‌बोधन का कार्य सफलतापूर्वक किया है ।

दिनकर साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है उन्होंने कवि के रूप में प्रतिष्ठा पायी, किन्तु वे उतने ही कुशल गद्यकार भी है । उनके काव्यों में विविधता है, उसी प्रकार गद्य रचनाओं में भी । दिनकर के व्यक्तित्व एवं साहित्य सर्जना का अटूट सिलसिला "प्रण भंग" से लेकर "राश्मिलोक" तक की काव्य रचनाओं में और "मिट्टी की ओर से" लेकर "विवाह की मुसीबतें" तक की गद्य रचनाओं में मौजूद है । दिनकर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों एक दूसरे का पूरक है । व्यक्तित्व के अनुरूप ही दिनकर की रचना-यात्रा संपन्न हुई है । उनकी कविताओं और गद्य रचनाओं में जो निर्भीकता है, जो स्पष्टवादिता है, वे अवश्य उनके व्यक्तित्व की ही उपज है । कवि, निबंधकार, आलोचक आदि के रूप में दिनकर के कृतित्व का जो चित्र हमारे सामने उपस्थित है, उसके आधार पर हम अवश्य कह पायेंगे - अपने विशिष्ट व्यक्तित्व एवं बहुआयामी कृतित्व की दृष्टि से दिनकर हिन्दी साहित्य के कालजयी साहित्यकार हैं ।

अध्याय - दो

दिनकर का आलोचना साहित्य

आलोचना साहित्य का स्वरूप

सत्य एक अनन्त शक्ति है । सफल कवि सत्य की इस अनन्तता की झाँकी हमें सौन्दर्य में लपेटकर दिखला देते हैं । कविता का यह सत्य, दर्शन, विज्ञान अथवा धर्म का सत्य नहीं है । काव्यात्मक सत्य को अन्य सत्यों से बिलकुल विभक्त करके देखना आवश्यक है । सफल आलोचक अपनी आलोचना के सहारे उस सत्य का हमें दर्शन कराता है, जो कविता के बाह्य रूप के भीतर प्रच्छन्न है । काव्यात्मक सत्य में विश्व के सर्वश्रेष्ठ चिंतन और ज्ञान निहित हैं । इसको जन मन तक प्रसारित करने का कार्य आलोचना करती है । इस दृष्टि से आलोचना कृति विशेष के अध्ययन और मूल्यांकन करनेवाली एक उच्चस्तरीय साहित्यिक विधा है । साहित्य के क्षेत्र में आलोचना किसी साहित्यिक कृति का सम्यक् एवं समग्र निरीक्षण है ।

"आलोचना" शब्द के मूल में 'लोच्' धातु है जिसका अर्थ है देखना । इसलिए किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या और उसका मूल्यांकन करना आलोचना है । आज समीक्षा, समालोचना आदि शब्दों का प्रयोग भी आलोचना के समानार्थी या पर्यायवाची के रूप में होता है यद्यपि इन शब्दों में सूक्ष्म अर्थ भेद है । "अंग्रेज़ी में आलोचना के लिए क्रिटिसिज़्म

शब्द प्रयुक्त है जिसका अर्थ है निर्णय ।"[1]

आलोचना का स्वरूप निर्धारित करते समय स्वभावत: यह प्रश्न उठता है कि आलोचना और कवि कर्म में क्या संबंध है । भारतीय आचार्यों ने आलोचकों के सहृदय होने की ज़रूरत पर बल दिया है । कविता कवि की आत्मा का प्रस्वेद है अत: उससे आनन्द प्राप्त करने के लिए एक कवि हृदय की ज़रूरत है । अर्थात् एक उत्तम कवि ही उत्तम आलोचक बन सकता है । पं. महावीर प्रसाद जी का निम्न कथन इस बात को और भी प्रमाणित करता है - "इनके {कवियों के} कार्य से आनन्द का यथेष्ट अनुभव वे ही कर सकते हैं जिनका हृदय इन्हीं के सदृश, किंबहुना इनसे भी अधिक सुसंस्कृत, कोमल और भावग्राही होता है ।"[2] पाश्चात्य साहित्यकार बेन जनसन की दृष्टि में कवि कर्म और आलोचक कर्म में कोई अन्तर नहीं है । वे आलोचना को कवियों का ही कार्य समझते हैं । "किसी कवि के विषय में मत निर्धारित करना कवि का ही कार्य है और वह भी सब कवियों का नहीं, केवल मुख्य कवियों का ही कार्य है ।"[3]

---

1. Criticism is the art of Judging the Qualities and values of an aesthetic object whether in literature or in fine arts. It involves the formation and expression of Judgement.

(Encyclopedia Britanica)

2. समालोचना - पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी - पृ. 26

3. To Judge a poet is only the faculty of poets and not of all poets, but the best.

(Ben Johnson Vol III Page 647)

साहित्य की रचना और उसकी समालोचना की धारायें समानान्तर होती हैं । जिस प्रकार आलोचना साहित्य पर आश्रित है उसी प्रकार साहित्य भी आलोचना से निर्देशित होता है । आलोचना का मुख्य उद्देश्य साहित्य के मर्म का उद्घाटन करना है । आलोचक की प्रतिभा काव्य के बाह्यांगों के साथ-साथ उसके अन्तरंग को भी प्रकाश में लाती है । काव्य-रचना कहाँ तक पाठकों के हृदय को आलोडित-विलोडित करने में सफल हुई हैं । यह देखना आलोचक का काम है । इसके साथ ही वह आलोच्य-कृति के रसास्वादन में पाठक की मदद करता है । इसके लिए आलोचक को पहले कृतिकार से एकसाथ करना पडता है । इसलिए ही बच्चन जी ने कहा - "किसी कविता का अर्थ तटस्थ रहकर भी जाना जा सकता है, पर भावनाओं को समझने के लिए अपने को कवि के साथ एक करना पडता है । साहित्य को समझने के लिए जीवन के अनुभव की आवश्यकता होती है ।"[1] वास्तव में आलोचना सृजनात्मक साहित्य का ही अंग होता है ।

कवि या कलाकार अपने हृदयगत उद्गारों को वाणी देता है । पाठक उससे आनंद प्राप्त करता है । आलोचक अपनी आलोचना के द्वारा अनुवाचक की रुचि और बोध वृत्ति का परिष्कार कर उसे काव्य के रसास्वादन में सक्षम बना देता है । "आलोचना काव्य में प्रयुक्त कौशल का, रहस्य उद्घाटन करती है, उस मार्ग का भेद खोलती है जिसपर चलकर कवि ने अपने भावों को अभिव्यक्त किया है, अपनी कविता में आनन्द प्रभाव या चमत्कार उत्पन्न किया है । इसलिए रचनात्मक आलोचना के पढने से पाठक की आनंद-ग्राहिणी योग्यता का प्रसार होता है ।"[2]

---

1. मधुशाला - भूमिका - हरिवंशराय बच्चन - पृ. 15-16
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 117

अपने युग के अनुसार साहित्य के मूल्य की पुन:प्रतिष्ठा करना आलोचक का काम है । समय की गति के अनुसार साहित्य के मान बदलते रहते हैं । आलोचना समय की गति के अनुसार साहित्य की प्राण-प्रतिष्ठा करती है । "आलोचना का मार्ग उस विचार द्वारा निर्दिष्ट होता है जो उसके अस्तित्व का विधान है ; वह विचार है विश्व के सर्वश्रेष्ठ ज्ञान और चिंतन को हृदयंगम और प्रसारित करने का नि:संग प्रयत्न करना, तथा सत्य एवं विचारों को अविरल रूप से प्रवाहित करना ।"[1]

व्याख्या, प्रभावग्रहण और मूल्यांकन के माध्यम से आलोचना एक ओर साहित्य की व्याख्या करती है तो दूसरी ओर उसकी प्रभाव-शक्ति को आँकती है, उसपर अपना निर्णय देती है । वह जीवन के सत्य को अक्षुण्ण रखने में कवि की सहायता करती है । इसप्रकार वह साहित्य एवं जीवन दोनों का मार्ग निर्देशन करती है । आलोचना सृजनात्मक साहित्य की भाँति जीवन की अनुभूति से बनी हुई है । साहित्य सीधे जीवन या जीवन से बने दृष्टिकोण से अनुभूति ग्रहण करके उसकी अभिव्यक्ति करता है तो आलोचना उस अनुभूति को आत्मसात करके उसकी अभिव्यक्ति करता है और आत्मलाभ उठाता है । "कलाकार वह मार्गदर्शक है जिसने जंगल को साफ करके मार्ग का निर्माण किया है । आलोचक वह प्रथम निरीक्षक है जो इस मार्ग पर परिभ्रमण करके इसके निर्मित स्वरूप का निरीक्षण करता है ।"[2]

---

1. Its couse is determined for it by the idea which gs the law of its being, the idea of a disinterested endeavour to learn and propagate the best that is known and thought in the world and thus to establish a current of fresh and true ideas-Essays in Criticism-Mathew Arnold-Page 37

2. The Making of Literature-Scott James-Page375-376.

उपर्युक्त विश्लेषण से हम समझते हैं कि सृजनात्मक साहित्य और आलोचनात्मक साहित्य अभिन्न रूप से परस्पर संबद्ध हैं । सच्चे समालोचक कृति के अध्ययन से उसकी विशेषताओं से प्रभावित होकर अंत में कवि की उस विशिष्ट मनोदशा पर पहुँच जाते हैं जिसने कवि को सृजन की प्रेरणा दी है । प्रत्येक युग के आलोचक उस युग की रचना को अपने अनुकूल बनाये करते हैं । संक्षेप में हम कह सकेंगे - काव्य रचना जीवन की आलोचना है और आलोचना इस प्रकार आलोचना की आलोचना ।

आगे हम हिन्दी आलोचना साहित्य के उद्भव एवं विकास पर विचार करेंगे ।

हिन्दी आलोचना साहित्य का उद्भव एवं विकास

हिन्दी आलोचना का वास्तविक आरंभ आधुनिककाल में हुआ । इससे पूर्व आलोचना की दिशा में जो भी प्रयत्न हुए उनका बहुत अधिक महत्व नहीं है । आरंभिक हिन्दी आलोचना का प्रेरक तत्त्व संस्कृत काव्यालोचना में लक्षित होता है । हिन्दी साहित्य में साहित्य शास्त्र की चर्चा कृपाराम से शुरू हुई । बाद में आचार्य केशव ने काव्य के सभी अंगों का शास्त्रीय निरूपण किया । लेकिन इन आचार्यों ने कोई मौलिक उद्भावना नहीं प्रस्तुत की । उस समय भी हिन्दी साहित्य शास्त्र का आधार वास्तव में संस्कृत साहित्य-शास्त्र ही रहा । उस समय की आलोचना का सैद्धांतिक रूप आचार्य केशव के "कवि प्रिया" एवं "रसिकप्रिया" जैसे काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में उपलब्ध हैं । परिष्कृत एवं प्रौढ़ गद्य के अभाव में आरंभिक काल में हिन्दी

आलोचना अत्यन्त शुष्क रही । फिर भी इस युग की आलोचना संबंधी रचनाओं का इतना मूल्य अवश्य है कि इन्होंने आधुनिक आलोचना की पृष्ठभूमि तैयार की ।

आधुनिक काल

रीतिकाल में उपलब्ध काव्यांग-विवेचन से हिन्दी के आलोचना-साहित्य के विकास के लिए एक व्यापक पृष्ठभूमि की योजना हो गई थी । आधुनिक कालीन आलोचकों ने इस पृष्ठभूमि का उपयोग करते हुए आलोचना को विशिष्ट गति प्रदान की है । इस युग में जनता अपने जीवन और साहित्य पर नवीन दृष्टि से विचार करने लगीं । "पाश्चात्य शिक्षा और अंग्रेज़ों के संपर्क ने भारत में नवीन बौद्धिक जागृति ला दी और उन्हें समाज-सुधार तथा देश की सर्वतोन्मुखी विकास के लिए प्रेरित किया । भारतीय भी अपने जीवन और साहित्य पर नवीन दृष्टि से विचार करने लगा ।"[1] भारतेन्दु युग में प्रारंभ होनेवाली नवीन साहित्यिक आलोचना इसी नवीन बौद्धिक क्रांति का सहज और स्वाभाविक परिणाम है । इस युग तक आलोचना से तात्पर्य काव्यालोचना से थी, वह प्रमुख रूप से सैद्धान्तिक आलोचना रही । परंतु गद्य के विकास के कारण इस युग में आकर काव्य संबंधी आलोचनाओं के साथ गद्य साहित्य की विधाओं के बारे में भी आलोचनाएँ निकलने लगीं । सैद्धान्तिक आलोचना के समकक्ष व्यावहारिक आलोचना का विकास इस युग में दिखाई देने लगा ।

साहित्य की सर्जनात्मक शक्ति बदल जाती है तो उसके अनुरूप आलोचनात्मक साहित्य भी अपनी दिशा बदल देता है । आधुनिक काल

---

1. आधुनिक हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास - डा. भगवत् स्वरूप मिश्र - पृ. 227

में आकर सृजनात्मक साहित्य में जो बडा परिवर्तन हुआ उसके अनुरूप आलोचनात्मक साहित्य के शिल्प और वस्तु में आमूल परिवर्तन हो गया । इस परिवर्तन में पत्र-पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा । आगे हम आधुनिक हिन्दी काव्यालोचना के विकास में योग देनेवाले आलोचकों का और हिन्दी काव्यालोचना के विकास की सीढियों का अध्ययन करेंगे ।

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे । उनके आगमन से हिन्दी साहित्य में एक नवीन जीवन परिव्याप्त हुआ । आलोचना के स्वरूप और प्रकार में नये तथ्यों का आविर्भाव हुआ । इस युग में सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक आलोचना की ओर लगभग समान ध्यान दिया गया । भारतेन्दु ने एक ओर तो नाटक रचना के सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए "नाटक" शीर्षक कृति उपस्थित की है तो दूसरी ओर हिन्दी भाषा की उन्नति, काव्य भाषा, काव्य और लोक जीवन का संबंध इत्यादि विषयों पर स्वतंत्र लेख भी लिखे । उनकी कविताओं में भी काव्य सिद्धान्तों की स्फुट चर्चा उपलब्ध होती है ।

भारतेन्दु युग के प्रमुख प्रवर्तकों में श्री बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन", बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बाबू राधाकृष्ण दास आदि उल्लेखनीय हैं । इन कवियों के अनेक लेख समीक्षात्मक हैं । इन लेखों में भारतेन्दु युग के आलोचना साहित्य का स्वरूप विद्यमान है ।

भारतेन्दु युग की आलोचना की प्रकृति मुख्यतः गुण-दोष विवेचन तक सीमित थी । इस समय की समीक्षा में किसी विशेष शास्त्रीय नियम का अनुवर्तन नहीं हो रहा था । भारतेन्दु युग की आलोचना का सच्चा स्वरूप तत्कालीन पुस्तक समीक्षाओं में मिलता है । इस युग की आलोचना पर विचार करते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है - "हम देखते हैं कि इस समय की समीक्षा में किसी विशेष शास्त्रीय नियम का अनुवर्तन नहीं हो रहा था, बल्कि भिन्न-भिन्न समीक्षक अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार रचनाओं के गुण-दोष उद्घाटित कर रहे थे । यह हिन्दी की नवीन प्रयोगकालीन समीक्षा का स्वरूप था ।"[1] भारतेन्दु युगीन आलोचना का महत्व यह है कि इस युग की पुस्तक-समीक्षाओं की परंपरा से ही हिन्दी आलोचना का क्रमबद्ध विकास हुआ है ।

द्विवेदी युग :

द्विवेदी युग का प्रवर्तन आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया था । उस युग की यही विशेषता थी कि एक ओर काव्य-भाषा के रूप में खडीबोली की प्रतिष्ठा हो रही थी तो दूसरी ओर राष्ट्रीय सांस्कृतिक क्षेत्र में स्वतंत्रता आन्दोलन ज़ोर पकड रहा था । द्विवेदी जी ने "सरस्वती" के माध्यम से सर्जन और समीक्षा को रूपायित करने का प्रयास किया । नवीन युग की सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप साहित्यिक निर्माण की प्रेरणा देना इस युग की आलोचना का लक्ष्य था । इस युग के प्रमुख आलोचक थे पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु, हरिऔध, पं. कृष्ण बिहारी मिश्र, पं. पद्मसिंह शर्मा, डा. श्यामसुन्दर दास, बालमुकुन्द गुप्त, देवीप्रसाद "पूर्ण", जगन्नाथ दास, रत्नाकर और मैथिली शरण गुप्त ।

---

1. हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ - राजकमल प्रकाशन - पृ. 97

द्विवेदी युग के आलोचकों ने हिन्दी आलोचना के विकास-पथ की नींव डाली । उस युग में दो प्रकार की आलोचना-पद्धतियाँ प्रकट हुईं । एक तो रीतिकाल की आलोचना-पद्धति का खडीबोली संस्करण थी तो दूसरी, जीवन के संदर्भ में साहित्य को जाँचने-परखने के आग्रह से बनी हुई । इस दूसरे ढंग के आलोचक आलोचना को वस्तुनिष्ठ और पूर्वाग्रहमुक्त करने की आवश्यकता महसूस करते थे । फिर भी द्विवेदी युग में समीक्षा का आदर्श रूप प्रकट नहीं हुआ । इसके संबंध में डा. निर्मला जैन ने कहा है - "द्विवेदी युग की आलोचना में कृति के गुण-दोष निरूपण, तुलना, शैली-विवेचन आदि के अतिरिक्त जीवन के संदर्भ में साहित्य की उपयोगिता की परख की ओर तो ध्यान दिया जाने लगा था किन्तु कवियों की विशेषताओं और उनकी अन्तःप्रवृत्ति की छानबीन आरंभ नहीं हुई थी ।"[1] द्विवेदी युग के अनेक आलोचक पाश्चात्य समालोचना से प्रभावित थे । वे एक नयी काव्य-रुचि के निर्माण की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे । लेकिन खेद की बात है, इस युग में आलोचना का कोई साहित्यिक मानदण्ड निर्धारित नहीं हो सका और आलोचना में गंभीर विश्लेषणात्मक बौद्धिकता भी नहीं आ पायी ।

शुक्ल युग :

हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में समीक्षक-प्रवर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का योग अत्यंत प्रमुख है । उन्होंने अपने पूर्ववर्ती समीक्षकों के समीक्षा कार्यों का समाहार करके एक नये, व्यापक समीक्षादर्श का निरूपण किया । हिन्दी आलोचना साहित्य को ठोस सैद्धान्तिक आधार तथा वैज्ञानिक प्रणाली प्रदान करने का श्रेय शुक्ल को प्राप्त हुआ है । उन्होंने परंपरागत शैलियों के प्रति सम्मान रखकर भी अपने युग की आवश्यकताओं को पहचानकर उनके अनुरूप हिन्दी

---

1. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी - डा. निर्मला जैन - पृ. 29

की अपनी आलोचना शैली को जन्म दिया । आचार्य शुक्ल की मान्यताएँ लोकमंगल की भावना से अनुप्राणित हैं और सामाजिक एवं साहित्यिक चेतना से संबंधित भी । उनकी समीक्षा के संबंध में डा. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है - "उनकी समीक्षा का प्रमुख तत्व है व्यक्तिगत योग क्षेम से मुक्ति, रागात्मक प्रसार, लोकमंगल तथा रसानुभूति ।"[1] शुक्लजी की महिमा का गायन करते हुए डा. रामदरस मिश्र ने लिखा है - "पहली बार एक हिन्दी समीक्षक ने पश्चिम की चेतना अपने ढंग से ग्रहण कर अपनी ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, साहित्यिक चेतना को आगे बढाया और अपने गहन पांडित्य और पारदर्शी प्रतिभा तथा दृष्टि से साहित्य का अपेक्षाकृत व्यापक और गहरा विवेचन किया है ।"[2]

हिन्दी आलोचना में शुक्ल ने जिस स्वतंत्र समालोचना पद्धति को जन्म दिया, वह बडी ही प्रभावशाली सिद्ध हुई । परवर्ती समीक्षक शुक्लजी की मौलिक विचार धारा और आलोचना को आधार बनाकर अपने ढंग से विकास करते रहे । इनमें गुलाबराय. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चन्द्रबली पाण्डेय, लक्ष्मीनारायण सुधांशु आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

शुक्ल युग की समीक्षा-पद्धति की परिसीमायें भी अनेक थीं । उसमें परिवर्तनशील वस्तु-जगत् और उसमें उद्भावित होने वाले साहित्य-रूपों और प्रक्रियाओं को ग्रहण करने की वस्तुमुखी प्रवृत्ति नहीं थी । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में "शुक्लजी का समीक्षादर्श सर्वसामान्य और सर्वग्राही है, किन्तु वह विशिष्ट रचनाओं और युगानुरूप काव्य-प्रवृत्तियों के आकलन के लिए

---

1. हिन्दी समीक्षा - डा. धीरेन्द्र वर्मा - पृ. 598
2. हिन्दी समीक्षा स्वरूप और संदर्भ - डा. रामदरस मिश्र - पृ. 69

पूर्णत: सक्षम नहीं है । दूसरे शब्दों में शुक्लजी का साहित्यादर्श स्थिर और अटूट है, गतिशील और विकासोन्मुख नहीं ।"[1] शुक्ल युग की आलोचना की ऐसी कुछ त्रुटियाँ दिखाई पडती हैं । फिर भी यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होगी कि इस युग में जो समीक्षादर्श प्रस्तुत किया गया उसका, आलोचना के क्षेत्र में स्थायी महत्व है । इस प्रसंग में डा. निर्मला जैन का कथन स्मरणीय लगता है - "हिन्दी आलोचना के जिस दौर को शुक्ल युग कहा गया है वह हिन्दी में वास्तविक आलोचना का प्रस्थान बिन्दु है । यहीं से हिन्दी की आलोचना गुण-दोष-विवेचन, तारतमिक श्रेणी-विभाग या रीति कवियों के बीच श्रेष्ठत्व की ऊहापोह से आगे बढकर सही रूप और सार्थक भूमिका ग्रहण करती दिखाई पडती है ।"[2]

शुक्लजी के उपरान्त हिन्दी आलोचना का विकास अत्यन्त द्रुतगति से हुआ । शुक्लोत्तर आलोचना साहित्य का वर्गीकरण यों कर सकते हैं - 1. स्वच्छन्दतावादी समीक्षा 2. प्रगतिवादी समीक्षा 3. मनोविश्लेषणवादी समीक्षा 4. स्वच्छन्द समीक्षा 5. नई समीक्षा ।

1. स्वच्छन्दतावादी समीक्षा

प्रथम महायुद्ध के उपरान्त भारतीय जीवन के मानमूल्यों में एक नवीन क्रांति का सूत्रपात हो गया । उसी के अनुरूप साहित्य ने भी नया मोड़ ले लिया । छायावाद नवीन चेतना का एक साहित्यिक आन्दोलन था । लेकिन समालोचकों ने इसके साथ न्याय नहीं किया । अत: छायावादी कवियों

---

1. हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ - राजकमल प्रकाशन - पृ. 99
2. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी - डा. निर्मला जैन - पृ. 3।

को अपनी रचना की भूमिकाओं में छायावादी कविता की अंतर्दृष्टि और उसके सौन्दर्य पक्ष का उद्घाटन खुद करना पडा । छायावादी कवियों ने आलोचना को नई दिशा देने का प्रयास किया । उन्होंने प्रचलित आलोचना की शास्त्रवादी प्रणाली का विरोध किया ।

स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का आधार छायावादी कविता ही है । कतिपय अनुशीलन कर्ता इसे सौष्ठवादी, प्रभाववादी या सांस्कृतिक समीक्षा भी कहते हैं । स्वच्छन्दतावादी समीक्षा एक ओर तो छायावादी काव्य के उपयुक्त नवीन रूप और चेतना की पहचान करती है तो दूसरी ओर उन रूप और चेतना के आधार पर साहित्यालोचन का एक नया प्रतिमान खोजती है । छायावादी समीक्षक रचनाकार के विशिष्ट काव्य-मूल्य को प्रतिष्ठित करता है । स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में छायावादी कवि आलोचकों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है । प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी जैसे छायावाद के प्रमुख कवियों ने सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है ।

आचार्य शुक्ल की छायावाद-विरोधी आलोचना दृष्टि से विमुख और छायावादी कवि- आलोचकों की विश्लेषणात्मक आलोचनाओं से प्रभावित होकर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डा. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, डा. नगेन्द्र, शान्तिप्रिय द्विवेदी जैसे आलोचकों ने स्वच्छन्दतावादी आलोचना-पद्धति को आगे बढाया । आचार्य वाजपेयी, डा. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और डा. नगेन्द्र शुक्लोत्तर युग की हिन्दी आलोचना के बृहत्रयी माने जाते हैं । उन्होंने स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का दिशा-निर्देश किया ।

हिन्दी काव्यालोचना के विकास में स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का विशेष महत्व है । हिन्दी के कवि-आलोचकों की परंपरा यहाँ से शुरू होती है । हिन्दी समीक्षा-पद्धति को एक नया मोड देने का श्रेय स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को ही मिलता है । इस समीक्षा-पद्धति का अगला चरण है प्रगतिवाद ।

2. प्रगतिवादी समीक्षा

सन् 1935 के आसपास हिन्दी में संगठित रूप से प्रगतिशीलता का नया दौर शुरू हुआ । प्रगतिवाद रचना और आलोचना के क्षेत्र में नयी मान्यताएँ लेकर प्रकट हुआ । प्रगतिवाद ने आलोचना को साहित्यिक रस और सूक्ष्म तत्त्व-उद्घाटन की सीमा से आगे बढाकर सामाजिक यथार्थवाद की भूमिका पर प्रतिष्ठित किया । प्रगतिवाद की विचार धारा मूलतः मार्क्सवादी है । हिन्दी के प्रसिद्ध प्रगतिवादी आलोचक हैं - शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, प्रकाश चन्द्र गुप्त, गजानन माधव मुक्तिबोध आदि ।

प्रगतिवादी समीक्षा रचना में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति चाहती है । प्रगतिवादी समीक्षकों ने व्यक्तिवादी दर्शन को पतनोन्मुख मध्य-वर्ग के लोगों की मानसिक-विकृति मानकर अस्वीकार किया । उन्होंने जनता में सौन्दर्य खोजा । "प्रगतिवादी समीक्षा ने सौन्दर्यबोध की व्याख्या परिवर्तनशील समाज के परिवर्तनशील हृदय की सापेक्षता में की ।"[1] प्रगतिवादी समीक्षा उसी साहित्य में सौन्दर्य देखती है जो नये समाज के जीवन विश्वासों और संघर्षों की अभिव्यक्ति करता हो अर्थात् उसमें जीवन की ताज़गी है । प्रगतिवादी समीक्षक साहित्य को वर्ग चेतना की अभिव्यक्ति मानकर चलते हैं ।

---

1. हिन्दी समीक्षा स्वरूप और संदर्भ - रामदरस मिश्र - पृ. 257

प्रगतिवादी समीक्षा के आरंभिक दिनों में उसमें कट्टर सिद्धान्तवादिता नहीं थी । लेकिन आगे चलकर उसने नया सिद्धान्तवादी स्वरूप ग्रहण किया । अब वह पहले के समान स्वच्छन्द और प्रेरणाप्रद नहीं रह गयी । इसका मतलब यह नहीं है कि हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में प्रगतिवादी समीक्षा का अब कोई महत्व है ही नहीं । प्रगतिवादी समीक्षा यदि अपना सिद्धान्तवादी स्वरूप छोड देती और साहित्य के स्वस्थ आदर्श को स्वतन्त्र स्थिति में रहने देती तो साहित्य और समीक्षा के दोनों क्षेत्रों को अधिक लाभ पहुँचता ।

मनोविश्लेषणवादी समीक्षा

प्रगतिवादी समीक्षा-पद्धति से नाराज़ होकर हिन्दी के अनेक आलोचकों ने साहित्य के नितान्त वैयक्तिक उद्भव-स्रोतों का उल्लेख किया । रचना के क्षेत्र में भी बडा परिवर्तन आया । वे मानते थे कि साहित्य का संबंध व्यक्तिगत अनुभूति से है । यह समीक्षा-प्रणाली फ्रायड के अन्तश्चेतनावादी सिद्धान्तों पर आधारित है । हिन्दी में इस समीक्षा-पद्धति का समर्थन श्री इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय आदि साहित्यकारों ने किया ।

मनोविश्लेषणवादी समीक्षकों ने फ्रायड, एडलर युँग के सिद्धांतों को सराहने की कोशिश की और अपने आलोचना सिद्धान्तों का निर्माण उन्हीं आधारों पर किया । इन समीक्षकों की दृष्टि में कला सामाजिक अपर्याप्तता की अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न है । अज्ञेय ने कहा है - "अपनी चेतना के गूढतम स्वर में वह स्वयं अपना आलोचक बनकर जाँचता रहता है कि जो उसके विद्रोह का फल है, जो समाज को उसकी देन है वह क्या सचमुच

इतना आत्यंतिक मूल्य रखती है कि उसे प्रमाणित कर सकें, सिद्धि दे सके ।"[1]

4. स्वच्छन्द समीक्षा

शुक्लोत्तर हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में तीन प्रकार के आलोचक लक्षित होते हैं । एक उन आलोचकों का दल है जो प्रगतिवादी है, दूसरा उन आलोचकों का है जो मनोविश्लेषणवादी है । इन दोनों दलों के आलोचकों के अलावा हिन्दी में ऐसे आलोचक भी हैं जो वादों के आग्रहों से मुक्त होकर खुली दृष्टि एवं विवेक से परंपरा और नूतनता की उपलब्धियों को स्वीकार कर समीक्षा के स्वतन्त्र मानदण्ड निर्धारित करते हैं । वे वैयक्तिक और सामाजिक चेतनाओं के बीच ही अपना पथ निर्माण कर लेते हैं । वे किसी वादों के प्रति आग्रह नहीं रखते हैं । डा. देवराज, डा. प्रभाकर माचवे और नलिन विलोचन शर्मा इस समीक्षा-पद्धति के प्रमुख प्रवर्त्तक हैं । ये समीक्षक सामाजिक चेतना और यथार्थ को साहित्य का मूलाधार स्वीकार करते हैं । लेकिन उनमें प्रगतिवादी समीक्षकों की कट्टर सिद्धान्तवादिता नहीं है ।

5. नई समीक्षा

नई समीक्षा से तात्पर्य उस आलोचना से है जो आज के सर्जन के आलोक में नये साहित्य-सिद्धांतों की स्थापना पर प्राचीन सिद्धांतों का परिष्कार करती है, नवीन कृतियों की नई संवेदनाओं का अन्वेषण और उनके सौन्दर्य का आस्वादन तथा मूल्यांकन करती है । नई आलोचना के अन्तर्गत मुख्यतः उन आलोचकों की चर्चा होती है जो नव लेखन की ही उपज है या नव-लेखन के साथ विकसित हुए हैं । उन्होंने प्राचीन मानदण्डों को अपर्याप्त समझकर

---

1. त्रिशंकु - अज्ञेय - पृ. 28

आस्वादन के लिए नये मानदण्डों की खोज की है । पुराने युग के ऐसे आलोचक भी इस समीक्षा-पद्धति के अन्तर्गत आते हैं जो नवलेखन के संपर्क में रहते हैं । इस दृष्टि से डा. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र और नन्ददुलारे वाजपेयी आज की आलोचना में स्थान पा रहे हैं । उनके साथ अज्ञेय, देवराज, मुक्तिबोध, नामवरसिंह, रामस्वरूप चतुर्वेदी, बच्चन सिंह, विजयदेव नारायण साही जैसे महान साहित्यकारों का भी नाम आता है जो समय समय पर अपने अपने ढंग से नवलेखन संबंधी प्रश्नों को समझने-समझाने का प्रयत्न करते रहे हैं ।

आज की आलोचना नवीन साहित्य के मूल्यों और प्रतिमानों का विवेचन करने का प्रयत्न कर रही है । आज के आलोचकों ने साहित्य का धर्म, कविता की प्रेषणीयता, काव्य-भाषा, परंपरा और आधुनिक बोध, साहित्य और समाज आदि विषयों पर अपनी मान्यताएँ व्यक्त की हैं । उनके अनुसार साहित्य का धर्म सौन्दर्य की सृष्टि करना है । आज के विचारक यह मानते हैं कि सर्जक के सामने प्रेषणीयता का नहीं अभिव्यक्ति का प्रश्न रहता है ।

नई आलोचना पूर्वनिर्धारित आलोचना के मानदण्डों को अमान्य समझकर आलोच्य वस्तु को ही उसका प्रतिमान मानती है । नये आलोचक रचना की आन्तरिक संगति पर ध्यान देकर समकालीन कृतियों का मार्मिक मूल्यांकन करते हैं । संक्षेप में नयी काव्य प्रवृत्तियों के अनुशीलन, अध्ययन और मूल्यांकन के लिए नयी आलोचना का जन्म हुआ । इस नयी आलोचना का साहित्यिक क्षेत्र में अपना विशेष स्थान है ।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु युग की आलोचना ने आगे की हिन्दी आलोचना के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि उपस्थित की है । द्विवेदी काल में आकर आलोचना की दृष्टि नीतिप्रधान और उपयोगितावादी हो गयी । उस समय की आलोचना ने गुण-दोष कथन का स्वरूप ले लिया । शुक्ल युग में आकर हिन्दी आलोचना को एक शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक मानदण्ड प्राप्त हो गया । हिन्दी आलोचना का व्यवस्थित एवं क्रमिक विकास इस युग में दिखाई देने लगा । शुक्ल युग के बाद आलोचना के क्षेत्र में विभिन्न समीक्षा शैलियाँ उपस्थित हुई । स्वच्छन्दतावादी, प्रगतिवादी, मनोविश्लेषणवादी, प्रयोगवादी और स्वच्छन्द समीक्षा के नाम से समीक्षा की विभिन्न शैलियाँ प्रकट हुई जिनसे आलोचना साहित्य और भी सजीव रह गया । अब युग के बदलने के साथ साहित्य की प्रवृत्ति भी बदल रही है । तदनुरूप आलोचन भी नया मोड ले रही है । नई काव्यप्रवृत्तियों के मूल्यांकन के लिए नये मानदण्ड उपस्थित किये जा रहे हैं । संक्षेप में आज हिन्दी आलोचना साहित्य अत्यधिक समृद्ध है ।

दिनकर का आलोचना साहित्य

दिनकर पहले कवि थे, बाद में आलोचक । फिर भी उन्होंने काव्य सर्जन और काव्य चिंतन दोनों दिशाओं में आशातीत कार्य किया है । वे जागृत चेतना के कवि, प्रखर चिन्तक और सफल आलोचक हैं । उनका आलोचक रूप अत्यन्त प्रखर एवं तत्त्वान्वेषी है । उनकी आलोचना की महत्ता को स्वीकार करते हुए डा. रामचन्द्र प्रसाद ने लिखा - "हिन्दी के जिन आधुनिक कवि-आलोचकों ने सच्चे समालोचक की सुन्दर आत्मा पायी है, और हिन्दी काव्यालोचना के स्तर को बहुत ऊँचा उठाया है, उनमें श्री रामधारी सिंह दिनकर का नाम बडे महत्व का है ।"[1] दिनकर की आलोचना में साहित्य के मर्म को उघेडने की क्षमता है ।

---

1. समीक्षा - मार्च-अप्रैल 1975 - डा. रामचन्द्र प्रसाद

उन्होंने एक स्वतंत्र काव्य चिंतक के रूप में अपने विचारों को प्रस्तुत किया । इसलिए उनके विचार अत्यन्त मौलिक हैं । उनका आलोचक उनके कवि की ही तरह प्रतिभासंपन्न, जागरूक एवं संवेदनशील है ।

दिनकर जी हिन्दी साहित्य की गतिविधि और उसकी मूल प्रेरक शक्तियों से पूर्ण रूप से अवगत थे । इसलिए उनकी रचनाओं में विविध साहित्यिक आन्दोलनों की व्याख्या बडी ही गंभीर एवं शब्दमूर्त शैली में रूपायित है । स्पष्टता और अभिव्यक्त विचारों की प्राजंलता दिनकर की आलोचना की मुख्य विशेषताएँ हैं । दिनकर की आलोचना उनकी कविताओं पर भी प्रकाश डालती है । उनका कवि और आलोचक एक दूसरे से भिन्न नहीं बल्कि एक दूसरे का पूरक है । दिनकर की कविता एवं आलोचना के परस्पर संबंध को सूचित करते हुए डा. विजयेन्द्र नारायण सिंह ने लिखा है - "हमारी थीसिस यह है कि दिनकर के आलोचनात्मक सिद्धान्त उनकी कविताओं से निःसृत हुए हैं । दूसरे शब्दों में उनकी आलोचनाएँ उन्हीं की कविताओं के समर्थन के लिए लिखी गई है ।"[1] बात तो सच है, फिर भी हमें यह कहना पडता है कि दिनकर की आलोचना केवल उनकी रचनाओं को नहीं, बल्कि समस्त हिन्दी काव्य जगत् को प्रकाशित करती है ।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम दिनकर की आलोचना को दो वर्गों में विभाजित करते हैं - §1§ सैद्धान्तिक आलोचना §2§ व्यावहारिक आलोचना ।

---

1. दिनकर एक पूर्वमुल्यांकन - विजयेन्द्र नारायण सिंह - पृ. 38

1. सैद्धांतिक आलोचना

आधुनिक कविता की नवीनतम प्रवृत्तियों और समस्याओं का विवेचन करते हुए दिनकर ने काव्य का स्वरूप, काव्य की आत्मा, काव्य के हेतु, काव्य के भेद, काव्य भाषा, काव्य का प्रयोजन, भारतीय काव्य संप्रदाय, राजनीति और विज्ञान से काव्य का संबंध आदि का विशेष विवेचन किया है । दिनकर की साहित्य संबंधी मान्यताओं और आलोचना की विशेषताओं को समझने के लिए उनकी सैद्धान्तिक आलोचना का अध्ययन अपेक्षित है ।

1. काव्य का स्वरूप

काव्य स्वरूप संबंधी दिनकर के विचारों में एक समन्वयवादी दृष्टिकोण देख सकते हैं । वे कविता में भाव पक्ष एवं शिल्प पक्ष के परस्पर स्पर्धी समभाव के समर्थक हैं । उनकी दृष्टि में "साहित्य न तो केवल मिट्टी है और न केवल आकाश । वह ऐसा ईथर है, जो धरती के ऊपर छाया रहता है ।"[1] कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों की महत्ता दिनकर स्वीकार करते हैं - "कविता तो कवि की आत्मा का आलोक है, उसके हृदय का रस है जो बाहर की वस्तु का अवलम्ब लेकर फूट पड़ती है ।"[2] कविता संबंधी दिनकर के कथन इस संदर्भ में देखने लायक हैं । "कविता वह है जो अकथ्य को कथ्य बनाने का प्रयास करें ।"[3] फिर "कविता मनोरंजन नहीं, आत्मानुसंधान का उन्मेष है । प्रत्येक कविता किसी न किसी हद तक आध्यात्मिक होती है ।"[4] "उच्च साहित्य जीवन के कोलाहल

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 41
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 78
3. उजली आग - दिनकर - पृ. 47
4. उजली आग - दिनकर - पृ. 44

के बीच से कला का ऐसा चित्र प्रस्तुत करता जो अघटित होकर भी घटित सा लगे ।"[1] दिनकर जी काव्य में आत्माभिव्यक्ति का महत्व भी स्वीकार करते हैं । इस ढंग से दिनकर कवि की वैयक्तिक अनुभूति, कल्पना और कला के सौन्दर्यपक्ष का समर्थन करते दीखते हैं । लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वे कला के सामाजिक पक्ष को गौण मानते हैं । उनकी दृष्टि में कला तब तक पूजनीय नहीं हो सकती जब तक मनुष्य की आत्मा पर वह कोई स्थाई प्रभाव न डालती हो । "कला में आत्माभिव्यक्ति का वहीं तक महत्व है जहाँ तक कलाकार अपने को व्यक्त करते हुए ऐसी बातें कहता है जिन्हें मानवीय अनुभूति सहज ही स्वीकार कर सके ।"[2] दिनकर काव्य को जीवन की व्याख्या मानकर चलते हैं । वे वास्तविकता से जुडी कल्पना को काव्य के लिए आवश्यक मानते हैं - "कला सुन्दर के साथ सत्य भी होती है और सत्य के साथ उपयोगी भी, अन्यथा इसका अस्तित्व ही विलीन हो जाय । आनेवाले सभी युगों के सामने मेरी यह धृष्ट घोषणा है कि कोई भी कला तब तक पूजनीय नहीं हो सकती जब तक मनुष्य की आत्मा पर कोई स्थाई प्रभाव न डालती हो ।"[3] लेकिन दिनकर कविता को कभी प्रचार का साधन नहीं मानते हैं ।

काव्य के स्वरूप संबंधी दिनकर की मान्यताओं को अधिक स्पष्ट करने के लिए दो उद्धरण अलग दिये जा रहे हैं -"कविता न तो कोमल भाषा, न गेय छंद, न कोरी भावुकता में है । वह मन की एक विशिष्ट मनोदशा का प्रतिफलन है, वह मनुष्य की उस दृष्टि का नाम है, जो वस्तुओं

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 78
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 75
3. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 4।

के उन आभ्यंतर रूपों को देखती है, जो रूप विज्ञान देखे नहीं जा सकते ।"[1] दूसरा प्रसंग है - "साहित्य को हम जीवन की व्याख्या मानते हैं । किन्तु जीवन और उसके इस मूल्यांकन के बीच एक माध्यम है जो व्याख्याता कवि या कलाकार का निजी व्यक्तित्व है ।"[2] इन विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर काव्य में व्यक्तितत्व और समाज तत्व दोनों को स्वीकृति देते हैं ।

दिनकर जी ने भविष्य की कविता के संबंध में भी अपनी धारणायें व्यक्त की हैं । भविष्य की कविता के स्वरूप पर विचार करते हुए वे लिखते हैं - "भविष्य की कविता गाने और सुनने की चीज़ न होकर पढने और सोचने-समझने की वस्तु होगी ।"[3] उनकी यह मान्यता है कि भविष्य की कविता छन्दों के बन्धन से मुक्त होगी, विचारपरक होगी, विचारों को उत्तेजित करेगी । कविता की भाषा और विचार दोनों कठोर होंगे । उनके अनुसार भविष्य का युग विचारक कवियों का युग होगा ।

काव्य-स्वरूप संबंधी दिनकर के विचारों के उपर्युक्त विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि जब कवि का भावुक हृदय जीवन के हर्ष विषाद का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से स्वच्छन्द निरूपण करेगा तब उसी को ही कविता कह सकेगा । दूसरे शब्दों में - कविता वह वेगवान्, सुन्दर नदी है जिसके दो किनारे होते हैं - एक तो भाव का और दूसरा शैली का । कविता तभी सुन्दर होती है जब वह इन दोनों किनारों से युक्त हो । अर्थात् भाव और शैली के परस्पर स्पर्धी समभाव से ही कविता संन्दर एवं श्रेष्ठ बनती है ।

---

1. सीपी और शंख - भूमिका - दिनकर - पृ. ड.
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 14।
3. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 103

2. काव्य की आत्मा

अनेक वर्षों से साहित्य जगत् में यह बहस चलती रहती है कि काव्य की आत्मा क्या है ? इस विषय पर विचार करते हुए दिनकर ने रस, अलंकार, रीति, ध्वनि और वक्रोक्ति का नियमित ढंग से विवेचन किया है । दिनकर कविता को कवि हृदय का द्रवीभूत अंश मानते हैं । रस सिद्धान्त के अनुसार काव्य का लक्ष्य आनन्दानुभूति प्रदान करना है । दिनकर भी इस सत्य को मानते हैं । रस के काव्यत्व को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा है - "एक बात सत्य है कि कविता ज्ञान के लिए नहीं पढी जाती है । कविता हम पढ़ते हैं आन्दोलित होने को, आवेश में आने को और वस्तुओं के उस रूप का साक्षात्कार करने को जो रूप न तो चर्मचक्षुओं से दिखाई देता है, न जिसका आख्यान ही कोरे तर्कों द्वारा किया जा सकता है ।"[1]

भारतीय काव्य संप्रदायों में रस के अतिरिक्त शेष संप्रदायों में सबसे पुराना अलंकार संप्रदाय ही है । काव्य में अलंकारों को दिनकर ने शोभाकारक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है - "मैं अलंकार के महत्त्व को भूल नहीं सकता, किसी प्रकार उसका अनादर नहीं कर सकता, क्योंकि अलंकारों से काव्य कौशल के बहुत से ऐसे भेद खुले हैं जो अन्यथा अविशिष्ट रह जाते ।"[2] दिनकर इस मत के समर्थक हैं कि कविता में अलंकार बाहर से आरोपित नहीं होता है । "चित्र रेगिस्तान से उडकर नहीं आते । वे उस कवि के मस्तिष्क से निकलते हैं, जो कल्पना और विचार से लबालब भरा हुआ है तथा जो संक्षिप्त होने के लिए

---

1. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 117
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 148-149

अलंकारों में बोलना चाहते हैं ।"[1] काव्य में अलंकारों की महत्ता स्वीकार करते हुए फिर दिनकर कहते हैं - "सच्चे अर्थों में मौलिक कवि वह है जिसके उपमान मौलिक होते हैं और श्रेष्ठ कविता की पहचान यह है कि उसमें उगनेवाले चित्र स्वच्छ और सजीव होते हैं ।"[2]

रीति को शैली के पर्यायवाची मानते हुए दिनकर ने शैली की असन्दिग्ध अनिवार्यता घोषित की है - "पहले मैं काव्य की शैली पर कम, उसके द्रव्य पर अधिक ध्यान देता था, किन्तु अब मैं मानता हूँ कि यद्यपि शैली और भाव एक दूसरे से अलग करके देखे नहीं जा सकते, फिर भी साहित्य की शक्ति उसकी शैली में हैं ।"[3] यद्यपि भाव एवं शैली के बीच विभाजन का प्रयास व्यर्थ है तो भी शैली का अपना विशेष महत्व है । दिनकर ने शैली को अलंकार, भाव आदि से भी महत्वपूर्ण मानते हैं । शैली के महत्व को सूचित करते हुए दिनकर पूछते हैं - "केवल बोझ के बोझ चंदन की लकडियाँ जमा कर देने से क्या लाभ, यदि पास में उन्हें प्रज्ज्वलित करनेवाली आग न हो ?"[4] "काव्य की भूमिका" में उन्होंने रीति और शैली को स्पष्ट शब्दों में एक ही कहा है - "यह शैली बहुत कुछ वही चीज़ है जिसे आचार्य वामन ने रीति कहा है ।"[5] शैली पर विचार करते हुए दिनकर ने विशेषणों के महत्व की भी चर्चा की है । "कवि में जो

---

1. चक्रवाल भूमिका - दिनकर - पृ. 73
2. " " - पृ. 73
3. " " - पृ. 74
4. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 5
5. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 144

प्रज्ज्वलनवाला गुण है, प्रेरणा के आलोक में शब्दों को सजीव बना देनेवाली शक्ति है, उसका सबसे बड़ा चमत्कार विशेषणों के प्रयोग में देखा जाता है ।"[1] दिनकर के अनुसार कविता, शब्दचयन और विशेषणों के प्रयोग में चमक उठती है ।

दिनकर चमत्कारवादी नहीं है, किन्तु वक्रोक्ति को वे कविता को गद्य से पृथक करनेवाला प्रमुख तत्व मानते हैं । "कोई विद्वान कविता को वक्रोक्ति का पर्याय मानते हैं जो बहुत अंशों में सही और दुरुस्त है । वक्रोक्ति ही कविता का वह प्रमुख गुण है जो उसको गद्य से भिन्न करता है । काव्य में कला का विकास, अन्ततः वक्रोक्ति का ही विकास है । कला अथवा वक्रोक्ति जब अपने चरम विकास पर पहुँचती है तब काव्य का रहस्य गद्योद्घाटन पटु उंगलियों से नहीं खुलता ।"[2] कुंतक का उल्लेख कर दिनकर ने यह बताया है कि कविता में भाव और शैली की प्रतिस्पर्धा रहती है, और यही कविता है । उनके अनुसार "कविता को कविता होने के लिए शैली और भाव के बीच परस्पर-स्पर्धी समभाव चाहिए, विचार और भाषा में से किसी को भी एक दूसरे के पीछे नहीं रहना चाहिए ।"[3]

काव्य में अभिप्रेत अर्थ के ऊपर व्यंजित या सांकेतिक अर्थ में दिनकर जी काव्यात्मा का दर्शन करते हैं । वे ध्वनि के प्रति अत्यन्त सजग रहे हैं - "जब आचार्यों के कदम ध्वनि की भूमि पर आये, कविता की असली आत्मा का पता उन्हें चला गया । शायद, ध्वनि से आगे बारीक तत्त्व कविता में और कोई नहीं है ।"[4] आगे वे लिखते हैं - "असली वस्तु शब्दों के

---

1. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 145
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 185
3. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 104-106
4. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. ।

अर्थ नहीं, संकेत है और संकेत तो शब्द बहुत दूर तक का दिया करते हैं ।"[1]

काव्यात्मा संबंधी दिनकर के विचारों का विश्लेषण करें तो हमें शायद ऐसा प्रतीत होगा कि वे एक समन्वयवादी हैं, क्योंकि उन्होंने रस, अलंकार, शैली, वक्रोक्ति सब का विवेचन किया है । समन्वयवादी प्रतीत होने पर भी दिनकर जी को मूलतः ध्वनिवादी कह सकते हैं । एक ओर अन्य तत्त्वों की चर्चा वे करते हैं तो दूसरी ओर उन्हें पूर्ण रूप से स्वीकार करने से इनकार करते हैं । उन्होंने कहा है कि "जिस आचार्य ने अलंकार को काव्य की आत्मा माना, उसकी आँख कविता की आँधी चित्रकारी से टकराकर रह गयी थी । × × × × रीति काव्य की पारदर्शिता का पूरा प्रतिमान नहीं थी ।"[2] उपर्युक्त विवेचन से हम निष्कर्ष यह निकाल सकते हैं कि दिनकर ध्वनि को ही काव्य की आत्मा मानते हैं ।

3. काव्य-हेतु § काव्य के प्रेरणा-स्रोत §

काव्य-हेतु की चर्चा करते हुए दिनकर ने प्रतिभा एवं अभ्यास पर प्रकाश डाला है । वे प्रतिभा को नैसर्गिक मानते हैं । इसका विश्लेषण करते हुए वे कहते हैं - "प्रेरणा बुद्धि के केन्द्रीकरण से उत्पन्न कोई अनिर्वचनीय शक्ति है जिसके मूल हमारे संस्कारों में रहते हैं, जिसकी शिरायें हमारी स्मृतियों में गड़ी होती हैं तथा जो मनुष्य की संबुद्धि से समन्वित होती है ।"[3] उनके अनुसार प्रतिभा, बुद्धि, अनुभूति और संस्कारों से जनित अनिर्वचनीय शक्ति है । काव्य

---

1. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. ।
2. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. ।
3. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 129

प्रेरणा कवि के लोकदर्शन और अध्ययनजन्य संस्कारों की उपज है । वह कवि के मानसिक संस्कारों का केन्द्रबिन्दु है - "प्रेरणा इन संस्कारों के उभार का नाम है जिन्हें हमने रहन-सहन, विचार-विमर्श, अध्ययन और संगति के द्वारा अर्जित किया है ।"[1] दिनकर प्रेरणा को कविता के लिए आवश्यक मानते हैं किन्तु कविता का कारण केवल प्रेरणा नहीं मानते । "प्रेरणा के अभाव में रचना का आरंभ नहीं किया जा सकता, किन्तु प्रेरित हो जाने पर भी सोचने की अत्यन्त कठिन प्रक्रिया के बिना कविता ठीक नहीं बन पाती है । सभी दृष्टियों से सफल रचना तब की जाती है, जब वह अपना ध्यान बराबर एक ही दिशा के गडाये रह सकता है ।"[2] यह कहना कठिन है कि काव्य-रचना का मुख्य कारण प्रतिभा है या अभ्यास । दिनकर दोनों का महत्व स्वीकार करते हैं । उनका कहना है - "प्रेरणा अदृश्य की वह दूती है जो कवि-कल्पना को जगा कर फिर तुरन्त छिप जाती है । कवि-प्रतिभा का काम यह रह जाता है कि कल्पना को उस प्रकार चलाये जैसे कवि की रूचि उसे चलाना चाहती हो । × × × प्रेरणा मात्र इस बात की गारण्टी है कि ऋतु अनुकूल है । रचना के बाकी काम तो साधना और प्रयास से ही किया जा सकते हैं ।"[3] लगता है दिनकर प्रतिभा की अपेक्षा अभ्यास को काव्य-रचना का मुख्य कारण मानते हैं ।

4. काव्य के तत्त्व

काव्य के तत्त्वों की चर्चा के दौरान दिनकरजी ने सत्यं, शिवं और सुन्दरम् पर प्रकाश डाला है । उन्होंने काव्य में सत्य, शिव एवं सौन्दर्य

---

1. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 130
2. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 13
3. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 133

को समान रूप से स्थान दिया है । सत्य या अनुभूति के संबंध में दिनकर की धारणा है कि "कविता कवि के हृदय की अनुभूति होती है और इस अनुभूति की सामग्री सीधे समाज के भीतर से आती है ।"[1] कल्पना को भी अनुभूति के समान वे महत्वपूर्ण मानते हैं - "कल्पना के सिवा और कौन साधन है, जिससे कवि वस्तुओं के भीतर प्रवेश कर सके तथा वस्तुओं की आंतरिकता के ज्ञान को चित्रों में परिवर्तित कर सकें ।"[2] दिनकर जी के अनुसार कवि के समान पाठक को भी कल्पना शील होना काव्यास्वादन के लिए अनिवार्य है - "कल्पना केवल कवि के लिए ही नहीं बल्कि इतर जनों के लिए भी आवश्यक गुण है ।"[3] कल्पना के महत्व को स्वीकार करते वक्त भी अनुभूति को वे कम महत्वपूर्ण नहीं मानते । उनके अनुसार काव्य का महत्वपूर्ण तत्व अनुभूति है । "अनुभूति और कल्पना में अनुभूति ही अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि काव्य का संवेद्य वही है । कल्पना इस संवेदन का अनिवार्य साधन अवश्य है, परंतु संवेद्य नहीं ।"[4] उनके अनुसार मात्र सत्य की अभिव्यक्ति से भी काव्य श्रेयस्कर नहीं होगा । काव्य अधिक शोभादायक तभी हो सकता है जब उसमें सत्य की अभिव्यक्ति शिवं से अनुप्राणित हो जाती है । सौन्दर्य के संबंध में उन्होंने लिखा है, "सौन्दर्य का प्रमाण आनन्दमयता है, अतएव कला का सबसे बडा लक्षण हम यह मानते आये हैं कि वह हमें प्रसन्नता से भर दें, हमें आत्मविस्मृति की अवस्था में पहुँचा दे ।"[5] कला में सत्यं, शिवं और सुन्दरम् को समान रूप से महत्वपूर्ण मानते हुए वे लिखते हैं -"कला का सर्वोपरि धर्म सौन्दर्य है किन्तु सर्वोत्तम कलाकृति हम उसे कहते हैं जो सुन्दर होने के साथ सत्य भी हो और शिव भी,

---

1. आजकल - दिसंबर, 1955 - पृ. 11
2. चक्रवाल - भूमिका - दिनकर -पृ. 54
3. अर्धनारीश्वर - दिनकर - पृ. 142
4. हिन्दी ध्वन्यालोक - भूमिका - दिनकर - पृ. 70
5. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 134

यद्यपि, कलाओं में सत्यं, शिवं, सुन्दरं का समन्वय प्रायः दुर्लभ होता है ।"[1] काव्य में इन तीनों तत्वों का समन्वय वे आसान नहीं मानते । उनके अनुसार केवल कलम या कूँची से इनका समन्वय नहीं हो सकता । इनके समन्वय के लिए दिनकर दो तत्वों को - ऊँची मनुष्यता और निश्चल सौन्दयोन्माद - को आवश्यक मानते है - "ऊँची मनुष्यता और निश्चल सौन्दयोन्माद इनका मिलन कम हो पाता है । किन्तु जब कभी ये दोनों गुण एक व्यक्ति में मिल जाते हैं, तभी हमें वह कलाकृति प्राप्त होती है जो एक साथ सत्य, शिव और सुन्दर तीनों गुणों को आलिंगित किये रहती है ।"[2]

काव्य के तत्वों के संबंध में दिनकर की मान्यताओं का विश्लेषण करने से हम निष्कर्ष यह निकाल रखते हैं कि काव्य के प्रमुख तत्वों के रूप में उन्होंने सत्य, शिव और सौन्दर्य को माना है और इन तीनों को समान रूप से स्थान दिया है ।

5. काव्य का प्रयोजन

काव्य के प्रयोजन के संबंध में दिनकर की स्पष्ट धारणायें हैं । "मिट्टी की ओर" में दिनकर ने काव्य के प्रयोजन से संबंधित अपने विचार व्यक्त किये हैं - "कविता ने संसार की बड़ी सेवा की है । यह दुःख में आँसू, सुख में हँसी और समर में तलवार बनकर मनुष्यों के साथ रही है ।"[3] आनंद को वे काव्य का मूल प्रयोजन मानते हैं । "आनंद कला की पहली शर्त है ।

---

1. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 134
2. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 139
3. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 42

कविता रचने के समय कवि को आनन्द होता है, कविता पढने के समय पाठक को आनन्द होता है ।"[1]

युग-धर्म का पालन संसार के सभी लेखकों ने किया है । दिनकर काव्य का दूसरा प्रयोजन युग-धर्म का पालन करते हुए उसे बदल देना मानते हैं । "प्रत्येक लेखक को सबसे पहले अपने ही समय के लिए लिखना चाहिए । अपने युग के लिए लिखने का अर्थ है उस युग के मूल्यो की रक्षा करना अथवा उन्हें बदलने का प्रयास ।"[2] उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि कवि को लिखने के लिए अनुकूल परिस्थिति प्रदान करना समाज का दायित्व हैं, क्योंकि कवि समाज की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करता है । वह उसको बदलने का प्रयास करता है ।

इस संदर्भ में दिनकर की काव्य की सोद्देश्यता संबंधी मान्यताओं का अध्ययन भी आवश्यक लगता है । दिनकर कला या कविता को निश्चित रूप से सोद्देश्य मानते हैं । "सत्य तो यह है कि ऊँची कला कोशिश करने पर भी अपने को नीति और उद्देश्य के संसर्ग से बचा नहीं सकती, क्योंकि नीति और लक्ष्य जीवन के प्रहरी है और कला जीवन का अनुकरण किये बिना जी नहीं सकता ।"[3] कविता की सोद्देश्यता पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है - "हम दूसरों के लिए नहीं लिखते, ऐसा कहनेवाला कवि अपने को हास्यास्पद बनाते हैं । सच पूछिये तो हम "स्वान्तः सुखाय के साथ साथ हम उनके लिए लिखते हैं, जो हमारी कृतियों को पढने के इच्छुक हैं ।"[4] दिनकर के अनुसार

---

1. रेती के फूल - दिनकर - पृ . 70
2. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 81
3. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 98
4. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 57

G5632

कवि कल्पना और सामाजिक जीवन के बीच सामंजस्य स्थापित किये बिना साहित्य आयुष्मान नहीं हो सकता । स्पष्ट शब्दों में दिनकर ने कला की सोद्देश्यता का समर्थन करने की कोशिश की है ।

6. काव्य के भेद

दिनकर जी ने काव्य के भेद के अन्तर्गत सामान्य रूप से महाकाव्य एवं कथाकाव्य की चर्चा की है । लेकिन इससे बढकर काव्य के भेद के रूप में उन्होंने अन्य दो काव्य रूपों का प्रतिपादन अत्यन्त विस्तृत ढंग से किया है । वे हैं रूपकाव्य और विचार काव्य । रूपकाव्य और विचार काव्य शीर्षक निबन्ध में दिनकर ने इसकी चर्चा की है । इसका प्रतिपादन करते हुए वे लिखते हैं - "रूपकाव्य से तात्पर्य उस कविता से है जिसके महत्व के कारण उसमें उगनेवाले चित्र होते हैं, ऐसे चित्र जो मनश्चक्षु से देखे जा सकते हैं, ऐसे चित्र जो वस्तुओं के दृश्य रूपों की प्रतिछवि के समान हैं । विचार काव्य वह है जिसके महत्व के कारण मुख्यत: उसमें वर्णित भाव या विचार होते हैं, बल्कि भाव भी नहीं, केवल विचार होते हैं ।"[1] इसमें से रूपकाव्य को श्रेष्ठ मानते हुए दिनकर जी आगे लिखते हैं -"काव्य की सार्थकता तो तभी मानी जाएगी जब विचार चित्रों में परिवर्तित कर दिये जायँ, रूपकों और उपमाओं के सहारे उनमें ऐंद्रियता उत्पन्न कर दी जाय तथा वे केवल बुद्धि-ग्राह्य बनाकर ही न छोडे जायें ।"[2] सभी काव्य-रचनाओं की चर्चा इन दो काव्यरूपों के अन्तर्गत आ जाती है ।

---

1. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 118
2. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 118

7. काव्य भाषा

काव्य में भाषा के प्रयोग की समस्या सबसे महत्वपूर्ण समस्या है क्योंकि काव्य या साहित्य का चरम अवयव भाषा है । भाषा की परख वस्तुतः कवि प्रतिभा की ही परख है । दिनकर ने कविता की भाषा की महत्व - सिद्धि की वकालत की है । उन्होंने काव्य भाषा के विविध पक्षों पर विचार किया है । उनका कहना है कि "कविता का अंतिम विश्लेषण उसमें प्रयुक्त भाषा का विश्लेषण है, कविता का चरम सौन्दर्य उसमें प्रयुक्त भाषा की सफाई का सौन्दर्य होता है ।"[1] काव्य भाषा में शब्द चयन के महत्व को स्वीकार करते हुए वे लिखते हैं - "महाकवि वह है जो अपने शब्दों के मुँह में जीभ दे दें । इस दृष्टि से कीट्स महाकवि हैं क्योंकि उसके शब्द बोलते हैं और उसके विश्लेषणों में चित्रों को सजीव कर देने की शक्ति है ।"[2] उनके अनुसार "सच्चे कवि नये शब्द भी गढते हैं और प्राचीन शब्दों की पूरी शक्ति को भी नवीन तथा प्रतिभापूर्ण प्रयोगों के द्वारा जागृत और प्रत्यक्ष कर के भाषा का बल बढाते हैं ।"[3] दिनकर जी भाषा को केवल अभिव्यक्ति का साधन नहीं मानते । वे भाषा की गरिमा को काव्य की सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक मानते हैं । उनके अनुसार काव्य में प्रयुक्त भाषा की सफाई ही उसके सौन्दर्य का कारण बन जाती है ।

8. काव्य में छंद

छन्दों की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए दिनकर लिखते हैं - "मेरे जानते छन्द काव्य कला का सहायक नहीं बल्कि उसका स्वाभाविक मार्ग है ।"[4] दिनकर के अनुसार अगला युग विचारक कवियों का युग होगा ।

---

1. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण - दिनकर - पृ. 7।
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 142
3. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 141
4. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 146

भविष्य की कविता अनुभूति और चिन्तन से युक्त होगी । ऐसे काव्य में छंद का क्या स्थान होगा, यह उनके शब्दों से ही स्पष्ट होता है - "अब वे ही छंद कवियों के भीतर से नवीन अनुभूतियाँ ला सकेंगे जिनमें संगीत कम, सुस्थिरता अधिक होगी, जो उडान की अपेक्षा चिंतन के अधिक उपयुक्त होंगे ।"[1] दिनकर की राय में "छन्द सचमुच ही, शायद वह भूमि है, जिसपर कल्पना नृत्य का पहला पाठ सीखती है । पद्य के रचयिताओं ने गलत किस्मत की कविता लिखी, यह बात सत्य नहीं है । विषण्णता को मस्ती में समेटने का प्रयास भी कोई प्रयास है ? टूटे हुए संगीत को बाँधने के लिए टूटे हुए छन्द चाहिए ।"[2]

प्राचीन छन्दों के नियमानुसृत प्रयोग कभी कभी भावाभिव्यक्ति में बाधा डालते हैं । इसलिए दिनकर मुक्त छंद के प्रशंसक रहे हैं । नवीन छन्दों के प्रयोग में वे जागरूक थे । उन्होंने कवित्त एवं सवैया की वकालत की है । - "कवित्त और सवैया विशेषत: आशा, उत्साह और आनन्द के छन्द हैं तथा इनमें उन भावों की पुष्ट अभिव्यक्ति होती है जो साधारणत: विषाद से संबंध नहीं रखते । × × × सच पूछिए तो यह छन्द हिन्दी का कल्पवृक्ष रहा है तथा इसने कभी भी किसी याचक को निराश नहीं किया ।"[3]

छंद के संबंध में दिनकर की मान्यताएँ कुछ द्विविधात्मक सी लगती हैं । जिस दिनकर ने छन्द को कविता का स्वाभाविक मार्ग कहा था, वही दिनकर अब साफ लिखते हैं - "कविता साहित्य का नियोड है, और

---

1. चक्रवाल - दिनकर - पृ.
2. उजली आग - दिनकर - पृ. 42-43
3. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 105

छन्दों से बाहर निकल कर वह अपने इस पद को और भी ऊँचा कर सकती है ।"[1] और एकस्थान पर छन्दों की महिमा का गायन करते हुए उन्होंने लिखा है - "छन्दों की महिमा सर्वविदित है । और अभी तो यह सोचा भी नहीं जा सकता कि छन्द किसी भी समय कविता से बिलकुल बहिष्कृत हो जायेंगे । किन्तु छन्दों के महत्व का एक कारण यह भी है कि कविता को अधिकांश जनता अब तक मनोरंजन का साधन मानती रही है ।"[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर छन्दों के प्रयोग में जागरूक थे । वे युग विशेष की बदलती मनोदशा के अनुकूल छन्दों के प्रयोग के समर्थक थे ।

9. काव्य की रचना-प्रक्रिया

दिनकर ने काव्य की रचना प्रक्रिया की मार्मिक व्याख्या की है । काव्य की रचना प्रक्रिया की ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है - "काव्य रचते समय कवि दो धरातलों पर एक साथ जगता है । पहले धरातल पर कवि की चिन्ता का विषय यह होता है कि उनके भीतर जो प्रेरणा उठी है उसे वह ठीक से समझ रहा है या नहीं । और दूसरे धरातल पर उसने जो कुछ सुना है, नीचे के धरातल पर वही लिख रहा है या और कुछ ।..... कवि का काम यह होता है कि गहरी समाधि में जाकर वह जंगल का ध्यान करे और उतना ध्यान करे कि एक एक पेड़ को पहचान ले ।"[3] काव्य रचना की

---

1. उजली आग - दिनकर - पृ. 43
2. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 98
3. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 128

प्रक्रिया का बडा अच्छा वर्णन दिनकर जी ने एक स्थान पर किया है । "पहले कवि चाहता है कि कविता मुझे पकड ले और जब कविता उसे पकड लेती है, तब कवि से न सोते बनता है, न जागते बनता है । अधूरी कविता क्षण क्षण उसके दिमाग में सुई चुभोती रहती है और जब तक कविता पूरी न हो जाय, कवि दिन रात परेशानी में पडता रहता है ।"[1] काव्य रचना की प्रक्रिया में कवि को भाषा के साथ जो संघर्ष करना पडता है, उसके विषय में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है - "चेतना की हर सनसनाहट एक नया शब्द माँगती है । यानी सनसनाहट की ठीक ठीक मात्रा का अभिव्यंजक शब्द कहीं नहीं है ।"[2]

दिनकर की सैद्धान्तिक आलोचना का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि उनकी धारणायें अत्यन्त स्पष्ट, व्यापक एवं मौलिक है । काव्यांगों के विवेचन में उनकी मौलिक उद्भावनायें उभर आती हैं । काव्यांगों के विवेचन के अलावा उन्होंने साहित्य और राजनीति, साहित्य और नैतिकता, आधुनिकता और हिन्दी साहित्य आदि विषयों में भी अपना मत व्यक्त किया है । उनकी सैद्धान्तिक आलोचना का विश्लेषण करने से हम निष्कर्ष यह निकाल सकते हैं कि उनकी आलोचना अत्यंत प्रभविष्णु एवं मौलिक है । उनके काव्य सिद्धांत हिंदी साहित्य को समझने में सहायक हैं । समन्वयवादिता के होने पर भी उनकी सैद्धान्तिक आलोचना अत्यन्त प्रांजल एवं उलझावहीन है ।

काव्य समीक्षा संबंधी दिनकर की मान्यताओं की चर्चा उनकी व्यावहारिक आलोचना के अध्ययन में सहायक होगी । काव्य समीक्षा के संबंध

---

1. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. ।
2. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 283

में दिनकर जी की धारणायें अत्यन्त मौलिक एवं स्पष्ट हैं । "मिट्टी की ओर" के काव्य-समीक्षा का दिशा-निर्देश नामक लेख से समालोचना संबंधी दिनकरजी की मान्यताओं का एक ब्यौरा चित्र हमें प्राप्त होता है । उनके अनुसार "समालोचना केवल नीर-क्षीर विवेक नहीं है, बल्कि, यह उन समस्त कला-कौशलों के विश्लेषण का नाम है जिनके द्वारा कलाकार अपनी कृति में सौन्दर्य तथा अलौकिकता उत्पन्न करता है ।"[1] काव्य-समीक्षा को वे कवि कर्म की भाँति प्रतिभा-विशेष का साधन मानते हैं । उनके मतानुसार "आलोचना सीखने की चीज़ नहीं है, यह भी जन्मजात है जैसे कवित्व ।"[2] आलोचक के कर्म पर प्रकाश डालते हुए दिनकर जी लिखते हैं, "अगर समालोचना साहित्य के गांभीर्य की थाह अथवा उसके अपरिमेय तत्वों का विवेचन है तो समालोचक में कवित्व भावुकता, चिन्तन की कोमलता, भावों की प्रवीणता और रसग्राहिता होनी ही चाहिए, अन्यथा वह उन मनोदशाओं के धूमिल विश्व में पहुँच ही नहीं सकता जिनमें कविता की सृष्टि की जाती है । संक्षेप में सच्चे समालोचक की आत्मा सुन्दर कवि की आत्मा होती हैं और वह, बहुधा कवि ही हुआ करता है ।"[3] आधुनिक युग के कवि आलोचकों की संख्या बहुत अधिक है अपनी ही रचना के संबंध में विचार करने की यह पद्धति अत्यन्त महत्वपूर्ण है । कवि आलोचकों की प्रशंसा करते हुए दिनकर ने लिखा है - "यद्यपि काव्य के संबंध में चर्चायें सभी तरह के लोग किया करते हैं, किंतु काव्य के उच्चतम कोटि की आलोचनाएँ केवल उन्हीं लोगों ने लिखी हैं जो स्वयं कवि थे ।"[4] दिनकर जी आलोचक को भी सर्जक और उच्च कोटि

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 133
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 155
3. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 120
4. हिमालय, अप्रैल 1946 - पृ. 85

का भावुक मानते हैं । "आलोचक काव्य मर्मज्ञ ही नहीं, उच्च कोटि का ऐसा साहित्य स्रष्टा होता है जो आलोचना के ज़रिए पाठकों के आनन्द की वृद्धि करता है ।"[1]

काव्य समीक्षा के संबंध में दिनकर जी का दृष्टिकोण अधिक स्वस्थ एवं नवीन है । दिनकरजी की आलोचना की, विशेषतः व्यावहारिक आलोचना की मौलिकता का परिचायक है उनका यह दृष्टिकोण ।

आगे हम दिनकरजी की व्यावहारिक आलोचना पर विचार करेंगे ।

2. व्यावहारिक आलोचना

सैद्धान्तिक आलोचना की अपेक्षा दिनकर जी की व्यावहारिक आलोचना का क्षेत्र बहुत व्यापक है । उन्होंने अपने समसामयिक कवियों के संबंध में अत्यन्त मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं । विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों की चर्चा दिनकर ने की है । साहित्यिक प्रवृत्तियों के अन्तर्गत उन्होंने छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता का विश्लेषण विवेचन किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने विद्यापति, मैथिलीशरणगुप्त, प्रसाद, पंत, महादेवी, सियाराम शरणगुप्त आदि कवियों के विषय में अपने सुचिंतित विचार व्यक्त किये हैं । उन्होंने निराला, अज्ञेय, राकेश जैसे लेखकों पर भी कुछ विचार बिन्दु अवश्य प्रस्तुत की हैं । रवीन्द्रनाथ टागौर एवं अरविन्द के दर्शन से प्रभावित होकर दिनकर ने उन महान पुरुषों के व्यक्तित्व और कृतित्व का सही मूल्यांकन करने की

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 135.

कोशिश की है । व्यावहारिक आलोचना से संबंधित उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना "पंत-प्रसाद और मैथिलीशरण" है । "मिट्टी की ओर", "काव्य की भूमिका", "चक्रवाल" की भूमिका, "शुद्ध कविता की खोज", "वेणुवन", "अर्धनारीश्वर" "साहित्यमुखी", "रेती के फूल", "आधुनिक बोध" आदि उनकी अन्य प्रमुख रचनाओं में भी उनकी व्यावहारिक आलोचना की खूबियाँ स्पष्ट होती हैं । पाश्चात्य साहित्यिक और साहित्यिक वादों के प्रति भी वे सजग रहे हैं । उन्होंने पाश्चात्य साहित्य क्षेत्र के अद्यतन साहित्यिक वादों का सूक्ष्म गंभीर विवेचन किया है । शुद्ध कविता के हिमायतियों में मलार्मे, रेम्बू, पोल बलेरी, एडगर एलन पो जैसे महारथियों के काव्य दर्शन का विवेचन करते हुए उन्होंने भारतीयों को इन्हें हस्तामलक बना दिया है । "साहित्यमुखी" में उन्होंने भारतीय परंपराओं को पाश्चात्य उपलब्धियों के आलोक में परीक्षित करने का प्रयत्न किया है । वे पाश्चात्य वाङमय में उतना व्युत्पन्न है जितना हिन्दी साहित्य में ।

दिनकर ने अपनी व्यावहारिक आलोचना के अन्तर्गत सभी काव्यप्रवृत्तियों की चर्चा अत्यंत विशद ढंग से की है । छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता जैसी काव्यप्रवृत्तियों के संबंध में दिनकर की धारणायें अत्यन्त स्पष्ट एवं मौलिक हैं । आगे के पृष्ठों में इसका एक विस्तृत अध्ययन हम प्रस्तुत करेंगे ।

1. छायावाद

छायावाद के संबंध में दिनकर जी की स्पष्ट धारणाएँ हैं । छायावाद संबंधी उनके विचार "मिट्टी की ओर" एवं "काव्य की भूमिका" में व्यक्त हुए हैं । छायावाद के उद्भव, परिभाषा, विकास और सीमाओं की

चर्चा करते हुए उन्होंने उसका सही मूल्यांकन किया । दिनकर जी के अनुसार "छायावाद ही वह धारा है जिसका आश्रय लेकर हिन्दी कविता अपना विकास कर रही है ।"[1]

दिनकर छायावाद को अपनी पूर्व कविता के विरुद्ध विद्रोह मानते हैं । छायावाद के उद्भव के संबंध में दिनकर लिखते हैं - "छायावाद नाम से जो आन्दोलन उठा वह मुख्यत: द्विवेदीकालीन काव्य की कल्पनाशीलता के विरुद्ध विद्रोह था ।"[2] उनके अनुसार छायावाद की मुख्य विशेषता भावुकता और कल्पना है । छायावाद की व्याख्या करते हुए दिनकर ने लिखा है - "छायावाद के आन्दोलन ने एक नये प्रकार की कविता को ही जनम नहीं दिया था, प्रत्युत, उसने कवि भी नये व्यक्तित्ववाले ही पैदा किये थे ।"[3] आगे वे लिखते हैं - "वह सान्त का अनन्त से मिलने का प्रयास भी था और सिन्धु में मिल जाने के लिए बिन्दु की बेचैनी भी । वह जीवन की निराशा का भी प्रतीक था और उससे मानसिक मुक्ति पाने का साधन भी ।"[4]

छायावाद की प्रसादजी ने जो परिभाषा दी है, उसका दोष दिखाते हुए दिनकर जी ने लिखा है - "वास्तव में छायावाद की विशेषता ध्वनि और वेदनाप्रियता नहीं, प्रत्युत, भावुकता और कल्पना की अतिशयता तथा परिचित से दूर जाकर अपरिचित में विचरण की प्रवृत्ति थी ।"[5] दिनकर ने

---

1. मिट्टी की ओर - भूमिका - दिनकर - पृ. क.
2. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 29
3. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 5
4. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 9
5. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 33

छायावादी कविता की शक्ति एवं सीमाओं को रेखांकित किया है । छायावाद पर विज्ञान के प्रभाव को वे स्वीकार करते हैं - "ज्यों ज्यों विज्ञान का आलोक फैलता गया, विस्मय और कुतूहल के कितने ही भण्डार छूछे हो गए, कितने ही ऐसे विश्वास गलत दीखने लगे जो पहले अटल सत्य के रूप में पूजे जाते थे ।"[1] दिनकर ने छायावाद को हिन्दी में उद्दाम वैयक्तिकता का पहला विस्फोट माना है । उन्होंने छायावाद में कल्पना की अतिवृद्धि का समर्थन भी किया है ।

छायावाद की कमज़ोरियों पर भी उन्होंने दृष्टिपात किया है । उनके अनुसार "छायावाद एक क्रान्ति का सन्देश लेकर आया था, किन्तु अपने क्रान्तिकारी होने के प्रचार में वह ऐसा फँसा कि वास्तविक उद्देश्य का कहना ही भूल गया । किन्तु आश्चर्य की बात है कि छायावादी कवि वास्तविक क्षेत्र में न तो ध्वंस ही कर सके और न निर्माण ही । उनसे इतना भी न बन पडा कि और कुछ नहीं तो जीवन की विवशता के विरुद्ध एक सैद्धान्तिक विरोध ही ध्वनित करें ।"[2]

छायावादी कविता के उपलक्ष्य में उन्होंने यह व्यक्त किया है कि भारत के प्राचीन अखण्ड सत्यों की अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति छायावाद की प्रमुख रचनाओं में मिलती है । छायावादी कवियों के बारे में दिनकर ने अपना मत यों व्यक्त किया है - "छायावाद की दुर्दशा अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गयी होती, यदि उसमें पन्तजी, निरालाजी, प्रसादजी, माखनलालजी,

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 10
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 33

भगवतीचरण वर्मा और पंडबालकृष्ण शर्मा नवीन नहीं होते ।"[1] छायावादी युग प्रगीतों का युग था । छायावादी प्रगीत पद्धति की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा है कि "प्रगीत काव्य का निचुड़ा हुआ रस होता है और छायावाद मुख्यतः प्रगीतों का आन्दोलन था ।"[2] छायावादी कविताओं की भाषाई गरिमा पर भी दिनकर ने प्रकाश डाला है ।

छायावाद की सभी विशेषताओं एवं कमज़ोरियों की चर्चा दिनकर ने की है । दिनकर ने छायावाद की विशेषताओं को निचोड़कर उसका रस प्रस्तुत किया । उन्होंने छायावाद के गुणों एवं अवगुणों पर प्रकाश डाला है । संक्षेप में छायावाद के विषय में दिनकर के विचार अत्यन्त गंभीर एवं प्रौढ़ हैं ।

2. प्रगतिवाद

प्रगतिवादी कवियों के संबंध में दिनकर जी का मत सर्वथा समीचीन लगता है । उन्होंने प्रगतिवादी कविताओं के उद्भव एवं विकास की चर्चा की है । दिनकर प्रगतिवाद को छायावाद का विकास मानते हैं । उनके अनुसार प्रगतिवाद हमारे साहित्य का कोई जागरण विशेष नहीं है । "कम से कम कविता में तो वह किसी नवजागरण का सूचक नहीं है ।"[3] छायावाद के बाद के इस आन्दोलन को वे केवल छायावाद की परिपाक की प्रक्रिया ही मानते हैं । "खड़ीबोली में कविता का जागरण एक ही बार हुआ और वह था छायावाद का अभ्युत्थान । उसके बाद से जो कुछ भी हुआ है वह छायावाद के परिपाक की प्रक्रिया मात्र है ।"[4] फिर वे लिखते हैं - "यह आन्दोलन विचित्र जादूगर बनकर

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 24
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 42
3. " " - पृ. 30
4. " " - पृ. 31

आया था । जिधर को भी इसने एक मुट्ठी गुलाल फेंक दी, उधर का क्षितिज लाल हो गया ।"[1]

प्रगतिवाद पर चर्चा करते हुए दिनकर ने कहा है कि इस युग में कवियों में अनुभूति की सच्चाई है । वे काव्य में प्रसाद गुण की योजना करते और बोलचाल की भाषा के निकट काव्य-भाषा को लाने का प्रयास करते हैं । उनकी दृष्टि में प्रगतिवादी कवियों ने कविता को कुहासे से निकाल कर धूप में खडा किया, कविता के विषय में वृद्धि की ।

प्रगतिवाद के संबंध में उनकी मान्यताएँ अत्यंत मौलिक रही हैं । एक साथ कवि और आलोचक होने के नाते उनका विचार भविष्य के लिए मार्गदर्शन अवश्य करेगा ।

3. छायावादोत्तर कविता

छायावादी एवं प्रगतिवादी कविता के बीच की कविता की चर्चा दिनकर ने की है । छायावादी युग की राष्ट्रीय कविताओं को भी इसके अन्तर्गत उन्होंने स्थान दिया और प्रगतिशील एवं छायावादी कविता के बीच की इस कविता को "छायावादोत्तर कविता" नाम से अभिहित करना ठीक समझा ।

छायावादोत्तर कवियों के उद्भव एवं विकास की चर्चा करते हुए वे कहते हैं - "छायावादोत्तर काल कोई सर्वथा नवीन क्षितिज लेकर नहीं

---

1. चक्रवाल (भूमिका) - दिनकर - पृ. 20

आया था ; वह छायावादी प्रयोगों के ही परिपाक से उत्पन्न हुआ । दोनों से नज़दीक किन्तु दूर रहना चाहता था ।"[1] छायावादोत्तर कविता की जो प्रवृत्तियाँ हैं उसका आरंभ वे भारतेन्दु से मानते हैं । प्रगति और परिवर्तन की कामना इस कविता के पीछे लक्षित होती है । दिनकर के अनुसार इस कविता की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं - भाषा के बोलचाल के निकट लाने का प्रयास, हृदय की सच्ची अनुभूति को व्यक्त करने का साहस और काव्य में प्रसादगुण की वृद्धि । वे यह भी मानते हैं कि इन कविताओं में द्विवेदी काल और छायावादी काल की काव्य भाषा के बीच का सामंजस्य वर्तमान है । सामंजस्य की इस प्रवृत्ति को उन्होंने सही अभिव्यक्ति दी है - "भाषा की सजीवता, अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति की प्रसन्नता ये ऐसे गुण हैं जिनके समन्वय से कोई भी कविता सप्राण हो सकती है । छायावादोत्तर काल के कवि अपेक्षाकृत सरल, रोचक और आनंददायी निकले । छायावादोत्तर काल में द्विवेदी काल और छायावादी काल की भाषा के बीच समन्वय दिखाई देता है ।"[2] छायावादोत्तर काल की कविताओं की भाषा की यही विशेषता रही है कि वह पाठकों को तृप्त करनेवाली है । बोलचाल के निकट पहुँचने के कारण, भाषा और भाव की कठोरता के बीच भटकनेवाला साधारण पाठक आनन्दित हो जाता है ।

छायावादोत्तर काल की कविताओं के संबंध में दिनकर जी की मान्यताओं का विश्लेषण करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि उनका निष्कर्ष सौ फीसदी सही है । स्वयं बच्चन एवं दिनकर की कविताएँ इसका प्रमाण हैं । छायावादोत्तर काव्य भाषा के संबंध में उनके विचार अत्यंत मौलिक हैं । उनके विचार संक्षिप्त तो हैं सही, उन्होंने छायावादोत्तर कविता की आत्मा को पहचान लिया ।

---

1. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 46
2. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 47

4. प्रयोगवाद

प्रयोगवाद के संबंध में दिनकर के विचार सर्वथा सार्थक लगते हैं । प्रयोगवाद को दिनकर प्रगतिवादी कविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया मानते हैं । साथ ही साथ वे यह भी मानते हैं कि यह एक शुद्ध साहित्यिक आन्दोलन है । वे कहते हैं कि "प्रयोगवाद आदि से अंत तक शुद्ध साहित्यिक आन्दोलन है और उसका मुख्य ध्येय काव्य एवं कला संबंधी हमारी धारणाओं का परिवर्तन करना है । यह आन्दोलन छायावाद की पीठ पर भी आ सकता था क्योंकि उसका मुख्य ध्येय अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों को स्वच्छ बनाना है और छायावाद काल में ये दोनों ही चीज़ें अधिकांश रचनाओं में, स्वच्छ थीं ।"[1] दिनकर जी छन्दों के बन्धन तोडने को दोष नहीं मानते हैं, परन्तु प्रयोगवादी कवियों के इस आग्रह को, कि जो भी लिखें कविता हैं, दोषपूर्ण मानते हैं । इन कविताओं को उन्होंने असमर्थ गद्य कहा है । दिनकर ने प्रयोगवादी कवियों के भटकाव की चर्चा भी की है ।

5. नई कविता

"शुद्ध कविता की खोज" नामक आलोचनात्मक कृति में दिनकर ने नयी कविता के आन्दोलन को समझाने का प्रयास किया है । लेखक ने नयी कविता के आन्दोलन का उत्स शुद्धवादी प्रवृत्ति में माना है । दिनकर ने अपने अनेक निबन्धों में काव्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण गंभीरतापूर्वक किया है । इनमें सर्वाधिक विवेचन नयी कविता का है । नयी कविता का उत्स, शुद्धवादी प्रवृत्ति मानते समय भी वे यह मानने को तैयार नहीं हैं कि नयी कविता का सारा इतिहास

---

1. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 65

शुद्ध कविता का इतिहास है । दिनकर जी ने इन दोनों को एक दूसरे का पर्याय माना है । दिनकर जी की दृष्टि में "नई कविता अत्यन्त गुह्य है, उनके लिए भी, जो सहानुभूति के साथ उसे समझना चाहते हैं और उनके लिए भी, जो स्वयं नये ढंग के कवि हैं ।"[1] नयी कविता के मनसूबा की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है - "नयी कविता का मनसूबा सूत्रशैली में बोलने का मनसूबा है । उसकी उमंग मंत्र के समान सुगठित और संक्षिप्त होने की उमंग है, जिसका कोई भी शब्द ऊर्जा से विहीन नहीं होगा ।"[2] नयी कविता पर विज्ञान के प्रभाव को स्वीकार करते हुए वे लिखते हैं - "नयी कविता में शब्दों की मितव्ययिता विज्ञान की देखा-देखा बढी है और विज्ञान के प्रभाव के कारण ही कवि अब आवेश को दबाकर लिखने लगे हैं ।"[3] उनके अनुसार नये कवि विज्ञान का अनुकरण करने को तैयार हो गये हैं ।

नयी कविता के संबंध में दिनकर की दृढ धारणायें हैं । उन्होंने नयी कविता एवं रोमांटिक कविता की तुलना करते हुए नयी कविता की सीमाओं पर प्रकाश डालने की कोशिश की है ।

6. भविष्य की कविता

वैज्ञानिक युग में कविता संबंधी मानदंड बदल गये हैं । इन बदले हुए मानदंडों की चर्चा करते हुए दिनकर ने भविष्य की कविता पर प्रकाश डाला है । दिनकर जी का विचार है कि आगे की कविता गद्यमय, छन्दों से मुक्त हो तथा उसकी भाषा बोलचाल के निकट हो । उनके मत में "भावि कविता

---

1. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 25
2. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृ. 17
3. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृ. 36

केवल फूलों का मकरन्द ही नहीं शिलाओं का दूध भी पियेगी । हम कविता में ऐसी प्राणवत्ता और गुणों की कठोरता चाहते हैं कि वह फिर से मनीषियों के अध्ययन और मनन की वस्तु बन जाय । हम उसमें कोमलता भी चाहते हैं, पर भावुकता और निरी वायवीयता से उत्पन्न कोमलता नहीं, प्रत्युत्, वह चमकीली और गर्म चीज़, जिसका सच्चा उपमान मुलायम सोना ही हो सकता है ।"[1]

वे यह मानते हैं कि भविष्य की कविता गाने सुनने की चीज़ न होकर सोचने समझने की वस्तु होगी । काव्य और संगीत टूटकर दो हो जायेंगे और भाषा भी कोमलता से दूर हो जाएगी । अगला युग विचारक कवियों का युग होगा । कविता की पूजा इसलिए होगी कि वह प्रातिभ विस्फोट अथवा आविष्कार वाली प्रतिभा से संपन्न होगी । निम्नलिखित शब्दों में दिनकर ने यह विचार प्रकट किया है ।- "भावि कविता शैली के कारण पूजी नहीं जाएगी । उसकी पूजा का कारण यह होगा कि वह मनुष्य के आत्मनिरीक्षण की कविता होगी, वह अपने अस्तित्व के भीतर चलनेवाली मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया की कविता होगी । उस कविता में मिठास और रंगीनी कम, बौद्धिक चिंतन की कठोरता अधिक होगी । भविष्य की कविता गाने और सुनने की चीज़ न होकर, पढने और सोचने समझने की वस्तु होगी । उसकी कल्पना पुरुष कल्पना और उसके भाव कठोर चिंतक के भाव होंगे ।"[2]

भविष्य की कविता के संबंध में दिनकर की स्पष्ट धारणायें हैं । भविष्य की कविता के संबंध में की गई उनकी भविष्य वाणी आज सार्थक होती जा रही है । उनका विचार भविष्य के लिए मार्गदर्शन का कार्य अवश्य करेगा ।

---

1. काव्य का भूमिका - दिनकर - पृ. 84
2. काव्य की भूमिका - दिनकर - पृ. 103

दिनकर जी ने साहित्यिक वादों, काव्यविधाओं और काव्य प्रवृत्तियों की चर्चा की है । इनमें से प्रयोगवाद एवं भविष्य की कविता संबंधी विचार उनके आलोचक व्यक्तित्व को और भी प्रज्वलित करता है । इन तमाम काव्य-प्रवृत्तियों के साथ उन्होंने नयी आलोचना के नये क्षितिजों की तलाश की है - "नई आलोचना का धर्म है कि वह उन्हें भीतर से उभर लाये, उनके योग्य आसन और पीठ की व्यवस्था करें ।"[1] आलोचक दिनकर ने आधुनिक युग की कविता की आत्मा की असली पहचान का दिशा-निर्देश किया है ।

इन काव्य प्रवृत्तियों के अतिरिक्त दिनकर ने समसामयिक कवियों तथा उनकी रचनाओं का मूल्यांकन करने का प्रयास किया । इस संदर्भ में उनकी प्रौढ़तम रचना "पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण" उल्लेखनीय है । दिनकर ने प्रसाद, पंत, मैथिलीशरण, महादेवी, निराला, विद्यापति, अज्ञेय, राकेश जैसे अनेक साहित्यकारों की आलोचना की है । आगे इन तमाम साहित्यकारों पर लिखी गई दिनकर जी की समीक्षा का अध्ययन हम करेंगे ।

1. विद्यापति

संक्रांतिकालीन कवि विद्यापति ने अपने साहित्य में विगत तथा अनागत युगों के साहित्य की प्रवृत्तियों को प्रतिबिम्बित किया है । एक ओर वे वीरगाथाकाल का प्रतिनिधित्व करते हैं तो दूसरी ओर वे हिन्दी में भक्ति और श्रृंगार की परंपरा के प्रवर्त्तक माने जाते हैं । दिनकर यह मानते हैं कि विद्यापति अपने समय के बड़े सफल कवि थे । विद्यापति ने मध्य युग के प्रायः समस्त काव्य को प्रभावित किया है । श्रृंगार-काव्य की सारी मान्यताएँ

---

1. नील कुसुम -(भूमिका) - दिनकर - पृ. 5.

इसमें दृष्टिगोचर होती हैं । कल्पना, साहित्यिकता और भाषा की भंगिमा में ये अनुपम हैं ।

दिनकर ने "वेणुवन" के "मैथिल कोकिल विद्यापति" और "विद्यापति और व्रजबुलि" शीर्षक निबन्धों के द्वारा विद्यापति पर अनेक महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं । विद्यापति पर वे लिखते हैं - "विद्यापति किसी भी वर्ग में समा नहीं सकते । उनके सत्कार के लिए ऐसा सिंहासन होना चाहिए जिस पर केवल वही बैठ सकते हैं । वे केवल कवि थे और कविता में सौन्दर्य और आनन्द को छोडकर वे और किसी बात को स्थान नहीं देते थे । उन्होंने जो कुछ लिखा, सहज सुन्दर और आनन्दमय भाव से लिखा, सौन्दर्य से छक कर लिखा, मस्ती के तूफान में लिखा । कविताएँ उनका आत्मनिवेदन नहीं आत्माभिव्यक्ति हैं ।"[1]

दिनकर विद्यापति को श्रृंगार के कवि मानते हैं । उनके अनुसार श्रृंगार की जो सहजता विद्यापति में है वह अन्यत्र नहीं दिखाई देती । अधिक व्यापक न होने पर भी विद्यापति के संबंध में उनके विचार साफ सुथरे हैं

2. मैथिलीशरण गुप्त

आधुनिक कवियों में श्रेष्ठ मैथिलीशरण गुप्त के संबंध में दिनकर की धारणायें अत्यन्त गंभीर एवं स्पष्ट है । उनके अनुसार भारतेन्दु के बाद से अब तक के हिन्दी कवियों में श्री मैथिलीशरण गुप्त निर्विवाद रूप से सर्वश्रेष्ठ हैं । दिनकर जी यह मानते हैं कि खडीबोली कविता का बहुत बडा इतिहास

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 65

गुप्त जी की कृतियों का इतिहास है । उन्होंने खड़ीबोली को उंगली पकड़कर चलना सिखाया, उसकी जिह्वा को शुद्ध किया तथा उसके हृदय में प्रेम एवं मस्तिष्क में अभिनव विचारों का संचार किया । दिनकर ने गुप्तजी को पुनरूत्थान का कवि कहा है । उनके अनुसार गुप्तजी प्राचीनता के संदेशवाहक नवीन कवि हैं । दिनकर कहते हैं - "शंका और संदेह के युग में उन्होंने आस्तिकता की भारतीय परंपरा की वाणी को सुदृढ़ बनाया, साहित्य में वैष्णव धर्म को पुनरूज्जीवित किया, इतिहास को काव्य में रूपान्तरित करके उसमें जीवन डाला, पराधीन देश को अपनी शक्ति की याद दिलाई और शुद्ध आर्य संस्कृति की जागृति को अधिक से अधिक व्यापक बनाने की चेष्टा की ।"[1]

गुप्तजी की रचनाओं में उनके प्राचीन संस्कार और नवीन दृष्टि इस प्रकार घुल मिलकर उपस्थित हुए हैं कि दिनकर की दृष्टि में "वे ऐसे कवि हैं जिनमें भारत की परंपरा अभी तक सर्वाधिक जीवित और चैतन्य है तथा दूर से देखने पर वे नवीनता नहीं, प्राचीनता के प्रतिनिधि मालूम होते हैं ।"[2] दिनकर गुप्तजी को हिन्दी के सबसे बड़े कवि मानते हैं । समय सापेक्षता की पृष्ठभूमि में गुप्तजी के महत्व का आकलन करने का स्तुत्य कार्य दिनकर ने किया है ।

3. जयशंकर प्रसाद

दिनकर ने अपनी प्रौढ़तम रचना "पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण" में छायावाद के प्रमुख कवि श्री जयशंकर प्रसाद की काव्यकला का समीक्षात्मक अध्ययन किया है । उन्होंने प्रसाद जी की महत्वपूर्ण रचना "कामायनी" के

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 129
2. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण - दिनकर - पृ.

विषय में अपना सुचिंतित मत प्रकट करते हुए हिन्दी साहित्य में प्रसाद जी का स्थान निर्धारित करने की कोशिश की है । उन्होंने प्रसाद जी को उसके काल-संदर्भ में अवश्य प्रस्तुत किया है । एक सफल व्याख्याकार और गुण-दोष की परख करनेवाले प्रखर आलोचक का व्यक्तित्व "कामायनी" संबंधी लेख में उपस्थित हुआ है । कवि से हटकर कृति को विषय बनाने के कारण उनकी पकड रचना की बारीकियों पर अधिक गहरी दीखती है ।

दिनकर ने "कामायनी" का गंभीर एवं व्यापक विश्लेषण किया है । वे कहते हैं कि "कामायनी के रूपवर्णन में सेक्स की शुचितता है, उसमें सर्वत्र छायावादी भावना, छायावादी कारीगरी और छायावादी मनोदशा का प्राचुर्य है ।"[1] दिनकर मानते हैं कि "कामायनी की दुरूहता का कारण चिन्तन की सूक्ष्मता नहीं है, वरन् कवि की अनुभूतियों की अस्पष्टता और कच्चापन है । कामायनीकार ने अनुभूति के धरातल पर यह समझने का प्रयास नहीं किया है कि वास्तव में कहना क्या चाहता है । इसीलिए उसकी भाषा अस्पष्ट रह गई है ।"[2]

दिनकर ने कामायनी के विश्लेषण में कतिपय दार्शनिक शंकायें भी उठायी हैं । एक शंका तो श्रद्धा के पराशक्ति रूप के प्रति है । दूसरी शंका इसमें मनु के द्वारा प्रस्तुत मानव संघर्ष के उस समाधान के प्रति है, जिसमें कोई नवीनता नहीं है ।. दिनकर कहते हैं "मेरा अनुमान है कि प्रसाद कर्म की निन्दा अतिभावुकता में आकर कर गये हैं ।"[3]

---

1. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण - दिनकर - पृ. 57
2. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण - दिनकर - पृ. 71
3. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण - दिनकर - पृ. 94

कामायनी संबंधी लेख में दिनकर ने कवित्व को उसकी सारी प्रासंगिकता के साथ कसौटी पर कसा है, कलात्मक निबंधन, समकालिक चेतना और कवि के उद्दिष्ट दर्शन के आधार पर "कामायनी" की परीक्षा की है । कामायनी को वे संपूर्ण गुण-दोषों के साथ छायावाद का संपूर्ण उदाहरण मानते हैं । दिनकर यह मानते हैं कि कामायनी में कथा तत्व विरल है और प्रतीकात्मकता अधिक । कामायनी की श्रेष्ठता का मूलकारण वे उसके कवित्व को मानते हैं, उसके महाकाव्यत्व को नहीं । "कामायनी की श्रेष्ठता का मूल कारण उसका महाकाव्यत्व नहीं केवल कवित्व है जो यत्र तत्र सभी सर्गों में दिखाई पडता है ।"[1] "कामायनी" की महत्ता को स्वीकार करने के साथ साथ दिनकर जी प्रसाद जी के इस महाकाव्य की सीमाओं की निश्चित व्याख्या भी करते हैं । उसमें वे ज़रा भी हिचकते नहीं । "मेरा ख्याल है कामायनी के दोष उंगलियों पर क्या उंगलियों की पोरों पर भी नहीं गिने जा सकते और उंगलियों पर गिनना है तो प्रत्येक उंगली की प्रत्येक पोर को अनेक बार छुना पडेगा ।"[2] दिनकर के अनुसार "कामायनी" का सबसे बडा दोष उसमें प्रयुक्त भाषा का है । वे लिखते हैं - "कामायनी का अधिकांश तो ऐसा ही है जहाँ भाषा लचड, अभिव्यक्तियाँ लद्धड और सफाई बिलकुल शून्य है ।"[3]

दिनकर के अनुसार प्रसाद के विचार ऊँचे हैं, किन्तु भाषा कमज़ोर है । उनके भाव सूक्ष्म, किन्तु अभिव्यक्तियाँ उलझी हुई हैं । कामायनी को एक आदर्श काव्य मानने से वे सहमत नहीं हैं । इस प्रकार दिनकर ने "कामायनी"

---

1. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण - दिनकर - पृ. 20।
2. " " - पृ. 21
3. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण - दिनकर - पृ. 21।

की एक स्पष्ट व्याख्या इस निबंध में प्रस्तुत की है । स्पष्ट शब्दों में कामायनी की सीमाओं का निर्धारण तो उसने किया है । दिनकर की आलोचना की सरलता एवं स्पष्टता का यह कामायनी संबंधी लेख स्पष्ट प्रमाण है । दिनकर ने यहाँ कृति की व्याख्या के रूप में कवि प्रसाद जी के विचारों की समीक्षा की है । जहाँ प्रशंसा करने का मौका मिला वहाँ उन्होंने उसका सदुपयोग किया । जहाँ दोष दिखाई दिये, उसे खुलकर बता दिये । एक तटस्थ आलोचक के रूप में दिनकर ने "कामायनी" की परीक्षा की है । इधर दिनकर जी का आलोचक व्यक्तित्व पूर्ण रूप से प्रकाशित होने लगता है ।

4. सुमित्रानन्दन पंत

छायावाद के प्रमुख कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त के संबंध में दिनकर ने अपना विचार "पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण" में व्यक्त किया है । दिनकर जी पन्त के विचारक पक्ष पर बल देते हैं । पन्त जी के काव्य के विषय में आलोचकों की यह धारणा रही है कि उसका विकास छाया, प्रगति और दर्शन के तीन पृथक् और क्रमिक चरणों में हुआ है । किन्तु दिनकर युगवाणी से ही उनके विकास का संबंध जोडकर केवल दो चरणों की मान्यता स्वीकार करते हैं । दिनकर पंत के नारी रूप चित्रण में संयम की कमी का उल्लेख करते हुए भी उनकी नैतिकता का स्वागत करते हैं । पन्त की सामाजिकता को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं - "उन्होंने नयी नैतिकता के जो सिद्धान्त निकाले हैं उन्हें मैं समाज के लिए उपयोगी मानता हूँ और मेरा अनुमान है कि उनके प्रचलन से दम्पतियों के जीवन में सुख और शांति की वृद्धि होगी । पंत की आशा एवं आस्थावादी रचनाएँ उनके मन में, यह विश्वास जागृत करती है कि आगे की पीढियाँ उन्हें अवतारी, संदेशवाहक रूप में याद करेगी, अन्यथा उत्थानवादी तो मानेंगी ही ।"[1]

---

1. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण - दिनकर - पृ.

दिनकर पंत को विचारक कवि की संज्ञा देते हैं जिनके द्वारा नवजागरण के आनन्द और उल्लास को स्वर मिला । दिनकर ने इस कृति में पंत के काव्य का विकासात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है । पंत की भाषा के संबंध में दिनकर ने लिखा है कि खडीबोली का कोमल रूप पंत की रसायनशाला में तैयार हुआ है । पंत एवं छायावाद पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा - "पल्लव की भूमिका छायावाद का मेनिफेस्टो थी और नये आन्दोलन का रूख उस लेख में जितनी स्पष्टता के साथ प्रकट हुआ उतना साफ और किसी निबन्ध में नहीं । यह भी ध्यान देने की बात हैं कि नये कवियों में जनता ने पंतजी को ही अपना सर्वाधिक प्रेम अर्पित किया और आज वे ही छायावाद का सुधार भी कर रहे हैं ।"[1]

दिनकर ने कवि पन्त जी के विचारक पक्ष का अध्ययन किया है । दिनकर जी ने पन्तजी का विवेचन अत्यन्त सहानुभूति के साथ किया है । पन्तजी की रचनाओं को भी इस संदर्भ में दिनकर ने अपने अध्ययन का विषय बनाया । संक्षेप में पन्तजी के संबंध में दिनकर के विचार अत्यन्त सूक्ष्म, व्यापक एवं गंभीर हैं ।

5. महोदवी वर्मा

छायावाद की प्रसिद्ध कवयित्री सुश्री महादेवी वर्मा का विवेचन दिनकर ने अत्यन्त सहानुभूति के साथ किया है । दिनकर मानते हैं कि छायावाद कालीन पीडावाद का परिपाक है महादेवी जी का वेदना भाव । दिनकर के अनुसार सनातन विरह के हृदय से फूटनेवाली अनुभूतियाँ छायावाद की पूँजी थी,

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 16-17

इन्हीं सहानुभूतियों के भण्डार में महादेवी जी ने अपने योग्य उपकरणों का चुनाव किया । आगे वे लिखते हैं - "महादेवी जी ने जो हृदय पाया वह हिन्दी का हृदय था । उनकी रुझान रुदनशीलता पर थी और जब वे साहित्य में पहुँची तब तक क्रन्दन का स्वर छायावाद का सबसे प्रधान स्वर बन चुका था ।"[1] महादेवी जी के महत्व को स्वीकार करते हुए एक स्थान पर उन्होंने लिखा है - "महादेवी साधिका नहीं, कवयित्री और कलाकार हैं । अतएव दर्द को पीकर चुप रहना वे कबूल नहीं कर सकतीं । अभिव्यक्ति की बेचैनी, संप्रेषणीयता की उमंग और कला से मिलनेवाला आनन्द उन्हें बार-बार बोलने को लाचार करता है ।"[2] महादेवी जी की साहित्य साधना का सही मूल्यांकन करने का स्तुत्य कार्य दिनकर ने किया है ।

6. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

छायावाद के प्रसिद्ध कवि श्री निरालाजी पर व्यापक रूप में न सही, किन्तु सूक्ष्म अध्ययन दिनकर ने किया है । निराला पर वे लिखते हैं - "निराला जी थे औघड फकीर । जीवन भर उनका रास्ता गडबड रहा । मगर मर कर तो इस फकीर ने सबको मार डाला । निरालाजी पर जनता की जो भक्ति उमडी है, वह अन्ततः साहित्य को ही अर्पित भक्ति है ।"[3]

इसके अलावा दिनकर ने हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ लेखकों के संबंध में अपना मत प्रकट किया है । अज्ञेय के संबंध में वे लिखते हैं - "हिन्दी में अज्ञेय ही है जो विश्व साहित्य की नयी प्रवृत्ति के संपर्क में रहते हैं । बोलते

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 95
2. वेणुवन - दिनकर - पृ. 99
3. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 4

वे बहुत कम है, शायद इसलिए वे शीलवान दिखाई देते हैं ।"[1] वेनीपुरी पर उन्होंने एक स्थान पर लिखा है - "वेनीपुरी केवल कलम का जादूगर नहीं था, वह क्रांन्तिकारी मनुष्य था । बुलबुल शैली, ताकतवार कलम और निर्भीक विचार । वेनीपुरी क्रांतिकारी और देशभक्त थे । जिसने उन्हें नही देखा, वह समझ ही नहीं सकेगा कि वे कितने ज़िन्दादिल इन्सान थे ।"[2] बर्नाड शॉ पर वे लिखते हैं - "शॉ ने गुड मिलाकर इमली बाँट दी, जनता उनसे भी होशियार निकली । उसने गुड चाटकर इमली छोड दी ।"[3]

गाँधी विचार धारा के प्रमुख कवि श्री भवानी मिश्र पर वे लिखते हैं - "हिन्दी कविता के क्षेत्र में गाँधी विचारधारा का प्रतिनिधित्व अभी भवानी ही कर रहे हैं ।"[4] दिनकर ने यशपाल, वीरेन्द्र कुमार जैन, अमृतराय, मोहन राकेश आदि लेखकों की चर्चा भी की है ।

अरविन्दजी और उनके काव्य तथा दर्शन से संबद्ध दिनकर के विचार "चेतना की शिखा" में व्यक्त हुए हैं । दिनकर अरविन्द जी के दर्शन और साहित्य से बहुत अधिक प्रभावित थे । अरविन्दजी की साहित्य सृजन संबंधी अनुभूतियों की चर्चा संक्षिप्त रूप में "श्री अरविन्द की साहित्यिक मान्यताएँ" शीर्षक निबन्ध में उपस्थित की गई है । दिनकर के मत में "श्री अरविन्द की साधना अथाह थी । उनका व्यक्तित्व गहन और विशाल था और उनका साहित्य दुर्गम समुद्र के समान है ।"[5]

---

1. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 4
2. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 124
3. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 130
4. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 166
5. चेतना की शिखा - दिनकर - पृ. 15

दिनकर जी का पाश्चात्य भाषा साहित्य का गंभीर एवं व्यापक ज्ञान है । वे पश्चिम की प्रमुख साहित्यिक एवं ऐतिहासिक विचारधाराओं से खूब परिचित थे । "शुद्ध कविता की खोज" में दिनकर ने शुद्ध कविता का इतिहास लिखते हुए, बोदलेयर, मलार्मे, रेम्बू, नीत्से, एलियट, जार्ज रसेल जैसे साहित्यकारों की साहित्य संबंधी मान्यताओं की चर्चा की है । जर्मनी, रूस और फ्रान्स के साहित्य पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है । प्रभाववाद, डाडावाद, सुररियलिज़्म, आभव्यंजनावाद, प्रतीकवाद आदि विभिन्न पाश्चात्य साहित्यिक प्रवृत्तियों का परिचय देने का कार्य भी दिनकर ने किया है ।

"साहित्य में आधुनिक बोध" पर विचार करते हुए दिनकर मान लेते हैं कि साहित्य पर विज्ञान का गहरा प्रभाव पडा है । विज्ञान ने मनुष्य की सोचने की दिशा बदली है, उसके परिवेश को बदल दिया है । "जब दुनिया अँधेरी थी, आसमान साफ था । जब दुनिया रोशनी से भर गयी, आसमान पर अँधियाली छा गयी । पहले मनुष्य को सत्य वहाँ भी दिखाई देता था, जहाँ सचमुच सत्य नहीं था । अब जो सत्य है, उस पर भी मनुष्य को विश्वास नहीं होता ।"[1] सभ्यता की इस निस्सहाय स्थिति में साहित्यकार द्विधाग्रस्त से हो गये हैं ।

दिनकर जी आधुनिक बोध को एक शाश्वत मूल्य नहीं मानते । इनके मत में विभिन्न देशों की आधुनिक बोध का भाव भिन्न होता है । वे कहते हैं - "साहित्य में साधारणतः जिसे आधुनिक बोध कहा जाता है, वह कोई शाश्वत मूल्य नहीं है । मूल्य शायद वह है ही नहीं । मूल्यों के विघटन

---

1. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृ. 128

से उत्पन्न वह एक दृष्टि है, जिसमें घबराहट, निराशा, शंका, त्रास और असुरक्षा के भाव हैं, [अतएव, आधुनिक बोध की सारी व्याप्तियाँ ऐसी नहीं हैं ।] जो आँख मूँदकर स्वीकार कर ली जायें ।" दिनकर की दृष्टि में संसार की असाध्य समस्याओं का उत्तर देने की क्षमता इस आधुनिक बोध में नहीं है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि दिनकर की व्यावहारिक आलोचना मौलिक एवं गंभीर है । दिनकर ने साहित्यिक विधाओं, साहित्यिक वादों और समसामयिक कवि एवं उनकी रचनाओं की आलोचना अत्यन्त स्पष्ट एवं गंभीर रूप से की है । दिनकर की व्यावहारिक आलोचना का अध्ययन करने से यह स्पष्ट विदित होता है कि उनमें एक नदीष्ण मस्तिष्क की जागरूक आत्मा है, इसलिए वे संपूर्ण विश्व वाङ्मय को सही प्रसंग में देख सकते हैं और उनकी व्याख्या कर सकते हैं ।

दिनकर की आलोचना में अभिव्यक्त चिन्तन स्वच्छ है । सफाई और सन्तुलन ने उनकी आलोचना को महिमामय और तेजस्वी बना दिया है । उनकी साहित्यिक अन्तर्दृष्टि उतनी ही पैनी है जितनी हिन्दी के अन्य मूर्धन्य आलोचकों की । दिनकर की आलोचना की भाषा अत्यन्त साफ-सुथरी है । उसमें कोई उलझाव नहीं है । दिनकर जी विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति भाषा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण मानते हैं । उनकी भाषा व्यावहारिक, परिमार्जित, समृद्ध और प्राणवान् है ।

दिनकर जी की आलोचना की शैली अत्यन्त उदात्त है । उनकी शैली चिन्तन प्रधान विवेचनात्मक है । अस्पष्टता का किंचित् अंश भी

---

1. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृ. 216

उनके चिंतन में नहीं है । अपनी मान्यताओं की पुष्टि के लिए वे विदेशी कवियों और चिन्तकों के उद्धरण स्वच्छन्दतापूर्वक देते हैं और यत्र तत्र संस्कृत के आचार्यों को भी उद्धृत करते हैं । उनके कुछ निबंधों में आवेशपरक अथवा कल्पनाप्रधान काव्यात्मक शैली का प्रयोग भी मिलता है । उदा:- समकालीन कविता पर विचार करते हुए वे लिखते हैं - "छायावाद की निस्सार उडान की तरह नहीं, जो आध्यात्मिक लोक में डुबकियाँ लगाने का स्वाँग रचकर वर्षों तक साधारण पाठकों की बुद्धि को हैरान करता रहा । हमारी कल्पना हमारी दुनिया पर फैलनेवाले ईश्वर या वायुमण्डल के समान होगी, जिसमें हमारी धरती के पौधों की गन्ध भरी रहेगी, हमारे स्वप्नों में जागृति के ही वे बिंब होंगे, जो आँख लगाने पर पलकों में मँडराया करते हैं ।"[1]

दिनकर जी की आलोचना पद्धति का आधार विश्लेषण नहीं, अनुशीलन, प्रभावग्रहण, वैयक्तिक अनुभूति, संस्मरण और सामान्यानुमान है । इसलिए उनकी आलोचना में सरलता और अपेक्षित संक्षिप्तता आ जाती है । परिपक्व मनन और निर्भीक गुण-दोष विवेचन दिनकर की आलोचना की विशेषता है । उनकी व्यावहारिक आलोचना ने यह सिद्ध कर दिया है कि कवि में अन्तर्हित समीक्षक केवल अपनी ही रचनाओं पर मार्मिक आलोचनाएँ लिखने में सफल नहीं होता, वह वस्तुनिष्ठ भी हो सकता है और अपने समसामयिकों की उपलब्धियों पर वैसी ही वस्तुगत, स्वस्थ, निष्पक्ष एवं सन्तुलित आलोचना लिख सकता है । दिनकर ने पूर्वाग्रह के बिना तटस्थता के साथ आलोचक का काम पूरा किया है ।

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 47

अध्याय - तीन

दिनकर का निबंध साहित्य

प्रस्तुत अध्याय में मुख्यत: दिनकर के निबंध साहित्य का अध्ययन किया गया है । इसके साथ ही साथ दिनकर के यात्रा विवरण और उनकी डायरी का विवेचन भी किया गया है । पहले हम दिनकर के निबंध साहित्य का अध्ययन करेंगे ।

हिन्दी निबंध साहित्य का स्वरूप एवं विकास

निबंध आधुनिक युग की अत्यन्त शक्तिशाली गद्यपरक साहित्यिक विधा है । यह एक बहुत ही आधुनिक गद्य प्रकार है । सोलहवीं शताब्दी में फ्रान्स के मिकेल मौंटेन ने इस विधा का सूत्रपात किया । धीरे-धीरे यह विधा लोकव्यापी हो गयी । उसका उत्तरोत्तर विकास हुआ और अब निबंध गद्यकार की कसौटी माना जाता है ।

निबंध शब्द का अर्थ है गठा हुआ, कसा हुआ, बंधा हुआ । निबंध ऐसी रचना है जिसमें विचार बाँधा अथवा गूँथा जाता है । निबंध का पर्याय अंग्रेज़ी शब्द "एसे" है । ऐसे शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी शब्द एसेइस (**Essais**) के अनुकरण पर हुई जिसका अर्थ प्रयास, प्रयत्न या परीक्षण है । फ्रांस के मिकेल मौंटेन ने पहले पहल इस शब्द का प्रयोग किया ।

मौंटेन के मत में निबंध में निबंधकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है । इंग्लैंड के विद्वान फ्रांसिस बेकन निबंध को विकीर्ण चिंतन मानते हैं ।

पाश्चात्य समीक्षक डा. जानसन की दृष्टि में निबंध मस्तिष्क की स्वच्छन्द सूझ, अव्यवस्थित कड़ी और मुक्तक प्रयास है । डब्ल्यू. ई. विलियम्स के अनुसार निबंध वह गद्यप्रकार है जो आकार में बहुत छोटा होता है । हिन्दी के विभिन्न विद्वानों ने भी निबंध की परिभाषा दी है । डा. गुलाबराय ने निबंध की परिभाषा यों दी है - "निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और संबद्धता के साथ किया जाता है ।"[1] शिवदान सिंह चौहान के मत में "निबंध गद्य का अत्यन्त शक्तिशाली रूप विधान है ।"[2] डा. जयनाथ नलिन के अनुसार "निबंध स्वाधीन चिंतन और निश्चल अनुभूतियों का सरस, सजीवन और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन है ।"[3] हिन्दी साहित्य के इतिहास में रामचन्द्र शुक्लजी कहते हैं - "आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबंध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अथवा व्यक्तिगत विशेषताएँ हैं ।"[4] इन विभिन्न परिभाषाओं पर विचार करने के उपरान्त कहा जा सकता है कि निबंध एक सुव्यवस्थित गद्य रचना है जिसमें लेखक की भावात्मक प्रतिक्रियाओं का सौन्दर्यमय चित्रण होता है । निबंधकार का मूल उद्देश्य आत्म-प्रकाशन है । निबंधों में लेखक एक सीमित विषय का सीमित आकार में निजीपन के साथ स्वच्छन्दता और सजीवता से युक्त वर्णन देते हैं । संक्षेप में निर्दिष्ट विषय, संक्षिप्तता, स्वत: पूर्णत्व, संबद्धता, भावतत्व और लेखक का व्यक्तित्व निबंध के प्रमुख तत्त्व हैं ।

---

1. काव्य के रूप - डा. गुलाब राय - पृ. 236
2. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - डा. शिवदान सिंह चौहान - पृ. 193
3. हिन्दी निबंधकार - जयनाथ नलिन - पृ. 10
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ. 466

निबंधों का वर्गीकरण विषय, शैली और स्वरूप के आधार पर किया जा सकता है । स्वरूप की दृष्टि से निबंध चार प्रकार के होते हैं - 1. पुस्तक के रूप में 2. भूमिका के रूप में 3. लिखित व्याख्यान के रूप में और 4. पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों के रूप में । विषय के आधार पर वर्गीकरण करें तो साहित्य और भाषा विषयक, जीवन चरित्रात्मक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, अध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक आविष्कारों संबंधी आदि अनेक भेद हो सकते हैं । शैली के आधार पर वर्गीकरण करें तो निबंध मुख्यतया चार प्रकार के हैं - वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक और भावात्मक ।

हिन्दी में निबंध साहित्य का विधिवत् आरंभ भारतेन्दु युग में हुआ । इसके पहले श्री रामप्रसाद निरंजनी, मुंशी सदासुखलाल, इंशा अल्ला खाँ, लल्लूलाल, सदल मिश्र, शिवप्रसाद सितारे हिन्द , लक्ष्मण सिंह, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी आदि महाशयों ने हिन्दी गद्य के विकास में महत्वपूर्ण कार्य किये । लेकिन भारतेन्दु युग तक एक साहित्यिक विधा के रूप में निबंध का सूत्रपात नहीं हुआ था । भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों ने पाश्चात्य निबंध शिल्प से प्रभाव ग्रहण कर हिन्दी निबंधों का आधुनिकीकरण किया ।

भारतेन्दु का युग आन्दोलनों का युग था । समस्त देश में देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना फैल चुकी थी । उस समय भारतेन्दु और उनके सहयोगी निबंधकार- बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, लाला श्रीनिवास दास, अंबिकादत्त

व्यास आदि लेखकों ने युग जीवन और परिवेश से प्रेरणा ग्रहण कर पत्र-पत्रिकाओं में अनेक निबंध लिखे । उनका उद्देश्य जनता को सचेत करना था । इस युग के निबंधकार राष्ट्रीयता एवं सामाजिकता से ओतप्रोत थे ।

भारतेन्दु युग के निबंधों में व्यक्तिनिष्ठता, आत्मीयता, सजीवता, स्पष्टता, रोचकता और मनोहर रंगीनी मिलती है । इस युग में गद्य की अनेक शैलियों के प्रति जागरूकता हम पाते हैं । वास्तव में यह युग निबंध के लिए नई दिशाओं और नये प्रयोगों का युग था । लेकिन इस युग में उच्चकोटि के कलात्मक और साहित्यिक निबंधों की रचना संभव नहीं हुई । अधिकांश निबंध उपदेशात्मक रह गये और निबंधों में साहित्यिकता का समावेश भली-भाँति नहीं हो सका । निबंध साहित्य के क्षेत्र में इस युग का महत्व यह है कि हिन्दी निबंध का जो स्वरूप आज निखरकर सामने है उसकी पूर्वपीठिका यहीं तैयार हुई थी ।

हिन्दी निबन्ध साहित्य की दूसरी उडान बीसवीं सदी के आरंभ में शुरू हुई । सरस्वती पत्रिका के माध्यम से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी निबंध के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । उन्होंने गद्य लेखन को सशक्त शैली और व्याकरण सम्मत भाषा बनाने की दिशा में अथक परिश्रम किया । इस युग के अन्य प्रमुख निबंधकार हैं - चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बालमुकुन्द गुप्त, सरदार पूर्ण सिंह, पद्मसिंह शर्मा, डा.श्याम सुन्दर दास, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी आदि । द्विवेदी युग में प्राय: सभी विषयों को लेकर निबंध लिखे गये । अतीत गौरव, सांस्कृतिक पुनर्जागरण तथा भाषा परिष्कार इस समय के निबंधों की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ थीं ।

द्विवेदीयुगीन निबंधों में उपयोगितावाद को ही अधिक महत्व दिया गया था । अतएव कलात्मक निबंधों की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया । उपदेशात्मक प्रवृत्ति के कारण निबंधों में सजीवता का अभाव सा होने लगा था । भाषा के व्याकरण सम्मत बनाने पर अत्यधिक बल देने के कारण निबंधों की भाषा भी नीरस हो गयी । लेकिन इतना तो हमें स्वीकार करना ही पडेगा कि भारतेन्दु युग और आधुनिक युग की योजक कडी के रूप में निबंध साहित्य के इतिहास में द्विवेदी युग का महत्वपूर्ण स्थान है ।

शुक्ल युग हिन्दी निबंधों के विकास का महत्वपूर्ण समय है । इस युग के निबंधों में वैचारिकता, सैद्धान्तिकता और विश्लेषणपरकता का प्राधुख्य है । इस युग के प्रमुख निबंधकार है - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा. गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, शिवपूजन सहाय, माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगी हरि, वासुदेव शरण अग्रवाल, रायकृष्णदास आदि ।

विषय, भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से शुक्ल युग हिन्दी निबंध साहित्य का उत्कर्षकाल है । इस युग के निबंधकारों ने द्विवेदी युगीन शास्त्रीय शैली को और भी सप्राण, शक्तिशाली बनाकर निबंधों में भविष्य की बडी संभावनाएँ भर दीं । विषय के अनुरूप उपयुक्त भाषा शैली को अपनाने की कुशलता इन निबंधकारों की बडी विशेषता थी । उन्होंने निबंधों में सुसंबद्धता तथा कसाव पर बल दिया । इस युग में निबंध की अनेक शैलियों का विकास हुआ । शुक्ल युग के निबंधों का यह दोष भी है कि बौद्धिकता के प्रति अधिक आग्रह होने के कारण उनमें एक हद तक उन्मुक्तता, समसामयिकता और आत्मीयता का अभाव है ।

शुक्लोत्तर युग में निबंध की दिशा में आशातीत वृद्धि हुई । व्यक्तिवादी एवं समाजवादी विचारधाराओं का प्रभाव निबंधकारों पर पडा और निबंध साहित्य का अनेकमुखी विकास हुआ । हिन्दी के अनेक निबंध लेखक छायावादी भावधारा, सौन्दर्यपरक मूल्यों तथा अनुभूति संवेगों से प्रभावित हुए । उन्होंने अनुभूति तथा विचारों को वैयक्तिक धरातल पर सही रूप से उतारने का प्रयास किया । ऐसे लेखकों में जयशंकर प्रसाद, सुभित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, राहुल सांस्कृत्यायन, नन्ददुलारे वाजपेयी, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी आदि प्रमुख हैं ।

सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई । तभी से उन प्रगतिशील लेखकों का विशिष्ट प्रादुर्भाव हुआ जो मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित थे । उन्होंने सामाजिक यथार्थवाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया । श्री यशपाल, रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदान सिंह चौहान, रांगेय राघव, भगवत शरण उपाध्याय आदि निबंधकार इस वर्ग में आते हैं ।

निबंधकारों का तीसरा वर्ग पाश्चात्य विचारकों, चिंतकों और मनोवैज्ञानिकों से प्रभावित लेखकों का है । वे सामाजिक विधि-निषेधों, दमित इच्छाओं तथा अनेक मानसिक ग्रंथियों से संबंधित मनोवैज्ञानिक धाराओं से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं । श्री अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र कुमार आदि इस वर्ग के प्रमुख लेखक हैं ।

उपर्युक्त विभिन्न वर्ग के निबंधकारों के बीच कुछ ऐसे लेखक भी है जिन्होंने छायावादी भावप्रधान चेतना के तथा समाज दर्शन के निबंध

लिखे हैं । उनमें प्रमुख हैं श्री रामधारी सिंह दिनकर, शांतिप्रिय द्विवेदी, विश्वंभर मानव, देवेन्द्र सत्यार्थी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर आदि ।

सन् 1960 के आसपास निबंध के क्षेत्र में नयी चेतना के साथ एक नव्यतम पीढी उभरी । नगर सभ्यता से आक्रान्त निम्न एवं मध्यवर्ग की इस पीढी ने निबंध के क्षेत्र में क्रांति मचा दी है । डा. नामवर सिंह, धर्मवीर भारती, नेमीचन्द्र जैन, ठाकुर प्रसाद सिंह, बच्चन सिंह, शिवप्रकाश सिंह, विजदेवनारायण साही, विद्यानिवास मिश्र, रामदरस मिश्र, मुक्तिबोध, रमेश कुंतल मेघ, देवी शंकर अवस्थी आदि साठोत्तर काल के कुछ प्रमुख निबंधकार हैं । उनके निबंधों में चिंतन एवं विश्लेषण की तीक्ष्णता है ।

साठोत्तर हिन्दी निबंध साहित्य में निबंध की सभी विधाओं का पर्याप्त विकास हुआ है । लेखक अपनी अनुभूति तथा विचारों को उपयुक्त भाषा में अभिव्यक्त करने को सक्षम सिद्ध हो रहे हैं । विषय की दृष्टि से निबंधों में पर्याप्त विविधता भी दर्शनीय है । निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि यद्यपि आज के निबंध साहित्य में एक प्रकार की अनिश्चितता है तो भी वह विकास पथ पर संपन्नता की ओर अग्रसर हो रहा है ।

दिनकर का निबंध साहित्य

दिनकर का निबंध-साहित्य साहित्य की अनुपम उपलब्धि है । हिन्दी के स्वच्छन्द चेता निबंधकारों में दिनकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है । दिनकर ने जीवन के सभी क्षेत्रों को अपने निबंधों में समेटने का प्रयास किया है । इसके लिए उन्होंने तत्कालीन निबंधों की सभी प्रचलित शैलियों का उपयोग किया ।

उन्होंने जीवन के विशाल क्षेत्र से घटनाओं और तथ्यों के ग्रहण तथा निरूपण द्वारा निबंध-विधा की एक वैविध्यपूर्ण धारणा प्रस्तुत की है । भावनाओं और विचारों के सहज समन्वय के द्वारा उनके निबंध पाठक की बुद्धि को प्रेरित और हृदय को रसासिक्त करते हैं । उनके निबंधों में आत्मीयता की सघनता और सच्चाई के कारण मर्मस्पर्शिता है । स्वच्छता, सरलता और आडंबर हीनता का समर्थन करनेवाले ये निबंध सही अर्थ में पूर्ण और आकर्षक हैं ।

दिनकर ने निबंध को साहित्य की एक सशक्त विधा माना है । निबंध साहित्य के अध्ययन की ज़रूरत पर ज़ोर देते हुए उन्होंने "आधुनिक बोध" की भूमिका में लिखा है - "हिन्दी में निबंध पाठकों की संख्या कम है, जबकि हिन्दी पाठकों के लिए निबंधों का अध्ययन अत्यावश्यक है ।"[1] दिनकर के इस कथन से स्पष्ट है कि वे निबंध साहित्य का प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं । दिनकर ने अपने निबंधों के माध्यम से निबंध साहित्य की ओर पाठकों की रुचि को आकर्षित करने का सराहनीय प्रयास किया है । साधारण अथवा गंभीर विषयों को रोचक, ग्राह्य, सरल, सुबोध एवं विचारोत्तेजक रूप देने में उनके निबंध सफल हुए हैं । डा. नगेन्द्र के शब्दों में - "दिनकर जी के निबंधों में व्यंजना की सफाई, स्पष्टता और सहजता है जो उनके काव्य के भी विशिष्ट गुण हैं । वे सहज ढंग से अनुभूत सत्य को निबंध में इसप्रकार प्रस्तुत करते हैं कि पाठक उसका अपने भीतर साक्षात्कार कर सके, उनमें उलझन, दुरूहता, अस्पष्टता और संशय नहीं मिलते । पक्ष अथवा विपक्ष में उनका निर्णय दो टूक होता है, यह बात दूसरी है कि हम उनसे सहमत न हो सकें । किन्तु हमें उनका मन्तव्य समझने में कोई कठिनाई नहीं होती ।"[2]

---

1. आधुनिक बोध - भूमिका - दिनकर - पृ. 3-4
2. हिन्दी वाङ्मय - बीसवीं शती - डा. नगेन्द्र - पृ. 352

दिनकर के निबंधों पर विचार करते हुए डा. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है - "दिनकर के निबंधों में उनका अदम्य उत्साह, दृढ़ संकल्प सबल व्यक्तित्व, देश प्रेम, संस्कृति प्रेम, कवि सुलभ भावुकता, खोज और गंभीर अध्ययन एक ही साथ मिलता है । आपके भावात्मक एवं आत्मपरक निबंधों में कवितत्व तथा अनुभूति प्रधान है । आपका कवि रूप जगह-जगह अभिव्यक्ति के लिए मचल उठता है । भावुकता आपके साथ कहीं नहीं छोडती ।"[1] दिनकर के निबंधों में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप दिखाई पडती है । वैयक्तिकता का यह स्पर्श उनके निबंधों को पाठकों का अंतरंग बना लेता है । उनके निबंध वर्णित वस्तु, विचार, लेखक और पाठक सबको जोड देते हैं और अन्त में आकर पाठकों पर स्थायी प्रभाव छोड जाते हैं । दिनकर के निबंधों की भाषा एवं शैली अत्यंत परिमार्जित हैं । आचार्य उमेश शास्त्री के शब्दों में - "शब्द चयन की उपयुक्तता, वाक्यों का सुगठित सन्तुलित विन्यास तथा परिष्कृत और स्पष्ट अभिव्यक्ति उनके निबंधों की विशेषता है ।"[2]

दिनकर की साहित्य यात्रा का लक्ष्य मानवता की खोज है । उनके निबंध साहित्य में उदार मानवतावादी दृष्टि लक्षित होती है । आगे दिनकर के विभिन्न विषयों पर लिखे हुए निबंधों का अध्ययन हम करेंगे । अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से दिनकर के निबंधों का विषयगत वर्गीकरण करना हमें अधिक समीचीन लगता है ।

दिनकर के निबंधों का वर्गीकरण यों हो सकता है -

(1) साहित्यिक निबंध (2) सामाजिक निबंध (3) राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय

---

1. छायावादोत्तर हिन्दी गद्य-साहित्य - डा. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - पृ. 202-203

2. हिन्दी साहित्य का निबंधात्मक इतिहास - आचार्य उमेश शास्त्री - पृ.154

एकता से संबंधित निबंध (4) धर्म, नैतिकता और विज्ञान से संबंधित (5) शिक्षा संबंधी (6) राष्ट्रीयता और अंतर्राष्ट्रीयता से संबंधित (7) आधुनिकता संबंधी और (8) भावात्मक निबंध ।

1. साहित्यिक निबंध

दिनकर युग प्रवर्त्तक महान साहित्यकार हैं । उनमें भारतीय एवं विदेशी भाषा साहित्य का विस्तृत ज्ञान है । समसामयिक साहित्यिक गतिविधियों से वे पूर्ण अवगत हैं । उन्होंने अपने अनेक निबंधों में साहित्य संबंधी महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाया है । दिनकर के साहित्यकार का व्यक्तित्व सर्वप्रमुख होने के कारण उनके निबंधों में साहित्यिक निबंधों की संख्या बहुत अधिक हैं । उनके अन्य निबंधों पर भी इस साहित्यिक व्यक्तित्व की छाप पड़ी है । यह मानना ही पड़ता है कि दिनकर के सभी निबंधों में उनकी साहित्यिक दृष्टि प्रतिफलित दिखाई देती है । लेकिन साहित्यिक निबंधों की कोटि में हम यहाँ सिर्फ उन निबंधों की चर्चा करना चाहते हैं जिनमें साहित्य संबंधी प्रश्न प्रस्तुत किये गये हैं ।

अपने साहित्यिक निबंधों में दिनकर विवेचक के रूप में अधिक दिखाई पड़ते हैं । अतः उनके अधिकांश साहित्यिक निबंध समीक्षात्मक हैं । उनके साहित्यिक निबंधों का दूसरा वर्ग उन संस्मरणात्मक निबंधों का है जिनमें साहित्य या साहित्यकार का परिचय दिया गया है । दिनकर के समीक्षात्मक निबंधों का अध्ययन हम दूसरे अध्याय में कर चुके हैं । उनके संस्मरणात्मक साहित्यिक निबंधों की चर्चा अगले अध्याय में दिनकर की संस्मरणात्मक रचनाओं के भीतर करेंगे । अतः इन दोनों प्रकार के साहित्यिक निबंधों के अतिरिक्त दिनकर ने जिन फुटकर साहित्यिक निबंध लिखे हैं, केवल इन्हीं की चर्चा हम

यहाँ कर रहे हैं । इस कोटि के निबंधों में "साहित्य का धर्म", "खाँटी कला", "कला, धर्म और विज्ञान", "भविष्य के लिए लिखने की बात", "कलाकार की सफलता", "साहित्य का नूतन ध्येय", "महाकाव्य की वेला", "कविता का भविष्य", "स्वतंत्रता के बाद", "समाजवाद के अन्दर साहित्य", "रजत और आलोक की कविता ", "कविता, राजनीति और विज्ञान", "कला के अर्धनारीश्वर", "कविता में परिवेश और मूल्य", "इलियट का हिन्दी अनुवाद", "हिन्दी साहित्य में गाँधीजी का प्रभाव", "सर्वभाषा कवि सम्मेलन", "लेखकों का कार्य शिविर", "पाकिस्तान के पीछे साहित्य की प्रेरणा", "डोगरी की कविताएँ", "हिन्दी साहित्य में निगम धारा", "भाषा का सवाल", आदि प्रमुख हैं । "कर्म और वाणी", "खड्ग और वाणी", "हृदय की राह", "युद्ध और कविता", "साहित्य में आधुनिकता" आदि निबंधों में भी दिनकर के साहित्य संबंधी विचार प्रस्तुत किये गये हैं ।

दिनकर ने अपने साहित्यिक निबंधों में साहित्य का धर्म, साहित्यकार की सफलता, कला कला के लिए या जीवन के लिए, साहित्य और समाज का परस्पर संबंध, साहित्यकों पर नियंत्रण, साहित्य का राजनीति धर्म और विज्ञान से संबंध, साहित्य और इतिहास का भेद, हिन्दी साहित्य पर गाँधीजी का प्रभाव, अनुवाद की आवश्यकता एवं समस्यायें आदि साहित्य से संबंधित अनेक बातों पर अपने मौलिक विचार व्यक्त किये हैं ।

साहित्य के प्रति दिनकर की एक विशेष दृष्टि है । वे सत्यं, शिवं और सुन्दरं के समन्वय को साहित्य समझते थे । लेकिन दिनकर यह मानते थे कि ऐसा साहित्य बहुत कम लिखा जाता है जिनमें सत्यं, शिवं और सुन्दरम्

इन तीनों तत्त्वों का सम्यक् समन्वय हुआ हो । अंधी और पारदर्शिनी कविता की चर्चा करते हुए दिनकर ने श्रेष्ठ कविता का लक्षण बताया है - "कविताएँ दो प्रकार की होती हैं, एक अंधी और दूसरी पारदर्शिनी । अंधी कविता वह है जिसमें रंगों और चित्रों का सौन्दर्य तो है, किन्तु झाँकने पर रंगों और चित्रों के परे कोई और चीज़ दिखाई नहीं देती । और पारदर्शिनी कविता वह है जिसके रंगों और चित्रों के नीचे भी कोई गहराई दिखाई पडती है, फूल का केवल दृश्य रूप ही नहीं, उसका कोई अदृश्य रूप भी आँखों के आगे आ जाता है । चीज़ों के भूतरोत्तर रूपों का चित्र आँकना, फिसिकल में धँसकर मेटाफिसिकल हो उठना तथा दृश्य और अदृश्य के बीच सेतु का निर्माण करना, यह हमेशा से श्रेष्ठ कविता का लक्षण रहा है ।"[1] दिनकर की दृष्टि में विज्ञान और अध्यात्म को मिलाना आवश्यक हो गया है । विज्ञान और अध्यात्म के बीच याने दृश्य और अदृश्य के बीच जिस सेतु की आवश्यकता है उसका निर्माण करना साहित्य का धर्म है । उनके मत में बुद्धिवाद एवं आध्यात्मिकता का समन्वय करना साहित्य का ध्येय होना चाहिए । "भारत वर्ष के प्रत्येक कवि, चिंतक और कलाकार उसके स्वागत में अपने सपने बिछ दें । उसके मार्ग को निष्कंटक बनाने के प्रयास में अपनी आयु समाप्त कर दें ।"[2] "भूखे मनुष्य के सामने रोटी के बदले दर्शन और कविता परोसना निर्दयता का कार्य है, किंतु यह भी सत्य है कि रोटी खा लेने के बाद मनुष्य कला और विचार खोजता है, मिट्टी से छूटकर वायु में विचरण करना चाहता है ।"[3] साहित्य अपने मूल रूप में हमारे जैव आवेगों का भाषागत विस्फोट होता है । किन्तु साहित्य की शोभा यह है कि जैव धरातल पर जन्म लेकर वह

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 110
2. वेणुवन - दिनकर - पृ. 103
3. वेणुवन - दिनकर - पृ. 103

उत्तरोत्तर आत्मा के धरातल की ओर उठता चले ।"[1] उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर बुद्धिवाद एवं आध्यात्मिकता के बीच का समन्वय सूक्ष्म और स्थूल मनुष्य के व्यक्तित्व का परस्पर एक दूसरे में विलयन या सत्यं, शिवं और सुन्दरम् का समन्वय करते हुए संपूर्ण मानव जगत् का उद्धार करना साहित्य का परम धर्म समझते थे । दूसरे शब्दों में चिन्मयी मानवता की खोज ही साहित्य का ध्येय है, दिग्भ्रमित समाज को आलोक का नया रास्ता दिखाना साहित्य का धर्म है ।

साहित्य के धर्म पर विचार करने के साथ साथ दिनकर ने "कला कला के लिए या जीवन के लिए" पर भी विचार किया है । कला का वैयक्तिक एवं सामाजिक पक्ष है । इसलिए कला संबंधी तर्कों में से किसी एक पर अटके रहना दिनकर की दृष्टि में मूर्खता है । दिनकर की समन्वयवादी दृष्टि उनकी कला संबंधी मान्यताओं में भी व्यक्त हुई है । - "कला संश्लेषणात्मक शक्ति है, समन्वय की साधिका है । जीवन-विटप की शाखाएँ अनेक दिशाओं में फैली हुई हैं । ये अनेक शाखायें अनेक विधायें हैं, अनेक ज्ञान हैं, अनेक क्रिया-क्षेत्र हैं, लेकिन कला इन डालों पर नहीं बैठती । वह तो इस महावृक्ष के मूल में निवास करती है । जो लोग कला को जीवन की डालों पर बसनेवाली चीज़ समझते हैं, वे ही यह कहा करते हैं कि कला केवल विचार में अथवा मात्र सौन्दर्य में निवास करती है । किन्तु जिनकी दृष्टि जीवन के मूल पर पडती है, उन्हें ऐसा भ्रम नहीं सताता । वे जानते हैं कि कला सर्वव्यापिनी महत्तम शक्ति है जिसका आधार बुद्धि नहीं, संबुद्धि है, जिसके वृत्त में संसार के सभी ज्ञान, सभी क्रियायें आ जाती हैं, जो अध्यात्म और विज्ञान, दोनों के बीच महासेतु का निर्माण करती है ।"[2]

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 112
2. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 121-122

साहित्यकार के दायित्व पर विचार करते हुए दिनकर ने लिखा है कि हर एक लेखक को अपने समय के लिए लिखना चाहिए । वर्तमान की उपेक्षा करनेवाला कोई भी लेखक महान नहीं हो सकता । "प्रत्येक लेखक को सबसे पहले अपने समय के लिए लिखना चाहिए और यही वह धर्म है जिसका पालन संसार के सभी बड़े लेखकों ने किया है ।"[1] भविष्य की अंध भक्ति रखते हुए वर्तमान की उपेक्षा करनेवाले कलाकार पर दिनकर ने व्यंग्य किया है । "जो लोग वर्तमान के द्रोही और भविष्य के अन्ध भक्त हैं उनकी स्थिति यह होगी कि वर्तमान का जीवित अंश तो भविष्य में भी उनका विरोधी रहेगा और भविष्य का जो अनिश्चित अंश है, उनके बारे में निश्चयपूर्वक कुछ कहा नहीं जाता ।"[2] दिनकर की दृष्टि में अपने युग के लिए लिखना, उस युग के मूल्यों की रक्षा करना अथवा उन्हें बदलने का प्रयास करना और इस ढंग से वर्तमान से निकलकर भविष्य की ओर बढना साहित्यका के लिए वाँछनीय है । इसी प्रसंग में दिनकर ने भविष्य के लिए लिखने की निरर्थकता भी व्यक्त की है । "भविष्य के लिए लिखने की बात व्यर्थ है क्योंकि भविष्य के लोग उन रचनाओं को पढेंगे तो ऐसे उद्देश्य के लिए जो हमारा नहीं, बिलकुल उनका अपना उद्देश्य है ।"[3] दिनकर भविष्य की गोद में शरण माँगने की प्रवृत्ति को पलायनवादिता कहना चाहते थे ।

सफल कवि कौन है ? साहित्यकार की कसौटी क्या है ? इन बातों पर विचार करते हुए दिनकर बताते हैं कि संसार के समस्त मनुष्य सफलता की खोज में हैं । धन अधिकार या सुयश मनुष्य की सफलता की कसौटी मानी जाती है । लेकिन कलाकार की सफलता की कसौटी उनकी कृतियों का

---

1. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 8।
2. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 76
3. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 8।

समाज पर पडनेवाला प्रभाव ही है । "कलाकार की सफलता की कसौटी केवल यह हो सकती है कि उसकी कृतियों से समाज आन्दोलित हुआ है या नहीं और यदि हुआ है तो उसकी रचनाओं से प्रभावित होनेवालों का सांस्कृतिक धरातल क्या है ।"[1]

साहित्यकारों पर नियंत्रण लगाने की बात पर विचार करते वक्त दिनकर यह मानते चलते हैं कि साहित्य पर किसी भी प्रकार का नियंत्रण अनिष्टकारी ही सिद्ध होगा । साहित्य साहित्यकार की आत्मा का प्रस्वेद है । इसलिए साहित्य पर बाहर से नियंत्रण लगाने से उसका गौरव घट जायेगा । "नियंत्रण किसी भी भाव से किया जाय, उससे साहित्य का गौरव घटता है और मनुष्यता ऐसे अनेक विचारों से वंचित रह जाती है जो उपयोगी न होने पर भी मनुष्य को निर्मल और विशुद्ध आनंद देते हैं ।"[2] स्वतंत्र चिन्तन की महत्ता स्वीकार करते हुए दिनकर ने जो बातें बतायी हैं वे इस संदर्भ में देखने लायक हैं । "उपयोगी चिंतन और स्वतंत्र चिंतन में से, मूल्य की दृष्टि से स्वतंत्र चिंतन ही महार्घ है । आविष्कार बहुधा आकस्मिक रूप से आते हैं । साहित्य में भी अभिनव विचार बिजली की तरह, सहसा कौंध कर प्रकट हो जाते हैं । और यह सब इसलिए होता है कि सोचनेवाली बुद्धि स्वाधीन है ।"[3] दिनकर का यह भी कहना है कि यदि किसी प्रकार का नियंत्रण आवश्यक है तो वह स्वयं साहित्यकारों की आत्मा करेगी । नियंत्रण बाहर से आरोपित होने पर वह अहितकर सिद्ध होता है । "नियंत्रण अगर आवश्यक है तो वह स्वयं लेखक की आत्मा से आयेगा । बाहर

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 23
2. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 117
3. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 117

का कोई भी नियंत्रण, भले वह राजनीतिक नहीं हो, साहित्य के लिए हितकर कम होता है ।"[1]

साहित्य और समाज का परस्पर संबंध दिनकर के अनेक निबंधों का विषय बन गया है । साहित्य और परिवेश का प्रश्न असल में परंपरा और समकालीनता का प्रश्न है । परिवेश वह वातावरण है जिसमें साहित्य लिखा जाता है और मूल्य वे नैतिक मान्यताएँ हैं, साहित्य जिनका समर्थन या विरोध करता है । अर्थात् साहित्य अपने परिवेश से पूर्णतया संबद्ध है । साहित्य जगत् में जो भी कमज़ोरी या समस्या दिखाई पडती है वह असल में समाज की समस्या एवं कमज़ोरी है । दिनकर के शब्दों में - "साहित्य की समस्या मनुष्य की अन्य समस्याओं से भिन्न नहीं है । अहिंसा की ओर यात्रा करनेवाली मनुष्यता अभी हिंसा से मुक्त नहीं हो पायी है । अपरिग्रह की ओर चलनेवाला मनुष्य अभी लोभ से फिसलता चल रहा है । प्रेम और काम आपस में कौन सा संबंध स्थापित करेंगे अभी इसका कोई नक्शा साफ नहीं है । इसी प्रकार साहित्य भी कभी अनैतिक होकर लोकप्रिय हो उठता है । यह केवल कवि और लेखक की रुचि का प्रश्न नहीं, प्रत्युत समग्र मानवता की रुचि का सवाल है ।"[2] समाज के बदलने के साथ साहित्य में भी परिवर्तन आते रहते हैं । श्रेष्ठ साहित्य का निर्माण तभी होगा जब समाज सुसंस्कृत हो । साहित्य में होनेवाली जीर्णता का कारण समाज भी है । इस विषय में मात्र साहित्यकारों पर दोष लगाना उचित नहीं है । अपने इस मत की पुष्टि में दिनकर कहते हैं - "साहित्य अन्ततः साहित्यकार की आत्मा का प्रस्वेद होता है । जीवन छोटा और साहित्य बडा ऐसा दृष्टांत न पहले देखा गया, न आगे देखा जायेगा ।

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 117
2. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 117

जिस ऊँचाई तक साहित्यकार की पहुँच नहीं, उस ऊँचाई पर साहित्य भी नहीं पहुँचेगा ।"[1] ऐसी स्थिति में साहित्यकारों को नये आदर्शों को लेकर समाज को आगे ले चलना चाहिए । समाज-सुधार के कार्य में साहित्य बहुत कुछ कर सकता है । कोरी कल्पना का प्रचार करने के बदले साहित्य को वैज्ञानिकता एवं बुद्धिवाद को काफी मात्रा में स्वीकार करना पडेगा । "मुझे यह बात अच्छी नहीं लगती कि कल्पना और आभ्युष्मिकता के लिए इस देश में बहुत अधिक साहित्य-सभाएँ की जाएँ, क्योंकि अनेक गुणों के साथ कल्पना और आभ्युष्मिकता के बहुत से दुर्गुण भी हम लोगों में पहले से ही विद्यमान हैं, बल्कि इन्हीं दुर्गुणों के प्राचुर्य के कारण हमारा पतन हुआ है और जब तक तराजू के दूसरे पलडे पर हम वैज्ञानिकता और बुद्धिवाद को काफी मात्रा नहीं जमा कर देते, तब तक हमारा सम्यक् उत्थान नहीं होगा ।"[2] इन बातों से यह स्पष्ट होता है कि दिनकर साहित्य और समाज की आपसी समाश्रयता स्वीकार करते हैं और समाज का सम्यक् उत्थान करने का दायित्व वे साहित्य को ही सौंप रहे हैं ।

"कला, धर्म और विज्ञान", "कविता राजनीति और विज्ञान", जैसे निबंधों में दिनकर ने "साहित्य का राजनीति, धर्म और विज्ञान से संबंध" पर अपने सुचिंतित विचार व्यक्त किये हैं । कोई भी ईमानदार साहित्यकार अपने समय के राजनीतिक विचारों से बिलकुल अलग नहीं रह सकते । राजनीतिक बातों का ज्ञान साहित्यकार को होना भी चाहिए क्योंकि वही समाज की उज्ज्वल भावष्य की कल्पना कर सकता है, समाज को उजाले की ओर ले जा सकता है । लेकिन जब स्वयं साहित्यकार राजनीतिज्ञ बन जायेगा तब कठिनाईयाँ उत्पन्न होगी । जैसे दिनकर के शब्दों में "राजनीति की गहराई में जाने के

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 113
2. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 57

लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है उनमें से अनेक ऐसे हैं जिनका कलाकार के मौलिक गुणों से प्रत्यक्ष विरोध है ।"[1] दिनकर के मत में साहित्य राजनीति की अनुचरता स्वीकार करके मनुष्य को कल्पना कभी नहीं कर सकता । साहित्य की रोशनी में मनुष्य भविष्य की राह देखते हैं । लेकिन आजकल विज्ञान और राजनीति ने साहित्य को क्षति पहुँचायी है जिससे साहित्य की शोभा कुछ घट रही है । "विज्ञान और राजनीति ने मिलकर एक ऐसी अवस्था पैदा कर दी है जिसमें साहित्य के पौधे उपेक्षित और म्लान होते जा रहे हैं ।"[2]

साहित्य जीवन के साथ विकसित होता आया था । लेकिन विज्ञान के आगमन से यह स्थिति बदलने लगी । विज्ञान की प्रगति ज्यों-ज्यों होती रही त्यों-त्यों विज्ञान और साहित्य का संबंध खराब होने लगा । दिनकर के शब्दों में - "जब संसार में टेकनॉलाजी का प्रचार बढा, धर्म और कविता दोनों के उत्स पर से मनुष्य की आँख हट गई ।"[3] अब विज्ञानवालों ने साहित्य से आँखें फेर ली हैं । विज्ञान के अभ्युत्थान के साथ उपयोगितावाद और बुद्धि का ज़ोर बेतरह बढ गया और लोगों ने धर्म और साहित्य को अनुपयोगी समझकर छोड दिया । ऐसी स्थिति में साहित्य को विज्ञान से आँखें मत फेरनी चाहिए । नहीं तो संसार का बडा नुक्सान होगा । दिनकर की दृष्टि में विज्ञान को भी आत्मसात् कर साहित्य को आगे बढना ही चाहिए ।

"महाकाव्य में सत्य और कल्पना" नामक निबंध में दिनकर ने साहित्य और इतिहास का भेद समझाने का प्रयास किया है । साहित्य का भी अपना इतिहास होता है लेकिन साहित्य और इतिहास दोनों बिलकुल

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 16
2. अर्धनारीश्वर - दिनकर - पृ. 100
3. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 60

भिन्न हैं । "कवि और इतिहासकार के उद्देश्य भिन्न होते हैं । कवि की दिलचस्पी घटना-विशेष में न होकर मनुष्य मात्र के संपूर्ण इतिहास, उसकी समग्र नियति में होती है । इसलिए वह एक घटना के दीपक के द्वारा सभी मनुष्यों की नियति पर विचार करता है । किन्तु इतिहासकार की सारी दिलचस्पी घटना विशेष तक सीमित रहती है, व्यक्ति-विशेष के आचरणों से बँधी रहती है ।"[1]

साहित्यकार के लिए कल्पना सर्वस्व है । लेकिन इतिहासकार इसका उपयोग केवल सीमित क्षेत्र में कर सकता है । इतिहास और साहित्य के भेद को अधिक सुस्पष्ट करते हुए दिनकर लिखते हैं - "इतिहास लेखक और कलाकार के बीच एक यह भी भेद है कि इतिहास-लेखक यदि कला की ऊँचाई तक उठ भी जाय तो प्राचीन युग के मृत कंकाल को जीवित बनाने के सिवा वह कुछ और नहीं कर सकता । अतीत से आगे बढकर वर्तमान को छूने का अधिकार उसे सुलभ नहीं । कवि जब किसी प्राचीन कथा को उठाता है, तब भी उसका ध्येय अतीत को जीवित करना नहीं, वर्तमान को ही उद्भासित करना होता है ।"[2]

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के विचारों का गंभीर प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पडा है । दिनकर भी गाँधीजी के विराट व्यक्तित्व से आकर्षित हुए थे । यह देखकर दिनकर निराश एवं दुःखी है कि गाँधी जी के बाद समाज में गाँधीजी के आदर्शों की उपेक्षा-सी हो रही है । लेकिन दिनकर इस बात पर गर्व करते हैं कि साहित्य में अब भी गाँधीजी जीवित है । "जो गाँधी मानवता का गाँधी है, जो गाँधी यंत्र-सभ्यता को चुनौती और गुज़री

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 127
2. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 127

हुई संस्कृति के आंशिक प्रत्यावर्तन की आस है, वह भारत में कहीं जीवित हैं तो वह साहित्य में ही है ।"[1] हिन्दी साहित्य पर गाँधीजी का प्रभाव दिनकर माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, प्रेमचन्द, सियाराम गुप्त जैसे साहित्यकारों की रचनाओं पर पडे देखते हैं । दिनकर का विचार है कि छायावादी कवियों पर गाँधीजी का कोई प्रभाव नहीं पडा है । गाँधीजी के विराट व्यक्तित्व का आदर करनेवाले दिनकर उनके अहिंसा-सिद्धान्त का उतना आदर करते नहीं दीखते । "हिंसा-अहिंसा की समस्या मनुष्य-जाति की सबसे जटिल समस्या है जिसका कोई भी सीधा समाधान नहीं है । कभी कभी अहिंसा की रक्षा भी हिंसा के बिना नहीं की जा सकती है ।"[2]

दिनकर साहित्य के विकास के लिए अनुवाद कार्य की अनिवार्यता स्वीकार करते थे । अनुवाद कला की कठिनाई पर दिनकर ने अपना विचार "इलियट का हिन्दी अनुवाद" नामक निबंध में व्यक्त किया है । वास्तव में यह लेख उन प्रकाशकों को बधाई देने के लिए लिखा गया था जिन्होंने इलियट की कविताओं का अनुवाद प्रकाशित किया था । फिर भी उसमें अनुवाद संबंधी दिनकर के विचारों की अभिव्यक्ति भी हुई है । दिनकर के शब्दों में "कविता के अनुवाद का काम तो यों ही महा भयानक काम है । जो मूल का आनन्द ले सकता है, वह कविता के अनुवाद को देखकर बराबर नाक-भौं सिकोड लेता है ; और जो केवल अनुवाद पढता है, वह भी मुँह बिचकाकर बोल उठता है, अच्छा ये ही हैं जिनका उतना नाम सुना था ।"[3]

---

1. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 86
2. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 93
3. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 79

अमर के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दिनकर ने अपने साहित्यिक निबंधों में साहित्य से संबंधित अनेक बातों का सम्यक् विवेचन किया है । सरल भाषा, आकर्षक शैली एवं अभिव्यक्त विचारों के गांभीर्य के कारण ये निबंध दिनकर की निबंधकला के उत्तम नमूने सिद्ध हुए हैं ।

2. सामाजिक निबंध

प्रत्येक निबंधकार अपने युग से प्रभावित होता है । वह अपनी समसामयिक परिस्थितियों से जागरूक रहता है । फलस्वरूप समाज के उत्थान के लिए अनेक सामाजिक कुरीतियों के प्रति आक्रोश का भाव उसकी रचनाओं में प्रतिफलित होने लगता है । समाज विषयक निबंध सामाजिक कुरीतियों के प्रति आक्रोश का क्रिया रूप प्रयास है । दिनकर जीवनोन्मुखी व जीवनधर्मी कलाकार हैं । साहित्य और समाज का वे निकट संबंध मानते हैं । अतः उन्होंने आधुनिक समाज की अनेक समस्याओं को अपने निबंधों का विषय बनाया, समस्याओं का दिग्दर्शन किया और उनका समाधान करने का सराहनीय प्रयास भी किया । दिनकर सामाजिक समस्याओं के प्रति कभी उदासीन न रह सके । उन्होंने समाज, सभ्यता, समाज की मनोदशा का परिवर्तन, विवाह, प्रेम और काम, मानवीय मूल्य, यांत्रिकी जीवन और विज्ञान, धर्म और नैतिकता, युद्ध और शांति की समस्या, परंपरा और आधुनिकता आदि अनेक बिन्दुओं को निबंधों का विषय बनाया । उनके सामाजिक निबंधों में भारतीय समाज के उन विराट्-संदर्भों का सूक्ष्म आकलन है जो समाज के भविष्यगत उत्कर्ष के महत्वपूर्ण समायोजक तत्त्व बन सकते हैं । उनके समाज चिंतन में नवीन संदर्भों में अतीत की व्याख्या का प्रयत्न है । उनमें वैज्ञानिक व प्रगतिशील दृष्टियों का उन्मेष भी दिखाई पडता है । यहाँ हम दिनकर के उन निबंधों का अध्ययन करेंगे जिनमें सामाजिक समस्याओं के प्रति उनकी मानसिक सजगता का परिचय मिलता है ।

दिनकर के सामाजिक निबंधों में प्रमुख हैं - कबीर के स्वप्न, नेता नहीं नागरिक चाहिए, अर्धनारीश्वर, शांति की समस्या, आदर्श मानव राम, कबीर साहब से भेंट, गाँधी से मार्क्स की परिष्कृति, विवाह की मुसीबतें, प्रेम एक हैं या दो, काम चिंतन की कणिकायें, लोकतंत्र कुछ विचार, मूल्य ह्रास के पच्चीस वर्ष, युद्ध और कविता, विजयों के आँसू, लेखक की दृष्टि में नारी, वीरता की परंपरा और गाँधी मार्ग आदि । इनके अतिरिक्त दिनकर के अनेक साहित्यिक निबंधों में भी उनकी समाज संबंधी मान्यताओं की अभिव्यक्ति हुई है ।

दिनकर ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज का यथार्थ चित्र अपने निबंधों में प्रस्तुत किया है । वर्तमान समाज जीर्ण, जटिल और अस्तव्यस्त है । दिनकर ने पतनोन्मुख समाज का चित्र खींचते हुए समाज में सुधार लाने का प्रयास किया है । वर्तमान युग में धर्म और आध्यात्मिकता का स्थान विज्ञान ने ग्रहण किया है । आधुनिक युग में विज्ञान का इतना गहरा प्रभाव पडा है कि सामाजिक मूल्यों में बडा भारी परिवर्तन आ गया है । दिनकर की दृष्टि में धर्म और विज्ञान के बीच समन्वय हुए बिना समाज का सुधार संभव नहीं है ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत ने प्रजातंत्र को अपना लिया है । दिनकर के विचार में संसार में शासन की जितनी भी प्रणालियाँ प्रचलित हैं, लोकतंत्र की प्रणाली उनमें सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि उसका मूलाधार अहिंसा है । प्रजातंत्र के सही उपयोग से जनता का कल्याण हो सकता है । लेकिन हमारे देश की असली स्थिति क्या है ? नेता और लोग सब आलसी, स्वार्थी एवं धर्मभीरू बन गये हैं । गाँधी जी के बाद हमारे राष्ट्रीय चरित्र में गिरावट शुरू हुई है और वह इस हद तक पहुँच गयी है कि उससे दुर्गंध आने लगती है । गाँधीजी के समान आज के नेता

भी सत्य एवं अहिंसा की दुहाई देते फिरते हैं । लेकिन उनके आचरण इन आदर्शों के बिलकुल विरुद्ध हैं । दिनकर के शब्दों में "अहिंसा की दुहाई आज के भी नेता देते फिरते हैं, लेकिन सत्य के बारे में बोलकर उन्होंने छोड दिया क्योंकि अब अगर वे जनता के बीच खडे होकर सत्य की महिमा का बखाना करें तो उनका अपना आचरण (जो किसी से छिपा नहीं है) गरज-गरज कर उनके व्याख्यान का खंडन करेगा ।"[1] एक अन्य स्थान पर दिनकर ने आजकल के नेताओं पर कटु व्यंग्य किया है - "वे काम करना नहीं जानते और जो काम करना जानते हैं उन्हें हाथ-पाँव हिलाने की अपेक्षा जीभ की कैंची चलाने में ही अधिक आनंद आता है ।"[2] अर्थात् आज कल श्रम का महत्व माननेवाले नेता लोग समाज में बहुत कम दिखाई पडते हैं । कोई सन्देह नहीं, नेतरगिरि के लोभ ने आज मनुष्य को पतित बना दिया है । नेतागिरि पर व्यंग्य करते समय दिनकर ने इस बात का ओर भी संकेत किया है कि सच्चा नेता कौन होता है ? "अक्सर वह मनुष्य जो उन मूल्यों को अपने चरित्र और व्यक्तित्व में व्यावहारिक रूप देता है जिन मूल्यों की समाज में ज़रूरत होती है ।"[3] दूसरे शब्दों में "मनुष्यता के नेता वे है जो कष्ट सहकर आगे बढते हैं, जो अपने आचरणों का उदाहरण उपस्थित करके लोगों के भीतर सोये हुए संगीत को जागृत कर देते हैं ।"[4] दिनकर यहाँ स्पष्ट करना चाहते हैं कि समाज का सुधार वे लोग कर सकेंगे जो अपने आचरणों से लोगों में विश्वास, धैर्य, कर्मण्यता और मानवता का संगीत जगा सकते हैं ।

समाज के पतन का उत्तरदायी समाज के सदस्य भी हैं । मनुष्य

---

1. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 83-84
2. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 102
3. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 110
4. वट पीपल - दिनकर - पृ. 117

जब आलसी एवं धर्मभीरू होते हैं तब समाज में अत्याचार बढ़ते हैं । सामाजिक विषमताओं का असली दुर्ग मनुष्य के मन में अवस्थित है । सामाजिक विषमताओं का मूल कारण बताते हुए दिनकर ने कहा है - "सामाजिक विषमताओं के मूल में मनुष्य का अहंकार निवास करता है । जाति का अहंकार, वंश का अहंकार, धन और शक्ति का अहंकार, सिद्धि और सफलता का अहंकार । ये सभी अहंकार विभाजन रेखाएँ हैं, जो मनुष्य को मनुष्य से अलग करती हैं ।"[1] मनुष्य के इस अहंकार को मिटाये बिना समाज-सुधार संभव नहीं है । दिनकर सामाजिक समता के संदेशवाहक हैं । उनका विचार है कि हर एक आदमी को श्रम का महत्व समझना चाहिए और अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए । अवसर की प्रतीक्षा किये बिना समता के स्वप्न देखते रहना मूर्खता है । "सब लोग आपस में बराबर है, इस बात का लोगों ने गलत अर्थ लिया है । इसका मामूली अर्थ यह है कि सबको विकास का समान अवसर मिलना चाहिए, यह नहीं कि अवसर की प्रतीक्षा किये बिना जो जहाँ चाहे, वहाँ इच्छा मात्र से पहुँच जाय ।"[2] दिनकर लोगों को अलसता को छोड़कर कर्म पथ पर अग्रसर होने का संदेश देना चाहते हैं । इस प्रसंग में श्रेष्ठ समाज के स्वरूप संबंधी दिनकर की धारणाओं का उल्लेख करना उचित लगता है । दिनकर ने एक ऐसे समाज की कल्पना की है जिसमें कर्म और ज्ञान का महत्व बराबर हो । "श्रेष्ठ समाज वही है जिसके सदस्य ज्ञान और कर्म में से एक को श्रेष्ठ और दूसरे को अधम नहीं मानते । श्रेष्ठ समाज वह है जिसके सदस्य भी खोलकर श्रम करते हैं । और तब भी ज़रूरत से अधिक धन पर अधिकार जमाने की उनकी इच्छा नहीं होती ।"[3] इस कथन का यह अर्थ भी

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 41
2. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 164
3. वेणुवन - दिनकर - पृ. 43

निकलता है कि हर एक व्यक्ति को अपने वैयक्तिक विकास के लिए श्रम करना ही चाहिए, लेकिन इस बात पर ध्यान रखना है कि आगे बढने की कोशिश में कहीं वह उन मूल्यों को नहीं कुचल रहा है, जो मनुष्य के वैयक्तिक विकास के कई गुणा अधिक मूल्यवान है ।

वर्तमान समाज का विकृत चेहरा देखकर दिनकर दुःखी हो जाते हैं । लेकिन वे आशा नहीं छोडते । दिनकर के विचार में उन लोगों की वृत्ति में परिष्कार होने से समाज का सुधार संभव हो सकता है जो समाज का नियंत्रण कर रहा है । दिनकर के शब्दों में "देश की जो हालत मुझे दिखलायी पडती है वह अच्छी नहीं, बहुत ही खराब है । टेक्नोक्राटों, मैनेजरों, मंत्रियों और अफसरों की संख्या बडी होने से देश बडा नहीं होता । बडा वह तब होता है, जब ये लोग जनता की सुख-समृद्धि के लिए अपनी वैयक्तिक सुख-समृद्धि को छोडने को तैयार हो ; जब ये लोग जनता की उन्नति के लिए उसी प्रकार अपने प्राणों की बाजी लगा दें, जैसी बाजी स्वराज्य संग्राम के योद्धाओं ने देश को स्वाधीन करने के लिए लगायी थी ।"[1] वर्तमान समाज में वैयक्तिक मानवीय संबंध खराब हो गया है । हृदय से हृदय को नापने की वृत्ति का लोप हो गया । हर आदमी के पास आज उपयोगितावाद का एक स्थूल गज मौजूद है जिससे वह शरीर ही नहीं, बल्कि आत्मा को भी नापने की कोशिश कर रहा है । दिनकर की दृष्टि में उपयोगितावाद के घेरे से मुक्त होना समाज-कल्याण के लिए परम आवश्यक है-" सहज जीने के लिए जितनी चीज़ों की ज़रूरत है, उतनी चीज़ें हमें तुरंत-से-तुरंत चाहिए और उसके बाद में कुछ नहीं चाहिए, इस आदर्श को अपनाये बिना भारत का कल्याण नहीं है और ध्येय से आगे जाना उसके लिए संभव भी नहीं है ।"[2]

---

1. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 88
2. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 85

स्वाधीन भारत में स्वाधीनता की रक्षा और पालन आज स्वाधीनता प्रक्रिया से भी कठिन महसूस हो रहा है । आज़ादी की रक्षा के लिए एक नवीन आदर्श समाज की स्थापना की ज़रूरत है । दिनकर ने अपने निबंधों में एक आदर्श समाज की कल्पना की है । उन्होंने मार्क्स और गाँधीजी के सिद्धांतों की चर्चा करते हुए यह निर्णय निकाला है कि गाँधीवाद पर आधारित प्रजातंत्र ही भारत के लिए अधिक उपयोगी होगा । मार्क्स और गाँधीजी के विचारों में बड़ी समानता है । दोनों ने गरीबी की सत्ता को स्वीकार किया था । उन्होंने यह भी मान लिया था कि ऊँची मनुष्यता के स्तर पर पहुँचने पर मनुष्य को सामाजिक न्याय की अनिवार्यता सिखाने के लिए अंकुश की आवश्यकता नहीं होगी । दोनों मानवप्रेमी विचारकों ने पूँजी को दूसरों के लिए बाँट देने का संदेश भी दिया है । गाँधीजी और मार्क्स के चिंतन में मूल अन्तर इस बात को लेकर है कि व्यक्ति को प्रमुखता देनी चाहिए या समाज को । गाँधी जी की कल्पना का समाज इकाइयों का समाज है । उसमें प्रधानता समूह की नहीं, बल्कि व्यक्ति की है । लेकिन मार्क्स की दृष्टि में समाज ही सर्वप्रमुख है । गाँधीजी व्यक्ति को स्वावलंबी और स्वाधीन रखना चाहते हैं । मार्क्स पहले लोगों को शासन के नीचे रहने का उपदेश देते हैं । गाँधीजी और मार्क्स दोनों का अन्तिम लक्ष्य शासनहीन समाज है । दिनकर इनमें से गाँधीजी के मार्ग को अधिक उचित और स्वाभाविक मानते हैं । अपने इस विचार की पुष्टि में दिनकर ने लिखा है - "समाज के पापी होने का अर्थ उसके सदस्यों का ही पापी होना है और अगर हम समाज को सुधारना चाहते हैं तो इसका स्पष्ट उपाय उसके व्यक्तियों में ही सुधार लाना है ।"[1] या "इसलिए उचित यही है कि समाज की जिन कुरीतियों से हमारी नाराज़ी है, उन्हें सबसे पहले हम स्वयं छोड दें और जिन मूल्यों को हम समाज में लाना चाहते हैं उन्हें भी अपने वैयक्तिक जीवन में सबसे

---

1. अर्धनारीश्वर - दिनकर - पृ. 108

पहले हमीं बरतना शुरू करें । समाज को योग्य नागरिकों की ज़रूरत है, नेताओं की नहीं ।"[1] एक नये समाज के निर्माण का अर्थ है संस्कृति या परिवर्तन या रूपान्तरित होने की प्रवृत्ति । दिनकर इस प्रवृत्ति को क्रान्ति ही मानते हैं । लेकिन उनकी दृष्टि में क्रान्ति की प्रक्रिया दमन और निर्दलन नहीं प्रत्युत मूल्यों में परिवर्तन है । दिनकर के अनुसार मार्क्सवादी क्रान्ति की अपेक्षा मूल्यों में परिवर्तन की स्वाभाविक प्रवृत्ति ही अधिक दीर्घायु हो सकती है ।

दिनकर का विचार है कि भारत को उन आदर्शों को लेकर आगे बढना है जिसकी स्थापना राजा राममोहन और विवेकानन्द गढ चुके थे, गाँधीजी ने जिसमें प्राण प्रतिष्ठा की है, अरविन्द और रवीन्द्र नाथ ने जिसकी प्रशंसा की है । विश्व के सामने हमें उस आदर्श को सुस्पष्ट करना चाहिए । हमें नये भारत का निर्माण हमारी संस्कृति और परंपरा के अनुकूल करना चाहिए दिनकर का विश्वास है कि नया भारत विश्व के सामने एक श्रेष्ठ आदर्श बनकर प्रशोभित होगा - "भारत जिस साधना में लगा हुआ है यदि वह सफल हुई तो विश्व के सामने एक दिन हम वह समाज उपस्थित कर सकेंगे जिसका केवल ढाँचा ही आदर्श नहीं होगा, प्रत्युत जिसके व्यक्ति भी आदर्श होंगे । यूरोप में साधन और साध्य दो अलग वस्तुएँ हैं । किन्तु अपने इतिहास और गाँधीजी की शिक्षा से भारतवर्ष में हम यह मानकर चल रहे हैं कि साधन और साध्य, ये एक ही वस्तु के दो नाम है ।"[2] प्रस्तुत कथन में समाज-रचना संबंधी दिनकर के मौलिक विचार हम देख सकते हैं ।

---

1. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 110
2. देणुवन - दिनकर - पृ. 57

दिनकर ने अपने कुछ निबंधों में युद्ध और शांति की समस्या पर भी विचार किया है । दिनकर युद्ध के कट्टर विरोधी और विश्वशांति के समर्थक हैं । उनके मत में युद्ध कभी धर्म के पथ पर रहकर लडा नहीं जा सकता । युद्ध चाहे कितने ही महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लडा हुआ हो तो भी उसका महत्व स्वीकार नहीं कर सकते । "युद्ध कभी भी धर्म के पथ पर रहकर लडा नहीं जा सकता । हिंसा का आदि भी अधर्म है, मध्य भी अधर्म है और अन्त भी अधर्म है । × × × जीवन की सार्थकता किसी ध्येय की प्राप्ति में नहीं, उसकी ओर निरंतर सन्मार्ग पर चलते रहने में हैं । हमारे पाँव कहाँ पहुँच रहे हैं, यह प्रश्न मुख्य नहीं हो सकता ; मुख्य बात तो यही है कि हमारे पाँव किस मार्ग पर पड रहे हैं । और अगर यह कहिए कि विजय के लिए युद्ध अवश्यंभावी है तो वि य को मैं कोई बडा ध्येय नहीं मान सकता ।"[1] युद्ध में प्रवृत्त होने का अर्थ है कि मनुष्य अपने रागों का दास बन गया है । जो रागों का दास बन गया है वह उनका नियंत्रण नहीं कर सकता । इसलिए दिनकर युद्ध के मार्ग को अप्रधान और अनावश्यक मानते हैं ।

शांति की मुख्य समस्या पर दिनकर ने अपने विचार यों प्रकट किये हैं - "शांति की मुख्य समस्या भोगवादी वृत्ति है, मुख्य बाधा मनुष्य की असहिष्णुता है, मुख्य बाधा मनुष्य में मानसिक हिंसा का यह भाव है कि संसार का कल्याण केवल उस मार्ग पर चलने में है जिस पर मैं चल रहा हूँ । शान्त के अवतरित होने के पूर्व मनुष्य में मानसिक अथवा बौद्धिक अहिंसा का उदय होना चाहिए ।"[2] शांति की स्थापना कौन करेगा ? इस बात पर विचार करते हुए दिनकर ने कहा है कि युद्ध और संघर्ष से डरनेवाले आदमी शांति-स्थापना

---

1. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 50-51
2. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 11

नहीं कर सकेंगे । जिस मनुष्य में साहस है, जिसमें बौद्धिक अहिंसा या मानसिक उदारता का भाव है वही इस कार्य में समर्थ निकलेगा । "युद्ध से डरनेवाले लोग शांति-स्थापना में हमेशा असमर्थ रहे हैं । शांति की रक्षा आज भी वे लोग कर रहे हैं और आगे भी वे ही लोग करेंगे जो युद्धों से नहीं डरते, मगर युद्ध रोकने को तैयार है । आदर्श मनुष्य की सबसे समीचीन कल्पना यह है कि उसे शरीर से बर्बर और मन से साधु होना चाहिए । लेकिन शांति-स्थापना में जितनी बाधा बर्बरों की असाधुता से पड़ी है, साधुओं की निर्वीर्यता उससे कम गुनहगार नहीं है ।"[1]

शांति-स्थापना की मुख्य बाधा पर प्रकाश डालते हुए दिनकर ने कहा है कि "सच्चा भेद पूर्व और पश्चिम का नहीं, सूक्ष्म और स्थूल मनुष्य का है, आधिभौतिक और आध्यात्मिक मानव का है, चिंतनशील (रेफ्लेक्टिव) और कार्यकारी (एक्सेक्यूटिव) व्यक्तित्व का है ।"[2] वर्तमान समाज ने प्रवृत्ति के मार्ग को स्वीकार किया है । निवृत्ति के मार्ग की प्रायः उपेक्षा-सी की गई है । यह तो सच है कि प्रवृत्ति के अनेक गुण हैं । लेकिन निवृत्ति को धारण किये बिना संसार में शांति नहीं होगी । दिनकर के शब्दों में - "प्रवृत्ति की गाढ़ी-कड़वी स्याही से शान्ति की कविता नहीं लिखी जा सकती । शान्ति की कविता लिखने के लिए निवृत्ति का पतला पानी मिलाया जाना चाहिए ।"[3] दिनकर की दृष्टि में ज्ञान और कर्म, बुद्धिवाद एवं आध्यात्मिकता और हृदय एवं मस्तिष्क के समन्वय से ही शांति की स्थापना हो सकती है ।

---

1. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 157
2. वेणुवन - दिनकर - पृ. 104
3. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 11

शांति का मार्ग समझौते का मार्ग है, सहिष्णुता का मार्ग है, सह-अस्तित्व का मार्ग है ।

अपने चिंतन के अगले स्तर पर दिनकर ने परिवार के मूल उत्स नर-नारी संबंध पर विचार किया है । नारी संबंधी मान्यताओं में दिनकर बिलकुल आधुनिक दिखायी पड़ते हैं । भारतीय समाज में मध्यकालीन परिस्थितियों ने स्त्रियों की दशा को बहुत दयनीय स्थिति तक पहुँचाया है । दिनकर के मत में आधुनिक भारत का उत्थान तब तक संभव नहीं जब तक स्त्री-जाति का उद्धार न किया जाय । नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण आदर और सम्मान का रहा है । दिनकर ने नारी की पराधीनता का जो संक्षिप्त इतिहास लिखा है वह बहुत ही आकर्षक है । "नारी की पराधीनता तब आरंभ हुई जब मानव जाति ने कृषि का आविष्कार किया जिसके चलते नारी घर में और पुरुष बाहर रहने लगा । यहाँ से ज़िन्दगी दो टुकड़ों में बँट गयी । घर का जीवन सीमित और बाहर का जीवन निस्सीम हो गया एवं छोटी ज़िन्दगी बड़ी ज़िन्दगी के अधिकाधिक अधीन होती चली गयी । नारी की पराधीनता का यही संक्षिप्त इतिहास है ।"[1] इसके साथ ही साथ दिनकर ने यह भी बताया है कि नारी की पद मर्यादा प्रवृत्ति मार्ग के प्रचार से उठती और निवृत्ति मार्ग के प्रचार से गिरती रही है ।

दिनकर नारी को न देवी समझते हैं और न भोग्या । वे नारी को एक सामान्य मानव समझते हैं । वे नर और नारी को एक दूसरे का पूरक नहीं मानते । उनके विचार में नर और नारी को परस्पर समानता से

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 3

मिलकर काम करना चाहिए । "नर और नारी दोनों स्वतंत्र, दोनों समान और दोनों अपनी अपनी राह पर हैं । नर और नारी को परस्पर उसी समानता से मिलने और मिलकर काम करने का अधिकार है जैसे दो स्वतंत्र राष्ट्र परस्पर मिलते और मिलकर काम करते हैं ।"[1] दिनकर स्वतंत्र प्राकृतिक जीवन के आधार पर नर नारी के सह-अस्तित्व में विश्वास करते थे । नारी के अस्तित्व को स्वीकृति देते हुए दिनकर ने एक स्थान पर कहा है - "नारी केवल नर को रिझाने अथवा उसे प्रेरणा देने को नहीं बनी है । जीवन-यज्ञ में उसका भी अपना हिस्सा है और वह घर तक ही सीमित नहीं, बाहर भी है । जिसे भी पुरुष अपना कर्मक्षेत्र मानता है, वह नारी का भी कर्मक्षेत्र है । नर और नारी दोनों का जीवनोद्देश्य एक है ।"[2]

नर-नारी संबंधों का विश्लेषण करते समय दिनकर को शिव और पार्वती का कल्पित रूप "अर्धनारीश्वर" बहुत प्रिय लगता है । उस कल्पित रूप में आधा अंश पुरुष का और आधा अंश स्त्री का है । दिनकर ने इस कल्पित रूप की सम्पूर्ण व्याक्तियों की खोज की है । "यह कल्पना शिव और शक्ति के बीच पूर्ण समन्वय दिखाने को निकाली गयी होगी किन्तु उसकी सारी व्याप्तियाँ वहाँ तक नहीं रुकती । नर-नारी पूर्ण रूप से समान है एवं उनमें से एक के गुण दूसरे के दोष नहीं हो सकते ।"[3] दिनकर के अनुसार पुरुष के भीतर नारी की ज्योति जगनी चाहिए और प्रत्येक नारी में पौरुष का स्पष्ट आभास होनी चाहिए । नारी की समस्याओं का अंत तभी होगा जब वह स्वतंत्र होगी ।

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 76
2. वेणुवन - दिनकर - पृ. 8
3. वेणुवन - दिनकर - पृ. 1

नर-नारी संबंधों की समस्याओं का परिहार तभी होगा जब दोनों में एक दूसरे के गुणों को आत्मसात् करने की शक्ति होगी ।

दिनकर ने कुछ निबंधों में वैवाहिक जीवन, प्रेम और काम की चर्चा की है । दाम्पत्य जीवन की मुसीबतों की चर्चा करते हुए दिनकर ने बताया है कि विवाह की उलझनें समाज में आमूल परिवर्तन लाने से ही सुलझेंगे । समाज रचना का दोष यह है कि उसमें निर्माण का सारा काम पुरुषों के हाथ में है । स्त्री के काम-काज के महत्व की चर्चा समाज में नहीं होती । "विवाह की उलझनें केवल काम कला के विकास से नहीं, समाज में आमूल परिवर्तन से सुलझेंगे, या संभव है कि विवाह की गुत्थियाँ कभी सुलझें ही नहीं ।"[1] स्त्री और पुरुष के स्वभाव में जो अंतर है वह भी विवाह की उलझनों का कारण बन जाता है । मर्द नवीनता के इच्छुक हैं और नारी बंधा जीवन पसंद करती हैं । नारी हमेशा मर्द को अपनी गोद में बिठाना चाहती है, सदैव अपने घर में पति के साथ रहना चाहती है । लेकिन पुरुष मुक्त वातावरण चाहते हैं । वैवाहिक जीवन के आरंभिक दिनों में जो सुख और संतोष अनुभव करते हैं, वे धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं । मर्द के स्वभाव में आनेवाला परिवर्तन इसका कारण हैं । दिनकर के शब्दों में "प्रेम के तूफान में पडकर कुछ दिनों के लिए चाहे जितनी भी भावुकता दिखा ले, किन्तु भावुकता का स्थान उसके जीवन में अपेक्षाकृत कम है । उसके चारों ओर कर्म का आह्वान गूँजता है और इस आह्वान को अनसुना करके कोई भी पुरुष सुखी नहीं हो सकता ।"[2] पुराने ज़माने में नारी केवल अपने घर के काम काज संभालती थी । लेकिन सभ्यता के विकास के कारण धीरे धीरे उसको यह बोध होने लगा कि पुरुष के समान समाज पर उनका भी अपना अधिकार है ।

---

1. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 3
2. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 3

इससे वैवाहिक कठिनाईयों की भीषणता बढने लगी है । अपनी इस बात का समर्थन करते हुए दिनकर ने लिखा है - "वैवाहिक कठिनाईयों की भीषणता असल में वहाँ सबसे अधिक है जहाँ शिक्षा, संस्कृति, चिंतन और एक हद तक धन का प्राचुर्य है । जिन देवियों को भाग्य ने उस ऊँचे धरातल पर आसीन किया है, वैवाहिक व्यथा का दु:खदायी दंश सबसे अधिक वे ही जानते हैं ।"[1] विवाह की मुसीबतों से संबंधित दिनकर के विचारों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि विवाह की गुत्थियों को सुलझाना आसान नहीं है । उसके लिए समाज में आमूल परिवर्तन लाना आवश्यक है । नर और नारी को अपने विचारों में समझौता करने की ज़रूरत है ।

प्रेम और काम से संबंधित दिनकर के निबंध बडे महत्व के हैं । बदली हुई परिस्थितियों में काम का उचित संबंध क्या है, इसका अनुसंधान करना इन निबंधों का लक्ष्य है । प्रेम और काम के बीच एक विभाजन रेखा खींचना आसान नहीं है । दिनकर के शब्दों में "प्रेम और काम एक नहीं है, किन्तु उन्हें दो करके देखना अत्यन्त दुष्कर कार्य है ।"[2] फिर भी दिनकर ने दो एक जगह पर प्रेम और काम के बीच विभाजन रेखा खींचने का प्रयास किया है । जैसे "प्रेम हमारे संपूर्ण अस्तित्व का बलिदान है । प्रेम का सबसे बडा कार्य पाने में नहीं, देने में हैं । और यहीं वासना प्रेम से भिन्न हो जाती है ।"[3] या "सेक्स की अनुभूति शारीरिक अनुभूति होती है । प्रेम की अनुभूति में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक - तीनों अनुभूतियाँ समन्वित रहती है ।"[4] लेकिन

---

1. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 1
2. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 16
3. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 16
4. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 26

कभी कभी दिनकर प्रेम और काम को एक मानते हुए उसका संबंध अध्यात्म से जोड देता है । उनके मत में प्रेम या काम का आरंभ भौतिकता में और परिपाक अध्यात्म में हैं । "मनुष्य की काम भावना केवल शरीर को ही नहीं, मन और आत्मा को भी आन्दोलित करती है । काम जब मन और आत्मा के धरातल पर पहुँचता है, तब उसके भीतर रहस्यपूर्ण अर्थों का समावेश होने लगता है । प्रेम प्रजनन भी है और मानसोल्लास भी । प्रेम सामाजिक कृत्य भी है और रहस्यवाद भी ।"[1] प्रेम या काम की बीसवीं सदी की धारणा को दिनकर अधिक श्रेष्ठ मानते हैं । लेकिन प्रेम का सस्ता हो जाना उनकी दृष्टि में सराहनीय कार्य नहीं है ।

धर्म, नैतिकता, विज्ञान, शिक्षा और संस्कृति से संबंधित निबंधों में भी दिनकर के सामाजिक चिंतन प्रतिफलित हुए हैं । लेकिन उन निबंधों की चर्चा हमने अलग की है । इसलिए यहाँ सिर्फ यह संकेत देना चाहते हैं कि दिनकर समाज से संबंधित सभी प्रश्नों को अपने निबंधों का विषय बनाया है । दिनकर के सामाजिक निबंधों की मूल चेतना में एक ओर उनके भारतीय संस्कारों के आदर्शवाद की कल्पना है तो दूसरी ओर सामाजिक कर्तव्य के प्रति जागरूकता है । दूसरे शब्दों में परंपरागत भारतीय संस्कार के साथ आधुनिक युग-बोध के मिश्रण से निर्मित एक नवीन जीवन दर्शन लेकर दिनकर ने सामाजिक समस्याओं पर विचार किया है ।

3. धर्म, नैतिकता और विज्ञान से संबंधित निबंध

दिनकर ईश्वर की व्यक्त सत्ता में विश्वास रखते हैं । वे आस्थावादी हैं । लेकिन उनके धर्म संबंधी विचार रूढ एवं परंपरायुक्त नहीं है ।

---

1. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 13

उनके धर्म संबंधी विचारों में स्वतंत्र विवेचन की स्पष्ट छाप है । उन्होंने जगह-जगह पर धर्म संप्रदाय की संकीर्ण मान्यताओं की चोट की है और उसे युगानुकूल संदर्भ में विश्लेषित किया है । हिन्दु होने पर भी दिनकर ने बौद्ध, ईसाई और इस्लाम, जैन मजहबों पर विचार किया है । वे धर्मनिरपेक्षता का सही अर्थ में समर्थक हैं ।

दिनकर की दृष्टि में धर्म का महत्व निर्विवाद है क्योंकि वह मनुष्य का स्वाभाविक गुण है । समाज में धर्म की प्रतिष्ठा करने का आग्रह उनके शब्दों में है । "धर्म संपूर्ण जीवन की पद्धति है । धर्म जीवन का स्वभाव है । ऐसा नहीं हो सकता कि हम कुछ कार्य तो धर्म की मौजूदगी में करें और बाकी कामों के समय उसे भूल जायें । धर्म, ज्ञान और विश्वास में नहीं, कर्म और आचरण में है ।"[1] या "ईश्वर रहें या न रहें किन्तु मनुष्य के जीवन में धर्म का आवास रहना ही चाहिए । धर्म कोमलता है, धर्म दया है, धर्म विश्वबन्धुत्व और शांति है ।"[2] धर्म एवं भक्तिसाधना को समाज-सुधार के कार्य में बाधा समझनेवाले लोगों से दिनकर का कहना है कि भक्ति साधना एवं समाज-सुधार परस्पर विरोधी कार्य नहीं है । "यदि तुम्हारी सेवा-भावना निष्काम है तो तुम समाज-सेवी होते हुए भी भक्त हो । इसके विपरीत, भक्त होने पर भी यदि वासना तुम्हारा पीछा नहीं छोडती तो तुम साधारण संसारी जीव हो ।"[3] अर्थात् देखने की बात यह है कि व्यक्ति समाज-सेवा या भक्ति किस भाव से करते हैं । मुख्य बात यह नहीं कि वह समाज सेवी हो या भक्त ?

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 45
2. वेणुवन - दिनकर - पृ. 13
3. वेणुवन - दिनकर - पृ. 40

समाज में धर्म-साधना की शिक्षा की जरूरत दिनकर महसूस करते हैं - "एक बात याद रखो कि प्रवृत्ति की ज्वाला भटकाए रखने से मनुष्य संयम का त्याग नहीं करेगा । इसके लिए थोडी शिक्षा निवृत्ति की भी मिलनी चाहिए । प्रवृत्ति इसलिए कि मनुष्य डट कर काम करें । निवृत्ति इसलिए कि अपनी कमाई पर वह अपना एकाधिकार न जमायें ।"[1]

धर्म या आध्यात्मिकता की रूढ एवं परंपरायुक्त मान्यताओं से अलग होकर दिनकर ने धर्म साधना की व्याख्या की है - "अध्यात्म असत्य कल्पनाओं को नहीं कहते हैं । यह तो वस्तुओं की गहराई का नाम है, यह तो पदार्थों के उस अदृश्य पक्ष की संज्ञा है जिसे विज्ञान नापने में असमर्थ है । विद्या की कोई भी शाखा यहाँ तक कि पत्थर और खनिज का अध्ययन करनेवाला शास्त्र भी, जब विश्लेषण करते-करते वस्तु की गहराई में पहुँचता जाता है, तभी वह आध्यात्मिक हो उठता है ।"[2] धर्म का प्राचीन रूप निरादृत हो गया है । लेकिन बदली हुई परिस्थितियों में भी उसके भीतर का सत्य नये नारों में अपना सिर उठा रहा है । दिनकर इसको शुभ लक्षण मानते हैं । उनके अनुसार जीवन की सभी समस्याओं को हल करने की शक्ति विज्ञान में नहीं है । विज्ञान जहाँ पराजित होता है वहाँ हमें धर्म या अध्यात्म का सहारा लेना पडता है । विज्ञान की तुलना में धर्म को दिनकर अधिक श्रेष्ठ मानते हैं । "विज्ञान हमें केवल शक्ति दे सकता है । उससे यह याचना ही व्यर्थ है कि उस शक्ति का उपयोग हम किस उद्देश्य के लिए करें । उस उद्देश्य की रचना धर्म किया करता था और आज भी यह कार्य धर्म के ही हवाले किया जायेगा ।"[3] धर्म एवं आध्यात्मिक

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 43-44
2. वेणुवन - दिनकर - पृ. 109
3. वेणुवन - दिनकर - पृ. 13

को वर्तमान युग के अनुकूल बनाने की ज़रूरत है । इसके लिए आध्यात्मिकता का अनुसंधान विचार और समझदारी से करना है । हम भारतियों के पास जो आध्यात्मिक दृष्टि है उसे दिनकर बहुत श्रेष्ठ मानते हैं । उनकी दृष्टि में भारत अपनी आध्यात्मिकता से विश्व भर में ज्योति फैलाने में समर्थ हो जायेगा । "एक चीज़ है जो हमारे पास है और उसकी आवश्यकता यूरोप को महसूस भी हो रही है । वह चीज़ है व्यक्तियों और वस्तुओं को देखने की वह दृष्टि जिसे आध्यात्मिक कहते हैं ।"[1] दिनकर ने धर्म-साधना का अध्ययन करते हुए सगुण और निर्गुण ईश्वर की चर्चा भी की है । दिनकर दोनों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं । फिर भी लगता है कि सगुण भक्ति के प्रति उनमें आदर कुछ ज़्यादा है । "निर्गुण पर्वत है, सगुण समुद्र है । समुद्र के किनारे से पर्वत की चोटी हर एक को दिखाई देती है । किन्तु समुद्र तो उसी को दिखायी देगा जो पर्वत की चोटी तक पहुँच गया हो ।"[2]

दिनकर ने अपने दो तीन निबंधों में "बौद्ध धर्म की आधुनिक युग में प्रासंगिकता" पर विचार किया है । दिनकर के अनुसार ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म पर बौद्ध धर्म का प्रभाव पडा है । जाति-प्रथा को न मानने के कारण समाज-सुधारकों के लिए भी बौद्ध धर्म स्वीकार्य है । बुद्धदेव ने इस सत्य की घोषणा की थी कि धर्म चरित्र में बसता है, धर्म मनुष्य के हृदय की शून्यता को कहते है और धर्म बोलने नहीं करने की वस्तु हैं । दिनकर की दृष्टि में हिन्दु धर्म में परिष्कार लाने का प्रथम प्रयास तथागत ने ही किया है । "हिन्दु धर्म के जिस कलंक के खिलाफ कबीर और नानक जूझे, दादू और नामदेव ने लोहा लिया, आलवार सन्तों और वीर शैवों ने लडाई लडी, दयानन्द और गाँधीजी

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 104
2. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 71

ने संघर्ष किया, उस कलंक के विरुद्ध धर्मयुद्ध ठानने का पहला श्रेय भगवान बुद्ध को है ।"[1]

दिनकर ने धर्म और विज्ञान संबंधी अध्ययन के साथ साथ पुरानी और नयी नैतिकता का तुलनात्मक अध्ययन भी किया है । पुरानी नैतिकता की अनेक कमज़ोरियाँ थीं । उसने सेक्स पर अंकुश डालने का काम किया धर्म के निवृत्तिमार्गी हो जाने पर काम सुख सबसे अधिक भयानक माना जाने लगा । दिनकर की दृष्टि में वेश्या प्रथा का प्रचलन पुरानी नैतिकता की असफलता का सबसे बडा प्रमाण है । फिर नये युग में विज्ञान के आविर्भाव से धर्मशास्त्र का मन घटने लगा । प्राचीन नैतिकता में पुरुष और नारी के लिए अलग अलग नियम थे । लेकिन विज्ञान के आविर्भाव से प्राचीन नैतिकता का यह द्विविध रूप नष्ट होने लगा ।

दिनकर ने धर्म और दर्शन पर पडनेवाले विज्ञान के प्रभाव का विस्तृत विवेचन किया है । "धर्म और विज्ञान" शीर्षक अपने निबन्ध में दिनकर ने वैज्ञानिक चिंतन का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया है । इस निबंध में पदार्थ विषयक दार्शनिक और वैज्ञानिक चिंतन में कई बातों में उल्लेख्य समता दिखाई गयी है और निष्कर्ष रूप में यह स्थापना की गयी है कि सत्य के अन्तिम रूप के निर्धारण में पूर्ण समर्थ कोई नहीं हो पाया है । "विज्ञान भौतिक नियमों की खोज करता है । धर्म नीति और सौन्दर्य के मूल्यों का ध्यान करता है । एक का कानून गुरुत्वाकर्षण है, दूसरे का कानून निदिध्यासन..... ध्यान सौन्द का, ध्यान पवित्रता का । एक के पास जो चीज़ है, दूसरे के पास वह नहीं है

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 112-113
2. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 22

विज्ञान चेतना के सही रूप के विश्लेषण में असमर्थ है । फिर भी दिनकर के अनुसार विज्ञान की उपलब्धियाँ कम महत्वपूर्ण नहीं है । धार्मिक अन्धविश्वासों का खंडन उनकी दृष्टि में विज्ञान की एक बडी उपलब्धि है । विज्ञान और धर्म दोनों का रास्ता अलग-अलग था । लेकिन आज विज्ञान की नयी प्रवृत्तियाँ मनुष्य को जिस ऊँचाई पर ले गयी हैं वहाँ दर्शन का समुद्र भी दिखाई देने लगा है ।

विज्ञान स्पेस को निर्बंध होता हुआ भी ससीम कहता है । विज्ञान के अनुसार स्पेस निरन्तर विकसित होता जा रहा है । इस प्रसंग में दिनकर विज्ञान और धर्म की मान्यताओं में समानता दिखाकर उनमें समन्वय लाने का प्रयास करते हैं । "किन्तु यहाँ विचारणीय हो जाती है कि भारत में यूनिवर्स का पर्याय ब्रह्मांड है । यह शब्द ब्रह्म से बना है और ब्रह्म शब्द बृंह् धातु से बनता है, जिसका अर्थ बढना होता है । कहीं ऐसा तो नहीं है कि ब्रह्मांड के सतत बढते रहने का ज्ञान भारत के ऋषियों को था और इसीलिए उन्होंने इसका नाम ब्रह्मांड रखा ।"[1] विज्ञान एवं धर्म के बीच समन्वय रखने का दिनकर का आग्रह इन शब्दों में भी प्रकट होता है जैसे "अब तक विज्ञान सृष्टि के स्थूल यंत्रों और उसके ढाँचों के ज्ञान का पर्याय है । सृष्टि का जो अदृश्य रूप है उसकी खोज के साथ रहस्यवादी सन्त और कलाकार भी रह सकते हैं ।"[2]

धर्म, नैतिकता और विज्ञान से संबंधित दिनकर के प्रमुख निबंध "धर्म और विज्ञान", "कला, धर्म और विज्ञान", "आधुनिकता और भारत धर्म", "हिन्दी साहित्य में निगम धारा", "पुराना और नयी नैतिकता"

---

1. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 64
2. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 67

"बौद्ध धर्म की विश्वव्यापकता", "भगवान बुद्ध", "सगुणोपासना" आदि हैं । इन निबंधों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इन विषयों में दिनकर की अद्यतन जानकारी है । ये निबंध दिनकर की अध्ययनशीलता और जागरूकता के परिचायक हैं ।

५. राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रीय एकता से संबंधित निबंध

दिनकर ने अपने अनेक निबंधों में राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रीय एकता के संबंध में अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है । भाषा के प्रश्न पर गंभीरता से विचार करना बहुत आवश्यक है । सतही दृष्टि से देखने पर भाषा का प्रश्न बहुत हल्का सा लगेगा किन्तु गंभीरतापूर्वक विचार करने से स्पष्ट हो जायेगा कि भाषा का प्रश्न मनुष्य से बहुत गहराई के साथ जुडा हुआ है । भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है । मनुष्य की अधिकांश उपलब्धियाँ भाषा में ही सुरक्षित हैं और उनका आकलन केवल मनुष्य द्वारा संभव है । हम भाषा के द्वारा न केवल अपने को व्यक्त करते हैं वरन् भाषा में ही सोचते समझते भी हैं । इस प्रकार भाषा मनुष्य के अस्तित्व के साथ जुडी होती है । दिनकर ने भाषा के प्रश्न को इसी गंभीरता के साथ ग्रहण किया है । राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रीय एकता के संबंध में लिखे हुए दिनकर के प्रमुख निबंध हैं - "राष्ट्रभाषा", "अभिभाषण", "राष्ट्रभाषा हमारी सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की देन", "राष्ट्रीय और प्रांतीय", "मिथ्या विवाद", "वन्दनीय बंगाल", "हमारी राष्ट्रीय एकता", "भारत की सभी भाषाओं की जय हो", "स्वराज्य के बाद", "हिन्दी-हिन्दुस्तान विवाद", "हिन्दी प्रचार की ओर", "गाँधीजी और भारतीय भाषायें", "गाँधी युग से पूर्व हिन्दी की स्थिति", "हिन्दी और मुसलमान", "हिन्दी का सार्वदेशीय स्वभाव", "हिन्दी और उसकी उपभाषाओं का संबंध", "राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता", "भारत एक है", "हिन्दी कविता में एकता का प्रवाह", "देश भाषा हो क्यों", "नया भारत कैसा हो" आदि ।

किसी भी स्वतंत्र देश के लिए उसकी अपनी भाषा बहुत ज़रूरी होती है । भाषा की उन्नति और राष्ट्रीय उन्नति किसी राष्ट्र के मानसिक विकास का पर्याय है । किसी जाति की भावना, उसकी चिंतन शक्ति तथा उसकी सभ्यता और संस्कृति उसकी अपनी भाषा में ही ध्वनित होती है । पराई भाषा के माध्यम से कोई देश कभी भी मौलिक चिंतन प्रस्तुत नहीं कर सकता । दिनकर के अनुसार पराई भाषा सांस्कृतिक दृष्टि से गुलामी बनाती है जो गुलामी की पराकाष्ठा है । "सांस्कृतिक गुलामी का इन सबसे भयानक रूप वह होता है, जब कोई जाति अपनी भाषा को छोडकर दूसरों की भाषा अपना लेती है और उसी में तुतलाने को अपना परम गौरव मानने लगती है । यह गुलामी की पराकाष्ठा है ।"[1]

दिनकर के अनुसार हिन्दी के समर्थन का अर्थ प्रादेशिक भाषाओं का विरोध नहीं है । वे तो अपने अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्र है । यह विरोध तो अंग्रेज़ी से है और अंग्रेज़ी को हटाकर प्रादेशिक भाषाओं को आसीन करना प्रमुख लक्ष्य है । "राष्ट्रीय एकता के हित में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अंग्रेज़ी को प्रभुता के पद से शीघ्र हटाकर उसकी जगह पर देशी-भाषाओं को प्रतिष्ठित कर दें ।"[2] इस समय स्थिति यह है कि अंग्रेज़ी सभी भारतीय भाषाओं के विकास में बाधक है । हर भाषा के समर्थक का यह कर्तव्य है कि सबसे पहले अंग्रेज़ी को राज सिंहासन से हटायें । इस प्रकार प्रत्येक प्रादेशिक भाषा को प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए । किन्तु संपूर्ण देश की संपर्क भाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में एक भाषा का होना आवश्यक है । भारत के लिए यह भाषा हिन्दी हो सकती है । हिन्दी ही वह भाषा है जो व्यापकता की समृद्धि की दृष्टि से सबसे आगे है

---

1. राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता - दिनकर - पृ. 4
2. राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता - दिनकर - पृ. 23-24

इसलिए उन्नीसवीं शताब्दी के नेताओं और सुधारकों ने राष्ट्रभाषा और संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी का चुनाव किया । दिनकर के शब्दों में "जाति की अपनी भाषा वह हो सकती है जिसका संबंध इतिहास व्यापिनी चिन्ताधारा से रहा हो । अंग्रेज़ी की तुलना में इस देश की कोई भी भाषा यहाँ की राष्ट्रभाषा हो सकती थी, किन्तु प्रचार और प्रसार की सुगमता के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के नेताओं ने हिन्दी को चुना, क्योंकि यही एक भाषा थी जिसके बोलनेवाले सबसे अधिक थे और जिसे सीखने का परिश्रम कम से कम लोगों को करना पड़ता ।"[1] दर असल राष्ट्रभाषा के पद के लिए हिन्दी को चुनने का दायित्व उन नेताओं पर हैं जिनमें से शायद कोई भी हिन्दी प्रेमी नहीं था । राजा राम मोहनराय, बंकिम चन्द्र, स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्री कृष्ण स्वामी आदि ऐसे ही महान पुरुष थे ।

भाषा का राष्ट्रीय एकता से गहरा संबंध है । इतिहास और भूगोल की स्थूल एकता के नीचे सूक्ष्म स्तर पर संस्कृति की भी एकता होती है । भारत की सभी भाषायें हमारी मिट्टी की उपज हैं । अतः उनका आपसी विरोध नहीं हो सकता । भारत की सभी भाषाओं और उनके साहित्य में एक आन्तरिक संबंध सूत्र है जिसमें भाषा की सांस्कृतिक एकता के सूत्र ढूँढे जा सकते हैं । किन्तु भाषा को लेकर होनेवाले झगड़ों से एकता का सूत्र छिन्न-भिन्न होता है । अतः ज़रूरत इनको जोड़ने की है । "हमने जो एकता हासिल की है यह सिर्फ तन की एकता है । मन की एकता के लिए हमें अभी बहुत प्रयास करना बाकी है । भाषा को लेकर खड़े होनेवाले झगड़े और प्रान्तीय विशिष्टताओं को लेकर उठनेवाले विवाद यह साफ बता रहे हैं कि भारत का मन अभी तक हिस्सों में फटा हुआ है और सच्ची राष्ट्रीयता को जन्म देने के लिए जिस कुर्बानी

---

1. राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता - दिनकर - पृ. 117

की ज़रूरत है वह कुर्बानी हम नहीं दे पा रहे हैं । दुर्गा के जन्म को संभव करने के लिए देवताओं में से प्रत्येक को अपने रक्त का एक अंश दान करना पडा था । भारतीय राष्ट्र की एकता रूपिणी दुर्गा भी तब तक आकार नहीं पा सकती जब तक कि भारत का प्रत्येक राज्य अपनी विशिष्टता का एक अंश उसके निमित्त उत्सर्ग नहीं कर दे ।"[1]

दिनकर ने भारतीय एकता के सभी पहलुओं पर बडी ही छानबीन, अन्तर्दृष्टि और स्पष्टता के साथ विचार किया है । उनकी दृष्टि में रूपगत वैविध्य के बावजूद भारतीय संस्कृति, भारतीय राष्ट्र और भारतीय जीवन एक है । इस एकता को आज जितनी समझने की ज़रूरत है उतनी शायद कभी नहीं थी । दिनकर ने यह काम बखूबी निभाया है । "स्वतंत्रता तो हमने प्राप्त कर ली, लेकिन राष्ट्रीय एकता का प्रश्न ज्वलंत रूप में हमारे सामने खडा है । हमारे सारे इतिहास की शिक्षा है कि हम स्वतंत्र तब तक रहते हैं जब तक हम एक रहते हैं । जब भी एकता खिडकी से होकर निकल भागती है, हमारी स्वतंत्रता सदर दरवाज़ा खोलकर चल देती है ।"[2] भाषा भेद की समस्या को दिनकर राष्ट्रीय एकता की सबसे बडी समस्या मानते हैं । "भाषा भेद की समस्या ज़रा कठिन है और उसका हल तभी होगा जब हिन्दी भाषी क्षेत्र में आहिन्दी भाषाओं का तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का अच्छा प्रचार हो जाय ।"[3] हिन्दी का महत्व और राष्ट्रीय एकता के कायम होने की आशा दिनकर के शब्दों में गूँज उठती है - "हिन्दी तोडनेवाली भाषा नहीं,

---

1. राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता - दिनकर - पृ. 28-29
2. भारतीय एकता (भूमिका) - दिनकर
3. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 136

जोडनेवाली भाषा है । आज वह अग्नि-परीक्षा के भीतर से गुज़र रही है किन्तु मेरा विश्वास है कि इस अग्निपरीक्षा से वह सही सलामत बाहर आयेगी और देश ने जिस आशा से उसे अपनी राष्ट्रभाषा का पद दिया है, इस आशा को वह पूर्ण करेगी ।"[1]

इस प्रकार दिनकर ने अपने निबंधों में भाषा एवं राष्ट्रीय एकता की समस्याओं पर काफी गहराई से विचार करते हुए अपने विचारों और निष्कर्षों को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है । भाषा के संबंध में दिनकर के ये विचार न केवल एक हिन्दी प्रेमी के विचार हैं बल्कि एक देशप्रेमी के भी विचार हैं । इसलिए उनके निष्कर्ष आग्रहमुक्त और राष्ट्रीय एकता के हित में हैं ।

5. शिक्षा-संबंधी निबंध

दिनकर ने अध्यापक और विश्व विद्यालय के उपकुलपति के रूप में काम किया है । अतः भारत की शिक्षा-पद्धतियों की कमज़ोरियों से वे पूर्ण अवगत थे । उन्होंने कुछ निबंधों में शिक्षा का उद्देश्य, भारतीय शिक्षा-पद्धति में हुए परिवर्तन, शिक्षा और शासन का संबंध आदि बातों पर अपने महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं । उनके शिक्षा संबंधी निबंधों में प्रमुख हैं - "शिक्षा तब और अब", "इलम की इन्तिहा है बेताबी", "शिक्षा के पाँच लक्षण और शिक्षा और शासन का माध्यम" ।

भारत में शिक्षा का प्रचार अंग्रेज़ों के आगमन से हुआ । उन्होंने

---

1. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 152

जिस शिक्षा-पद्धति का प्रचार भारत में किया वह हमारी संस्कृति एवं सभ्यता के अनुकूल नहीं थी । अंग्रेज़ी शिक्षा-पद्धति ने भारतीयता की उपेक्षा की । दिनकर के शब्दों में "अंग्रेज़ी तो हमने सीख ली, लेकिन हमारी आत्मा का दलन हो गया । उस समय की शिक्षा-पद्धति में भारतीयता का बहिष्कार किया जाता था । भारतीयता दुर्गुण समझी जाती थी । उसी शिक्षा-पद्धति के पापों का परिणाम हम आज भी भुगते रहे हैं । उस शिक्षा-पद्धति के कारण जिनकी भारतीयता कमज़ोर हो गयी, ठीक वे ही लोग आज भी भारतीय भाषाओं का विरोध कर रहे हैं ।"[1] संक्षेप में अंग्रेज़ों की शिक्षा-पद्धति ने हमारी आत्मा को भी नष्ट कर दिया । अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद भी उनकी शिक्षा-पद्धति का बुरा असर समाज पर पड़ा रहा ।

वर्तमान समाज में भी शिक्षा के क्षेत्र में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ । आजकल शिक्षा का स्तर बहुत नीचा है । छात्रों की अनुशासनहीनता भी बड़ी समस्या बन गयी है । हमें यह समझना है कि शिक्षा के क्षेत्र में जो भी समस्यायें हैं उनका सीधा संबंध समाज से है । इसलिए समाज के ढाँचे में परिवर्तन हुए बिना शिक्षा के क्षेत्र में सुधार संभव नहीं है । दिनकर के शब्दों में "जब तक शासन के कर्णधार नहीं सुधरेंगे, जब तक ईमानदार कर्मचारी धक्के खाते रहेंगे, और बेईमानों को तरक्की मिलती रहेगी, जब तक उत्पादन नहीं बढ़ेंगे, जब तक बेकारी पर लगाम नहीं लगेगी, जब तक जातिवाद का ज़हर नहीं हटेगा, तब तक छात्रों की अनुशासनहीनता भी कायम रहेगी । छात्रों की अनुशासनहीनता केवल छात्रों का रोग नहीं है । वह उस ज़हर और पाप का बाहरी लक्षण है जो समाज के पोर-पोर में व्याप गया ।"[2]

---

1. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 40
2. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 42

शिक्षा का उद्देश्य क्या है ? शिक्षा कैसे प्राप्त की जा सकती है ? शिक्षित व्यक्ति का लक्षण क्या है ? जैसे अनेक प्रश्नों का उत्तर दिनकर ने साफ-साफ बता दिया है । दिनकर की दृष्टि में शिक्षित व्यक्ति के पाँच लक्षण हैं । "शिक्षित व्यक्ति की पहली पहचान यह है कि वह अपनी मातृभाषा में सुदक्ष होता है यानी वह अपनी मातृभाषा में शुद्धता के साथ लिख और बोल सकता है । दूसरा लक्षण यह है कि वह विनम्र होता है। शिक्षित व्यक्ति की तीसरी पहचान यह है कि उसमें चिंतन की शक्ति होती है । चौथी पहचान यह है कि उसका मस्तिष्क सतत विकासशील रहता है । शिक्षित व्यक्ति की आखिरी पहचान यह है कि वह आलसी नहीं होता और अपने हर काम को मुस्तैदी के साथ और ठीक समय पर अंजाम देता है ।"[1] दिनकर ने चौकोर व्यक्तित्ववाले लोगों का निर्माण शिक्षा का उद्देश्य माना है । उनकी दृष्टि में मातृभाषा में सुदक्ष होना बहुत आवश्यक है । अहिंसा, विनय और संस्कार परस्पर समानार्थक है । शिक्षा व्यक्ति के मन में अहिंसा, विनय और संस्कृति का सुरम्य भाव पैदा करती है । शिक्षा व्यक्ति को प्रश्न पूछने की शक्ति देती है याने व्यक्ति के भीतर शंका की प्रवृत्ति को तेज़ करती है । शिक्षा व्यक्ति को सदैव कर्म की प्रेरणा देती रहती है । हमें यह भी समझना चाहिए कि कर्म ही वह कसौटी है जिस पर ज्ञान की परख की जा सकती है ।

दिनकर ने बताया है कि शिक्षा और साक्षरता का संबंध नित्य नहीं है । शिक्षा केवल स्कूल कालिज ही नहीं देते वह परंपरा से भी प्राप्त की जाती है, वह सत्संग से भी हासिल होती है, वह समाज में बहती हुई हवा से भी खींची जा सकती है । "विश्वविद्यालय से भी बड़ा विद्यालय जीवन का व्यावहारिक क्षेत्र है, जहाँ मरने के दिन तक आदमी कोई न कोई

---

1. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 165-170

बात सीखता ही रहता है ।"[1] वर्तमान शिक्षा-पद्धति के दोष की ओर संकेत करते हुए दिनकर ने बताया है कि उसमें सारा ध्यान विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ तैयार करने पर केन्द्रित है । इस शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन लाने का संदेश दिनकर ने दिया है । "शिक्षा-पद्धति में कोई ऐसा आमूल परिवर्तन लाया जाना चाहिए जिससे विशेषज्ञों के साथ-साथ हम कुछ ऐसे मनुष्य भी तैयार कर सकें, जो विज्ञान और धर्म दोनों के प्रति सहानुभूतिशील हों, जो रहस्यवादियों के निकट उसी प्रसन्नता का अनुभव कर सकें जिस प्रसन्नता का अनुभव वे वैज्ञानिकों की महफिल में करते हैं ।"[2]

दिनकर विदेशी शिक्षा-पद्धति के विरोधी हैं । उनका विचार है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए । लेकिन जब तक शासन का माध्यम नहीं बदलता, दफ्तरों की भाषा नहीं बदलती तब तक शिक्षा-माध्यम के परिवर्तन का काम ज़ोर नहीं पकड़ सकती । शिक्षा का उद्देश्य जनता के व्यक्तित्व को उभारना है । लेकिन जब तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा नहीं होती तब तक यह संभव नहीं । "जो जनता अपनी भाषा में नहीं सोचती, न अपनी भाषा में शिक्षा और शासन के कार्य चलाती है उस जनता का व्यक्तित्व कभी नहीं उभरेगा ।"[3]

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा संबंधी दिनकर की मान्यताएँ अत्यन्त मौलिक एवं गंभीर हैं ।

---

1. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 168
2. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 139
3. राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गाँधीजी - दिनकर - पृ. 72

6. राष्ट्रीयता और अंतरराष्ट्रीयता से संबंधित निबंध

"अंतरराष्ट्रीयता हमारे प्रेम का विकास", "राष्ट्रीयता और अंतरराष्ट्रीयता", "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि" जैसे निबंधों में प्रबुद्ध मनीषी दिनकर ने राष्ट्रप्रेम और विश्व प्रेम का परस्पर संबंध और अविरोध दर्शाने का प्रयास किया है । दिनकर की दृष्टि राष्ट्रीयता तथा अंतरराष्ट्रीयता के उत्स तक पहुँची है । राष्ट्रीयता का उत्साह दिनकर वहाँ तक मानते हैं जब तक वह देश में उत्साह उत्पन्न कर स्वतंत्रता स्थापित करती है । देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् राष्ट्रीयता को अंतरराष्ट्रीयता के धरातल पर जाना ही संगत है अन्यथा विश्व बन्धुत्व एवं विश्व शांति का सपना सपना ही रह जायेगा । दूसरी ओर दिनकर चेतावनी भी देते हैं कि राष्ट्र को छोडकर अन्तरराष्ट्रीयता की बात उपहासास्पद ही है । "गुलाम व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीयता अमृत का काम देती है, क्योंकि राष्ट्रीय उत्साह के बिना जातियाँ स्वाधीनता को नहीं पा सकतीं । किन्तु सभी देशों के स्वाधीन हो जाने के बाद भी राष्ट्रीयता अगर कभी रही तो विश्व-बन्धुत्व और विश्व शांति का सपना केवल सपना ही रह जायेगा । गुलामी एक काँटा है जिसके गड जाने पर हम इसे राष्ट्रीयता रूपी दूसरे काँटे से निकालते हैं । लेकिन काँटा निकल जाने के बाद यह क्या उचित है कि हम एक काँटे को तो फेंक दें और दूसरे को जेब में लिये चलें ।"[1]

राष्ट्रीयता और अंतरराष्ट्रीयता का परस्पर संबंध व्यक्त करते हुए दिनकर ने कहा है कि "पृथ्वी की दो गतियाँ होती हैं । वह अपनी धुरी पर भी घूमती है और साथ साथ सूर्य के भी चारों ओर । पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूमना राष्ट्रीयता का उदाहरण है और उसका सूर्य के चारों ओर घूमना

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 91

अन्तर्राष्ट्रीयता का दृष्टांत । ध्यान देने की बात यह है कि यदि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमना छोड दें तो उसका सूर्य के चारों ओर घूमना आप-से-आप रुक जायेगा ।[1] राष्ट्रवाद स्वजनों की रक्षा करता है तो अन्तर्राष्ट्रवाद देश काल की सीमाओं का अतिक्रमण करके समस्त भूमंडल से प्रेम करने की क्षमता में वृद्धि करता है और इस प्रकार अंतर्राष्ट्रवाद विश्वहितवाद बन जाता है ।

दिनकर विश्वमानवता के समर्थक हैं । राष्ट्रीयता के सीमित दायरे से निकलकर अंतर्राष्ट्रीयता की विशाल भूमि की ओर बढने का संदेश उन्होंने दिया है । राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता से संबंधी निबंधों में दिनकर ने यह सिद्ध किया है कि मनुष्य के जीवन का लक्ष्य आत्मा का निर्बंध प्रसार होना चाहिए ।

7. आधुनिकता संबंधी निबंध

आधुनिकता के प्रसार की प्रक्रिया तेज़ी से हो रही है । आधुनिकता के प्रसार की प्रक्रिया में उसकी टकराहट स्वाभाविक रूप से परंपरा से होती है । इस टकराहट में वह या तो परंपरा को ध्वस्त कर देती है या उसके सार तत्व को आत्मसात् कर आगे बढती है । यूरोप में आधुनिकता परंपरा को रौंदकर आगे बढी है । लेकिन भारत में अब भी परंपरा अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए संघर्ष कर रही है । भारत के प्रति आत्मगौरव के मुग्ध भाव से दिनकर कहते हैं - "भारत की एक विशेषता यह है कि वह समस्त संसार की लडाई अकेला लड रहा है । जब से विज्ञान की बढती हुई है, प्रायः सभी देशों में अतीत और वर्तमान के बीच संघर्ष छिड गया और प्रायः सभी देशों में

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 91

अतीत वर्तमान से हार गया । केवल भारत में वह आज भी युद्ध कर रहा है ।"[1]

जिस आधुनिकता का प्रवेश भारत में हुआ है उसका महत्व दिनकर स्वीकार नहीं करते । उनकी दृष्टि में यह आधुनिकता यूरोप के अनुकरण पर हुआ है जो पूर्ण रूप से वास्तविक नहीं है । दिनकर इस आधुनिकता को एक शाश्वत मूल्य मानने को तैयार नहीं । उनके शब्दों में "नैतिकता, सौन्दर्य-बोध और अध्यात्म के समान आधुनिकता कोई शाश्वत मूल्य नहीं है । सच पूछिए तो वह मूल्य है ही नहीं, वह केवल समय-सापेक्ष्य धर्म है ।"[2] दिनकर ने आधुनिकता और आधुनिकीकरण का विश्लेषण करते हुए लिखा है - "आधुनिकता और आधुनिकीकरण में भेद है । आधुनिकता बुद्धिवादी मनोवृत्ति को कहते हैं । आधुनिकीकरण का अर्थ उद्योग, समृद्धि, सैन्यबल, साक्षरता और अवकाशहीनता है ।"[3] दिनकर के अनुसार आधुनिकीकरण हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा । लेकिन जहाँ तक आधुनिकता का प्रश्न है हमें भारत के असली धर्म की रक्षा करनी है । "आधुनिकता के जो औद्योगिक और सामाजिक पक्ष है, प्रवृत्तिमूलक और पुरुषार्थ बोधक पक्ष है, उन्हें हम स्वीकार करेंगे और सर्वत्र स्वीकार करेंगे । जहाँ तक बुद्धिवाद और वैज्ञानिक दृष्टि का प्रश्न है, हम इनकी भी उपयोगिता स्वीकार करते हैं । किन्तु इन बातों को स्वीकार करते समय हमें इसका भी ध्यान रखना है कि जो नया विश्व बनायें वह प्राचीन और मध्यकालीन विश्व से सचमुच ही श्रेष्ठ हो - केवल सुख सुविधा, स्वतंत्रता और भोग की दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं हो, बल्कि उसमें शांति का भी प्राचुर्य हो ।"[4] परंपरा और अतीत के प्रति दिनकर का मोह यहाँ अवश्य प्रतिफलित होता है ।

---

1. आधुनिक बोध - दिनकर - पृ. 15
2. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 34
3. साहित्यमुखी - दिनकर - पृ. 32
4. आधुनिक बोध - दिनकर - पृ. 17

आधुनिकता संबंधी दिनकर की अपनी धारणा यह है कि आधुनिकता अंधविश्वास से निकलने की, नैतिकता में उदारता बरतने की, धर्म के सही रूप पर पहुँचने की प्रक्रिया का नाम है । दिनकर आधुनिकता की शक्ति और प्राचीनता के संतोष को मिलाना चाहते थे । इसलिए वे आध्यात्मिकता की रक्षा करते हुए आधुनिक बनने का संदेश देते हैं ।

8. भावात्मक निबंध

दिनकर के कुछ निबंध मनबहलाव के लिए लिखे जाने के कारण कविता की चौहद्दी के पास पड़ते हैं । ऐसे निबंधों में दिनकर मस्त और स्वच्छंद प्रकृति के लेखक सिद्ध होते हैं । इनमें न तो गांभीर्य की गरिमा है न व्यंग्य का दर्शन, बल्कि लेखक आनंद की तरंगों में बहता नज़र आता है । उन निबंधों में लेखक के व्यक्तित्व की छाप अधिक दिखाई पड़ती है । दिनकर ने निबंधों में समाज, साहित्य, मनोविज्ञान, संस्कृति आदि बिन्दुओं पर विचार करते हुए अपने जीवन दर्शन का परिचय दिया है ।

"हिम्मत और ज़िन्दगी" में दिनकर ने धैर्य और मानव जीवन का पारस्परिक संबंध प्रस्तावित किया है । उनकी दृष्टि में साहस की ज़िन्दगी सबसे बड़ी ज़िन्दगी होती है । जीवन उनका है जो चरण रोप निर्भय होकर लड़ रहे हैं । "जो लोग पाँव भींगने के खौफ से पानी से बचते रहते हैं, समुद्र में डूब जाने का खतरा उन्हीं के लिए है । लहरों में तैरने का जिन्हें अभ्यास है, वे मोती लेकर आयेंगे ।"[1]

---

1. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 2

"चालीस की उम्र" में लेखक ने चालीस के बाद की अवस्था का महत्व जताया है । दिनकर के शब्दों में "बसन्त और शिशिर में कुछ भेद तो है, किन्तु ऐसे नहीं कि एक के सामने दूसरा कुछ है ही नहीं । वसन्त की सुषमा और सौख्य शिशिर के बारीक आनन्द से भिन्न होते हैं, फिर भी शिशिर के भी अपने मूल्य है । जो इन मूल्यों को समझता, उसे निराशा नहीं होती ।"[1] बढ़ती उम्र में निराश होने के बदले ज़िन्दगी के "गियर" से मेल बिठा लेने का संदेश दिनकर देते हैं ।

"ईर्ष्या तू न गयी मेरे मन से" एक मनोवैज्ञानिक निबंध है । जगत् में ऐसा कोई भी जीव, जन्तु, प्राणी, मनुष्य नहीं जिसके मन में ईर्ष्या न हो । कई उदाहरण से दिनकर ने यह सिद्ध किया है कि ईर्ष्या मानव जीवन की अवनति का मूल कारण है । ईर्ष्या मनुष्य के मन के आनंद को छीन लेती है, उसको आलसी एवं निराश बना देती है । दिनकर के शब्दों में "अपने अभाव पर दिन रात सोचते-सोचते वह सृष्टि की प्रक्रिया को भूलकर विनाश में लग जाता है और अपनी उन्नति के लिए उद्यम करना छोड़कर वह दूसरों को हानि पहुँचाने को ही अपना श्रेष्ठ कर्तव्य समझने लगता है ।"[2]

"हृदय की राह" नामक निबंध में लेखक ने यह सिद्ध किया है कि मस्तिष्क एवं हृदय दोनों में से हृदय की राह अधिक शक्तिशाली है । दिनकर की दृष्टि में मस्तिष्क केवल सिद्धान्त करता है । उस सिद्धान्त के प्रति आस्था उत्पन्न करना हृदय का कार्य है । इसलिए हृदय की राह को पकड़ना अधिक समीचीन है ।

---

1. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 14
2. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 16

"कर्म और वाणी" में गाँधीजी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बातों की तुलना करते हुए दिनकर ने यह स्थापित किया है कि चिंतन की अपेक्षा कर्म सत्य के अधिक समीप है । दिनकर के शब्दों में "कर्म के हृदय से जब आवेश की कविता फूटती है तब उसका तेज़ ऐसा ही भयानक होता है और चिंतन उसके सामने सिर ऊँचा करके खड़ा नहीं रह सकता ।"[1]

"खड्ग और वाणी" दिनकर के युद्ध विरोधी विचारों की भावात्मक अभिव्यक्ति है । विश्व की अशांति देखकर दिनकर दुःखी हो जाते हैं । उनका यह कथन विशेष उल्लेख्य लगता है जिसमें उनके हृदय का सारा भाव उभरकर आया है - "वीणा मूक है और मन ही मन वह सोचती जाती है वह कविता, जिसे वह आज निशीथ में गायेगी । कविता उन फूलों की, जो शहीदों की समाधि पर बिखरे जाते हैं । कविता उन चाँदनियों की जो समर भूमि की लाशों पर चादर बनकर फैलती है, मानों खड्ग की ग्लानि पर परदा डाल रही हों । कविता उन दुष्ट आवेगों की जो मनुष्य को तलवार पकड़ने के लिए विवश करते हैं । और कविता उन आदर्शों की, जो खड्ग के अस्तित्व को भंग करनेवाले हैं ।"[2]

"मन्दिर और राजभवन", "और चाहिए किरण जगत को और चाहिए चिनगारी" जैसे निबंधों में दिनकर ने आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक विचारों के समन्वय की ज़रूरत व्यक्त की है । दिनकर की दृष्टि में "परंपरा की तमिस्रा को छिन्न भिन्न कर देनेवाले ज्ञान का प्रकाश, रूढ़ियों के मायाजाल पर ज्वालापात करनेवाला उद्धारक प्रकाश और मनुष्य के बीच के नैसर्गिक संबंध

---

1. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 38
2. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 44

को प्रत्यक्ष कर दिखानेवाला समन्वय विधायक प्रकाश आवश्यक है । इसके साथ साथ प्रतिभा के मूल-पुंज में छिटकनेवाली देदीप्यमान ज्ञान की चिंगारियाँ, कायरता को भस्मीभूत करने वाले तेज़ और ओज की चिंगारियाँ, और बलिदान के पंथ पर आरूढ रहने का प्रोत्साहन देनेवाली त्याग की चिनगारियाँ भी आवश्यक हैं ।"[1] दिनकर ने विनयशीलता, अपरिग्रह और अनवरोध को स्वीकार करने का उपदेश भी दिया है ।

"दीपक की लौ अपनी ओर" नामक निबंध में दिनकर ने व्यक्ति के भीतर की सफाई को महत्वपूर्ण माना है । उनके अनुसार जिस समाज में, हर आदमी अपनी जिम्मेदारी दूसरों पर फेंक रहा है, जिस समाज में हर आदमी अपने को निर्दोष और दूसरों को दोषी बना रहा है उस समाज को सुधारने के लिए पहले व्यक्ति को अपने मन को शुद्ध करना है ।

"हड्डी का चिराग" नामक निबंध में दिनकर ने अकर्मण्यता तथा निष्फलता के विषैले वातावरण को दूर करने के लिए तपस्या के मार्ग को अपनाने की बात बतायी है । उन्होंने मनुष्य की अदम्य शक्ति पर विश्वास प्रकट करते हुए कहा है कि "ज्योतिर्मय पुरुष ! तू अपने को भूल रहा है । तुझमें बुद्ध का तेज़ है, जिसने स्वर्ग और पृथ्वी, दोनों के लिए प्रकाश का निर्माण किया था । × × × आज दीवाली की रात अपनी हड्डी के उस चिराग को जला, जिसकी लौ सदियों तक जलती रहती है ।"[2]

दिनकर ने अपने भावात्मक निबंधों में आवेगपूर्ण शैली या

---

1. अर्धनारीश्वर - दिनकर - पृ. 5-6
2. अर्धनारीश्वर - दिनकर - पृ. 12

वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है । इन निबंधों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दिनकर का भावुक हृदय ही यहाँ खुल पडता है । इनमें अनुभूति की गहनता और भावना की तीव्रता है ।

दिनकर के यात्राविवरण

यायावरी मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों में से एक है । देश-विदेश के रम्य स्थानों को देखने की इच्छा मानव की प्रकृति में है । यात्रा से मिलनेवाले ज्ञान एवं अनुभव व्यक्ति की जीवन-दृष्टि को अधिक व्यापकता प्रदान करते हैं । लेकिन यात्रा करना और यात्रा साहित्य लिखना दोनों अलग-अलग गुण हैं । सभी यायावर यात्रा-साहित्य लिख नहीं सकते । केवल संवेदनशील दृष्टि के यात्री ही इस कार्य में सफल हो सकते हैं । अतः यात्रावृत्त वास्तव में यात्रा की भोगी हुई स्थितियों की आत्मानुभूति की साहित्यिक अभिव्यंजना है ।

यात्रा-साहित्य साहित्य की स्वतंत्र एवं आधुनिक विधाओं में से एक है । स्मृति प्रधान साहित्य में इस विधा का महत्वपूर्ण स्थान है । यात्रा-साहित्य का उद्देश्य अन्य साहित्यिक विधाओं के उद्देश्य से भिन्न नहीं है । हिन्दी में यात्रावृत्त लिखने की परंपरा भारतेन्दु युग से शुरू हुई । भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों ने इस विधा को गति प्रदान की । द्विवेदी युग और छायावादी युग के अनेक लेखकों ने भी यात्रा-साहित्य के विकास के कार्य में पर्याप्त योग दिया । इस साहित्य-विधा के विकास में समसामयिक पत्र-पत्रिकाओं का भी महत्वपूर्ण हाथ रहा है । हिन्दी के यात्रा-साहित्य में राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय, दिनकर, निर्मल वर्मा धर्मवीर भारती जैसे लेखकों के यात्रावृत्त विशेष उल्लेखनीय हैं । आजकल यात्रा वर्णन के विविध आयाम प्रस्तुत हो चुके हैं ।

नूतन प्रयोग एवं नई शैलियों के साथ साहित्य की यह विधा पर्याप्त लोकप्रिय बन गयी है । वर्तमान युग में हिन्दी का यात्रासाहित्य रचनात्मक साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है । अतः यात्रा साहित्य की अनंत संभावनाओं की खोज होनेवाली ही है ।

हिन्दी के यात्रा साहित्य में श्री रामधारी सिंह दिनकर के यात्रा-संबंधी लेख विशेष उल्लेखनीय हैं । दिनकर ने देश और विदेश की यात्रायें की हैं । देश-विदेश में घूमते समय दिनकर ने सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के साथ सारे यात्रा-दृश्यों को डायरी एवं हृदय में चित्रवत् अंकित किया । अतः अपने यात्रा-विवरणों में व्यक्तियों, दृश्यों, घटनाओं आदि का चित्रात्मक स्वरूप उपस्थित करने में दिनकर सफल हुए । शब्दों के माध्यम से चित्रों की यथार्थ अवतारणा करने में उनकी शैली पर्याप्त सफल दिखाई पडती है ।

दिनकर की यात्राओं को भौगोलिक दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - भारतीय एवं अभारतीय । उनकी इन यात्राओं का विवरण "देश-विदेश" और "मेरी यात्राएँ" में संकलित हैं । "देश-विदेश" में लेखक ने अपने सौराष्ट्र-भ्रमण और कश्मीर की सैर के वर्णन के साथ अपनी यूरोप-यात्रा का वर्णन भी किया है । "मेरी यात्राएँ" में दिनकर की जर्मनी, चीन और मारीशस की यात्रा का रोचक वर्णन है । "मेरी यूरोप-यात्रा" नामक लेख "देश विदेश" और "मेरी यात्रायें" दोनों में संगृहीत है ।

दिनकर ने कश्मीर, सौराष्ट्र, पोलैन्ड, जर्मनी, चीन और मारीशयस की यात्रा की है । उन्होंने देश-विदेश के सुसमृद्ध नगरों के गौरवपूर्ण अतीत की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने के साथ ही उन नगरों की सांस्कृतिक, सामाजिक,

आर्थिक, राजनीतिक और साहित्यिक विशेषताओं को भी उद्घाटित किया है । विभिन्न देशों के साथ जुड़ी हुई पौराणिकताओं और इतिहास सम्मत घटनाओं का उल्लेख भी दिनकर के यात्रा-साहित्य में दर्शनीय है । दिनकर के यायावरी दृष्टि-पथ में जितने स्थान और परिदृश्य आये, उन सबको, शाब्दिक अभिव्यक्ति देने का प्रयास उनके यात्रावृत्त में हुआ है । उनके यात्रा-विवरणों में स्थानीयता, तथ्यात्मकता, आत्मीयता, वैयक्तिकता, कल्पना-प्रवणता और रोचकता जैसे यात्रा-साहित्य के सभी तत्त्वों का समावेश हुआ है । उनके यात्रा-साहित्य की एक विशेषता यह भी है कि वह स्वभावोक्ति की शैली में लिखा होता है । उनमें साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जानकारी अधिक मिलती है । दिनकर ने स्थान-स्थान पर इतिवृत्तात्मक, भावात्मक या आलंकारिक और चित्रात्मक शैलियों का प्रयोग किया है जिससे उनके यात्रा-वृत्त अधिक प्रभावोत्पादक हो गये हैं ।

दिनकर ने विभिन्न नगरों और महत्वपूर्ण दृश्यों का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन किया है । एक ओर उन्होंने भारत के भावनगर, राजकोट, द्वारकापुरी, पाटना, कश्मीर जैसे सुसमृद्ध नगरों का वर्णन किया है तो दूसरी ओर वारसा, स्टूटगार्ट, म्यूनिख, बर्लिन, शेंगतू, पीकिंग, थैंचिंग, नानकिंग, शांघाई, हांग-चौ, कान्टून, मारीशस, कोरिया जैसे विदेशी नगरों का । उन्होंने विभिन्न स्थानों के देखनेलायक प्रायः सभी वस्तुओं का उल्लेख किया है । जैसे "जो कुछ देखा, उनमें सबसे उल्लेखनीय स्थान "जन मनोरंजन महल" है । यह मकान नहीं, मकानों का समूह है और हर मकान सीढ़ियों और गलियों के ज़रिए दूसरे मकान से जुड़ा हुआ है । यह पूरा महल तिलिस्मी लगता है ।"[1] कान्टून के कलचरल पार्क का वर्णन भी देखने लायक है - "यह वह अहाता है, जहाँ जापान

---

1. मेरी यात्राएँ - दिनकर - पृ. 133

ने बम गिराया था । मुक्ति के बाद उसी अहाते में यह पार्क बना है । उस पार्क में भी फूलों की सजावट देखने ही लायक है । फूलों की मेज़, फूलों की चिड़िया, फूलों का ही बड़ा-सा ड्रागन और सामने दीवार बने घास के हरे बोर्ड पर फूलों से ही लिखा हुआ शान्ति-वाक्य । सारा वातावरण ही फूलों और हरियाली से लह लहा रहा है ।"[1] इसी तरह क्रैकोव के गिरिजाघर का घंटा घर, पोषन का राष्ट्रीय म्यूज़ियम, पोषन का संगीत म्यूज़ियम, म्यूनिख का लेडिस कैथेड्रल, ओबरामगाड का "पैसन प्ले", बर्लिन का चिड़ियाखाना, चीन का पुनान विश्व-विद्यालय, शेंगतू बाज़ार, लामा मंदिर, काउन्टर रिवोल्यूशनरी क्राईम्स म्यूज़ियम, चीन के प्रधान मंत्री का घर, मज़दूरों के संस्कृति महल, लिंको पार्क, काल लुशुन की समाधि, "उड़न पहाड़", "रनिंग टाइगर", ल्यूह नामक पगोडा, येलो ड्रैगन केव, लोनली माउंटन, शांघि विश्व विद्यालय, कान्टून म्यूज़ियम, मारा शियस का शिवालय, नैराबी का नैशनल पार्क, भावनगर का लवण-शोध-पीठ, जामनगर का सोलेरियम, द्वारकाधीश का मंदिर, शारदा पीठ, पाटन का कीर्तिमंदिर, सुदामा मंदिर, पोरबन्दर का आर्य-कन्या-विद्यालय, श्रीनगर के हाउस बोट, डल वुलर, मानसबल जैसे झील, जूनागढ़ का चिड़ियाघर आदि विभिन्न मनोरम दृश्यों का वर्णन दिनकर के यात्रावृत्त में उपलब्ध है ।

दिनकर की दिलचस्पी पेड़-पौधे, पहाड़-नदियों, खेत-ज़मीन, खनिज, फूल, फसल, सब तरह की प्राकृतिक संपदाओं में है । लगता है प्राकृतिक वैभव को देख उनकी स्वच्छन्द अभिव्यक्ति छलक उठती है । प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रात्मक वर्णन उनके यात्रा-साहित्य में यत्र-तत्र दर्शनीय हैं । जैसे "पानी के भीतर जितनी भी ज़मीन है, सब बाग-बगीचों से भरी है । बगीचे जैसे

---

1. मेरी यात्राएँ - दिनकर - पृ. 156

फुलवारियों के समान हैं, मगर उनमें चीड के पेड काफी है । साथ साथ अनार के भी पेड खूब मिलते हैं । पेडों के पत्ते झर गये थे, फिर भी एक कठोर सौन्दर्य चारों ओर छाया हुआ था ।"[1] प्रकृति के आकर्षक रूप की अभिव्यंजना का और उदाहरण देखिए "यहाँ भी मन ललच उठा और मैं वेणुवन में विहार करने लगा । यहाँ के बाँस हडौती या चाव न होकर लंबे, मोटे, पोरोंवाले हैं । सारे के सारे बाँस खूब सुडौल हैं, मानों साँचे में ढालकर बनाये गये हों ।"[2] या "नीले जल पर हरे-हरे पत्ते और उनपर भाँति-भाँति के कमल के फूल, यह दृश्य इतना सुहावना लगता है कि मन वहाँ से हटना नहीं चाहता ।"[3] इस तरह दिनकर ने नैसर्गिक आह्लाद का अनुभव करते हुए प्रकृति के अनेक मनोरम हृदय खींचे हैं ।

दिनकर के यात्रा साहित्य का मुख्य विषय मानव और मानव समाज ही है । विभिन्न देशों के निवासियों के रीति-रिवाज़ों में उनकी बडी दिलचस्पी है । उनकी सूक्ष्म दृष्टि से नये नये स्थानों के लोगों की वेश-भूषा, कलात्मकता, नृत्य, चित्र, लोकगीत, खान पान कुछ भी नहीं छूटते । चीन के लोगों का वेश-भूषा का यह चित्र देखिए - "यहाँ सारा देश उसी रंग में रंगा है । नीले रंग में ही कोई गाढा रंग पहनता है, कोई हल्का । औरत मर्द और बच्चे, सब के सब बदन से सटे हुए छोटे छोटे कोट और टाँगों से सटी हुई पैन्टें पहनते हैं । पैन्ट उटंग होती है और देखने में अच्छी नहीं लगती । लडकियों का पीठ पर दो चोटियाँ झूलती होती हैं ।"[4] चीन के लोगों के रीति-रिवाज़

---

1. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 129
2. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 150
3. देश विदेश - दिनकर - पृ. 25
4. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 86

को व्यक्त करनेवाला और एक भव्य चित्र देखिए - "फूलों का प्रेम तो चीनियों के नस-नस में है । खाने पीने का तरीका भद्दा, किन्तु फूलों का बेहद शौक । यों चित्रकारी, नाटक और आपेरा में भी चीन भारत से आगे हैं । चीनियों का स्वास्थ्य भी उत्तम है । तोंद कहीं दिखाई नहीं देती, लोग शरीर से हल्के-फुल्के और पतले तथा रंग गोरे है । बीमारी और प्राकृतिक प्रकोप सहने की शक्ति उनमें काफी होनी चाहिए ।"[1] भावनगर के गरबा-नृत्य का वर्णन भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय लगता है । "नाटक, प्रहसन, भावनृत्य और स्वरानुकृति (मिमिक्री) सबकुछ दिखाये गये, किन्तु गरबा-नृत्य ने सब को मात कर दिया । इस नृत्य की विशेषता इसकी मर्यादा और शील हैं । अतएव नृत्य के समय किसी को भी झेंपने की ज़रूरत नहीं होती । यह नृत्य मुख्यतः गृहस्थ-गृह की ललनाओं का नृत्य है, यद्यपि इसमें पुरुष भी साथ हो लेते हैं ।"[2]

दिनकर ने देश और विदेश में घूमते हुए कई बार दोनों राज्यों प्रदेशों और समाजों की तुलना की है । वारसा के अन्तर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन से अभिभूत होकर दिनकर ने यह लिखा - "वारसा में अन्तर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन हुआ और वह बहुत ही सफल रहा । जनता ने उनका भी हौसला बढाया, जिनकी कविताएँ वह समझ सकती थी, और उनका भी जिनकी कविताओं के केवल अनुभव ही उसके पल्ले पडे । किन्तु यदि हम भारत की चौदह भाषाओं के कवियों को एक मंच पर एकत्र करें तो क्या होगा ? क्या जनता प्रत्येक भाषा के कवि को निश्चल प्रेम देगी ? या जो भाषा वह नहीं समझती है, उनकी कविताएँ सुनते समय बेवकूफी की हँसी हँसेगी ।"[3] "मेरी यूरोप यात्रा" में दिनकर

---

1. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 147
2. देश विदेश - दिनकर - पृ. 5
3. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 97

ने दो एक उदाहरण देते हुए विदेशियों के चरित्र की प्रशंसा की है और भारतीयों के दुर्व्यवहार का परिचय भी दिया है । "जब बानजीन को यह मालूम हुआ कि हम पोलिश सरकार के अतिथि होकर वारसा जा रहे हैं, उस बेचारे ने काफी तत्परता दिखायी । एक ओर तो उसने जहाज़ के कैप्टन को फोन किया, दूसरी ओर बाल्जियम स्थित पोलिश डेलिगसी को । पता चला कि भारत की भी एक डेलिगसी ब्रुसेल्स में है । इसलिए मैं ने भी अपनी डेलिगसी को फोन किया । किन्तु फोन पर अपनी डेलिगसी से जो बातें हुईं, उनसे इस विषय में कोई सन्देह नहीं रह गया कि हमारा देश भारत के बाहर होने पर भी भारत ही रहता है ।"[1]

दिनकर ने अपनी चीनी यात्रा के विवरण में अनेक प्रसंगों में चीन और भारत की तुलना की है । जैसे "भारत में लड़कियाँ जब कालेज जाने लगती हैं, तब गरीब माता-पिता भी उनकी नफासत पर हैसियत के मुताबिक खर्च करते हैं । किन्तु चीन के विश्व विद्यालयों में नाफसत की प्रवृत्ति बिलकुल है ही नहीं ।"[2] या "प्रधानमंत्री के घर पर मैं समय से 15 मिनट पहले ही पहुँच गया । घर मँझोले आकार का था और तड़क-भड़क उसमें कुछ भी नहीं थी । बरामदा भी मामूली-सा ही था और उसी में कुछ कुर्सियाँ और मेज़ करीने से रखी हुई थीं । अपने देश में मंत्रियों के घर में जो रंग-बिरंगे परदे झूलते हैं, कालीनें बिछी होती हैं, चू-एन-लाई के घर पर यह सब कुछ नहीं था । चीन की किफायतसारी और व्यावहारिक बुद्धि का असर एक बार और ताज़ा हो गया ।"[3] चीन में घूमते हुए दिनकर ने यह भी नोट कर लिया कि वहाँ

---

1. देश विदेश - दिनकर - पृ. 48
2. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 109
3. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 115

एक ही नाम-पट चीनी के सिवा किसी अन्य भाषा में दिखाई नहीं पड़ता । चीन की भाषा-नीति की प्रशंसा करनेवाले दिनकर ने भारत की भाषा-नीति पर कठोर व्यंग्य भी किया है - "जो विदेशी चीनी नहीं जानता, वह खिड़कियों की राह से चीन को नहीं देख सकता है । उसे तो उसी दरवाज़े से जाना होगा, जिस दरवाज़े से चीनी लोग उसे ले जाना चाहेंगे । राजनीतिक दृष्टि से यह बहुत बड़ी सुरक्षा की गारण्टी है । एक हम हैं जो अपना आँगन छोड़कर अपना सारा काम दुनिया के प्लाटफार्म पर करते हैं । नतीजा यह है कि हमारे रहस्य हमारे अपने किसान और मज़दूर नहीं समझ पाते, मगर वही रहस्य विदेशियों की समझ में आसानी से आ जाता है ।"[1]

दिनकर का व्यापक और उदार दृष्टिकोण विभिन्न देश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के प्रत्यंकन की ओर जागरूक रहा है । पोलैन्ड में घूमते समय वहाँ की अर्थव्यवस्था दिनकर को बहुत विचित्र लगी थी । उन्होंने उस अर्थव्यवस्था के उत्कर्ष विधायक तत्त्वों की ओर संकेत किया है । "पोलैन्ड की अर्थ-व्यवस्था में दो सिद्धान्त हैं जो बहुत अच्छे हैं । एक तो नियत कार्य-समय से फाज़िल करने के लिए विशेष प्रोत्साहन, जिससे प्रत्येक सुयोग्य व्यक्ति का सारा समय काम में लगा रहे । और दूसरा, उन कामों के लिए अधिक वेतन देना जो स्वास्थ्य के लिए बुरे और जीवन के लिए संकटपूर्ण हैं ।"[2] दिनकर रजिमेंटेशन के विरोधी हैं । फिर भी पोलैन्ड में जो राष्ट्रीय अनुशासन है उससे दिनकर बहुत प्रभावित हुए । उन्होंने इस राष्ट्रीय अनुशासन की मुक्त-कंठ प्रशंसा की है । "लोग जो भाषा नहीं जानते उसमें दिये गये भाषणों को भी धीरज और शांति के साथ सुनते हैं । यह सच्चा राष्ट्रीय

---

1. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 136
2. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 108

अनुशासन है । यह सच्चा अन्तरराष्ट्रीय सौजन्य है ।"[1]

दिनकर ने अपनी जर्मनी-यात्रा के विवरण में बर्लिन की खंडित विभूति का वर्णन किया है । उनका सूक्ष्म-दृष्टि पश्चिम और पूर्वी जर्मनी की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को समझने में सफल हुई है । दिनकर के शब्दों में - "बर्लिन के दो टुकड़े हैं । एक टुकड़े में पूँजीवाद की दूकान है और दूसरे में साम्यवाद की । पूँजीवाद की दूकान में रौनक है, धन और माल की अधिकता है, आने जानेवालों की भीड़ हैं, खुले जीवन का उत्साह और उमंग है । साम्यवाद की दूकान में संयम है, कडाई है, वैराग्य का वातावरण है और भीड यहाँ कम है ।"[2] चीन और रूस दोनों राज्यों ने साम्यवाद को स्वीकार किया है । लेकिन उन दोनों राज्यों की समाज-रचना के आधार भिन्न हैं । चीन की पुरानी परंपरा और सभ्यता के वर्णन करते हुए दिनकर ने चीन और रूस की समाज-रचना के मूल अन्तर को स्पष्ट किया है । "रूस का सारा ज़ोर मज़दूरों पर था, मगर माओ की सेना के आधार किसान थे । क्रान्ति का समर्थन यदि किसानों ने नहीं किया होता, तो चीन में क्रान्ति सफल नहीं होती ।"[3] चीन में धर्म विश्वास की स्वाधीनता नष्ट नहीं हुई है । फिर भी सरकार का लक्ष्य धर्म का उन्मूलन करना ही है । चीन की धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन करते हुए दिनकर ने एक स्थान पर लिखा है - "सरकारी नीति यह है कि मन्दिर के अहाते के भीतर कोई भी नास्तिक धर्म के विरुद्ध प्रचार नहीं कर सकता । किन्तु मन्दिर के अहाते के बाहर महन्थ भी धर्म का प्रचार नहीं कर सकते । सरकार मंदिरों की सहायता देती है, यह पुराने लोगों को खुश रखने की नीति है । नहीं तो भीतर से सरकार धर्म का उन्मूलन ही कर रही है ।[4]

---

1. देश विदेश - दिनकर - पृ. 56
2. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 78
3. " " - पृ. 146
4. " " - पृ. 149

दिनकर ने विभिन्न देशों के उत्कर्ष-विधायक तत्त्वों का वर्णन भी यत्र-तत्र किया है । पोलैन्ड ने साम्यवाद को स्वीकार किया है । दिनकर की दृष्टि में इस साम्यवाद ने पोलैन्ड की उन्नति एवं विकास के कार्य में बड़ी सहायता की है । पोलैन्ड में साम्यवाद की उपलब्धियों का वर्णन करते हुए दिनकर ने लिखा है - "साम्यवाद की दो उपलब्धियाँ यहाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं । इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में पूर्व और पश्चिम के भेद नहीं हैं । साम्यवाद के घेरे में आनेवाला देश आपस में अत्यंत सामीप्य का अनुभव करते हैं और साम्यवाद ने बेकारी तथा वर्गभेद का उन्मूलन तो कर ही दिया है ।"[1]

चीन के उत्कर्ष का चित्र भी देखने लायक है । दिनकर के शब्दों में -"चीन में नयी मानवता का जन्म हो रहा है । उसे झुठलाने की कोशिश बेकार है । चोरी नहीं, बदमाशी नहीं, अपहरण और शोषण नहीं । है तो केवल प्रेम है, स्वास्थ्य है, कसरत और व्यायाम है । फूल हरियाली, पार्क, मंच, नृत्य, गान, कला और साहित्य सब पर अधिकार खुरदरे हाथवालों का । रईस खत्म है । कमकर आज़ाद हैं । कमकरों की संख्या विशाल होती ही है । उनकी भीड में रईसों का पता ही नहीं चलता है ।"[2]

दिनकर ने विभिन्न देशों के परिदर्शन के संदर्भ में वहाँ की पारस्थितियों का अध्ययन करते हुए उनकी आलोचना भी की है । पश्चिम यूरोप के संबंध में लिखी हुई ये बातें उनकी निर्भीक आलोचना का स्पष्ट प्रमाण है - "स्थूल आनन्द भोगते-भोगते वह इस धरातल पर आ गया है कि आनन्द का स्वाद लेने को भी उसे आघात चाहिए । यही आघात लोगों को जुर्म और व्यभिचार की कहानियों से प्राप्त होता है जिन्हें वे बड़े ही चाव से पढ़ते हैं ।

---

1. देश विदेश - दिनकर - पृ. 65
2. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 158

चित्रकार, अपने ढंग पर मनुष्य को यही आघात देते हैं और इसी आघात की सामग्री यहाँ के नाइट क्लबों में भी मौजूद हैं ।"[1]

दिनकर के सौन्दर्य प्रेम, मानवतावादी दृष्टिकोण और करुणामय भावुक हृदय उनके यात्राविवरणों में व्यक्त हुए हैं । जर्मनी के विभाजन का वर्णन करते समय वास्तव में दिनकर का भावुक हृदय ही बोल उठता है । बडी आत्मीयता के साथ उन्होंने विभाजन के प्रत्याघातों का वर्णन किया है - "केवल देश और शहर ही नहीं बँटे हैं । कितने ही परिवार बँट गये हैं, कितने ही रिश्ते बिना टूटे टूट गये हैं । दीवार की दोनों ओर तडपते हुए हृदय हैं, जिन्हें हिटलर अपनी क्रूरता की कहानी कहने को छोड गया है ।"[2] एक दूसरा वर्णन भी देखिए जो दिनकर के उदार मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है - "हिटलर अपना ताण्डव करके चला गया । रूज़वेल्ट, स्टालिन और चर्चिल भी जा चुके हैं । बच गयी है जनता, जन्मी है नयी जनता, जो उन महापुरुषों के न्याय का कुपरिणाम भोग रही हैं ।"[3] दिनकर विश्वमानवता के समर्थक हैं । उनकी दृष्टि में विश्व-एकता की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक देश के लोग अन्य देशों की भाषाओं से परिचित हो जायें । बिना भाषा के प्रचार से वैश्विक एकता की कल्पना निरर्थक है । "फिर भी यह सत्य है कि विश्व की एकता तभी संभव होगी, जब हर देश में हर भाषा के जानकार अधिक से अधिक संख्या में तैयार हो जायेंगे ।"[4]

---

1. देश विदेश - दिनकर - पृ. 120
2. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 79
3. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 80
4. देश विदेश - दिनकर - पृ. 69

दिनकर ने अपनी यात्राओं का उपयोग कर विभिन्न देशों में भारत और भारती के संदेश को प्रसारित किया । उनके यात्राविवरणों में भारत के प्रति उनकी बड़ी आस्था दिखाई पड़ती है । भारत का आदर्श क्या होगा ? भारत अन्य देशों के सामने किस आदर्श को लेकर खड़ा होगा? दिनकर ने इन सभी प्रश्नों का जवाब देने का प्रयास किया है । "हम अपनी क्रांति गाँधीजी के नेतृत्व में पूरी कर चुके हैं । वह श्वेत क्रांति थी और आगे भी इसी श्वेत क्रांति के फल प्रकट होते रहेंगे । भारत पहुँचकर चाहे तो कम्यूनिज़्म अहिंसा का वरण कर लेगा अथवा हमीं अहिंसा के द्वारा ये परिणाम प्राप्त कर लेंगे जिनके लिए कम्यूनिस्टों को हिंसा, पाप, मार-काट, तानाशाही, दलन, बंधन और अत्याचार का सहारा लेना पड़ा है ।"[1] दिनकर का विश्वास है कि संस्कृति की जो विरासत भारत के पास है वैसी विरासत किसी और देश के पास नहीं । भारत अपनी गौरवमयी संस्कृति के बल पर आगे बढ़ सकेगा । उनके शब्दों में - "भारतवासियों में संसार का नंबर एक देश बनने की सारी खूबियाँ मौजूद हैं । फिर भी कोई बात है जो उनकी खूबियों को उभरने नहीं देती । मगर ये खूबियाँ उभर कर रहेंगी और भारत को संसार के प्रथम श्रेणी के देशों की पंक्ति में प्रवेश करने से कोई शक्ति रोक नहीं सकेगी । व्यक्ति टूटते हैं तो टूटें, दल बिखरते हैं तो बिखर जायें, पद्धति को भी टूटना हो तो वह टूट जाय, मगर हिन्दुस्तान आगे निकलनेवाला है ।"[2]

दिनकर की डायरी

डायरी साहित्य आधुनिक युग की उपज है । वह सर्वथा स्वतंत्र और नवीन साहित्यिक विधाओं में से है । डायरी लेखक की अनुभूतियों,

---

1. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 114 - 115
2. मेरी यात्रायें - दिनकर - पृ. 169-170

उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं, उनके विचारों और विभिन्न तथ्यों की अभिव्यक्ति का माध्यम है । डायरी साहित्य में व्यक्ति सापेक्षता अधिक रहती हैं । डायरी के माध्यम से लेखक अपने मन की गूढ़ अनुभूतियों को सहजता तथा निष्पक्ष भाव से अभिव्यक्त कर सकते हैं । लेकिन खेद की बात है कि हिन्दी में इस विधा का पर्याप्त विकास अभी तक नहीं हुआ है । हिन्दी के जिन साहित्यकारों ने इस विधा की गुंजाईश समझी है और इसके विकास के कार्य में महत्वपूर्ण योग दिया है, उनमें श्री हरिशंकर परसाई, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, दूधनाथ सिंह, अज्ञेय प्रकाश, लक्ष्मीकांत वर्मा, दिनकर, बच्चन, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध आदि के नाम विशेष स्मरणीय हैं ।

श्री रामधारी सिंह दिनकर की डायरी "दिनकर की डायरी" के नाम से सन् 1973 में प्रकाशित हुई । दिनकर की यह डायरी सन् 1961 से लेकर 1972 तक के उनके जीवन की डायरी है जिसमें उनके व्यक्तित्व का बिंब, साहित्यक एवं राजनीतिक गतिविधियों की झलक और उनके विचार मिलते हैं । दिनकर ने अपनी इस डायरी को डायरी और जर्नल का मिश्रण कहा है । उन्हीं के शब्दों में - "मैं जो डायरी प्रकाशित कर रहा हूँ, वह डायरी और जर्नल दोनों का मिश्रण है ।"[1]

दिनकर की डायरी में एक ओर दैनंदिन जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का समावेश हुआ है तो दूसरी ओर उनके विचारों और टिप्पणियों का । लेकिन इसमें जीवनवृत्त बहुत कम और टीका-टिप्पणी अधिक हैं । इसलिए दिनकर के व्यक्तित्व का पूरा बिंब इस डायरी में नहीं उभरता । शायद दिनकर यह चाहते भी नहीं थे कि अपना गुण-दोष सहित सहज स्वाभाविक रूप

---

1. दिनकर की डायरी (भूमिका) - दिनकर

डायरी से उभरकर आयें । दिनकर ने डायरी की भूमिका में सूचना दी है कि ऐसी अनेक बातों को उन्होंने डायरी में स्थान नहीं दिया जिसे लेकर येंयें-पेंपें हो सकती थीं । उन्होंने यह भी सूचित किया है कि तटस्थता का अभाव कभी कभी खटकता होगा । "डायरी हो या आत्मकथा आदमी अपने सही रूप को उसी तरह आँक नहीं सकता, जिस तरह उसे कोई तटस्थ व्यक्ति आँक सकता है । जीवन में हम बहुत से गलत काम करते हैं, लेकिन इसका ध्यान हमें बराबर रहता है कि वे गलतियाँ हमारे लेखों में न उठ जायें । हम हर समय कोई न कोई मुखौटा लगाकर चलते हैं ।"[1]

दिनकर की डायरी में जीवन के चुने हुए प्रसंगों का समावेश हुआ है । दिनकर के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं, उनके अंतरंग संघातों, विचारों, साहित्य और साहित्यकार से संबंधित मान्यताओं, आध्यात्मिक विश्वासों, राजनीतिक मूल्यों और परिस्थितियों की अभिव्यक्ति इस डायरी में हुई है । दिनकर एक सूक्ष्म द्रष्टा, सृजनशील भावुक और मानवतापेमी कवि हैं । इस डायरी में दिनकर के कलाकार के सृजनशील क्षणों का परिचय एवं हृदय-मस्तिष्क का द्वन्द्वात्मक बोध भी प्रस्तुत हैं । केवल बारह वर्षों की अवधि की घटनाओं को इस डायरी में स्थान दिया गया है । फिर भी हमारा विश्वास है, यह डायरी दिनकर के व्यक्तित्व एवं विचारों की पहचान का माध्यम बन सकी है ।

दिनकर की डायरी से उनके व्यक्तित्व का पक्ष यह सामने आता है कि वे एक समर्पित गृही, लोकप्रिय कवि और अध्यात्मप्रवण व्यक्ति थे । वे अपने घरवालों के प्रति सदा चिन्तित थे । उन्होंने अपने व्यस्त जीवन

---

1. दिनकर की डायरी (भूमिका) - दिनकर

में परिवार को कभी विस्मृत नहीं किया । दिनकर के शब्दों में - "लडके का जब ब्याह होता है, माँ को ऐसा मालूम होता है कि कोई अजनबी औरत बेटे को छीन कर मुझसे अलग लिये जा रही है । मैं ने बहुत चाहा था कि मेरी माँ को ऐसा भाव न सतावे । मगर माँ को ऐसे भाव सताने लगे । और इधर पत्नी को भी शिकायत रहने लगी कि मैं उसकी ओर खूब मुखातिब नहीं हूँ । स्त्री के प्रति मैं थोडा विमुख था भी । असल में कुसंस्कारों के कारण मुझे उस समय भी भूख महसूस नहीं हुई, जब मैं भूखा था । फिर यह भी था कि मेरा सारा ध्यान परिवार पर केंद्रित था ।"[1] दिनकर अपने परिवार की बिगडी हुई स्थिति देखकर कभी कभी बहुत निराश हो जाते थे । डायरी में गृह-कलह की सूचना उन्होंने दो-तीन जगह पर की है । जैसे - "गृह-कलह के दाह से भस्म हो रहा हूँ । रक्त चाप रोज़ बढ़ता है । रात में नींद नहीं आती ।"[2] अपने परिजनों की चिंता से दिनकर व्याकुल हो उठते थे । अपने पुत्र रामसेवक की बीमारी को कष्टसाध्य समझकर वे बहुत दुःखी हो गये । रामसेवक की मृत्यु हुई तो दिनकर ने डायरी में लिखा - "रामसेवक पहले मेरे पुत्र थे । जब घर का बोझ संभालकर उन्होंने मुझे निश्चिंत कर दिया, वे मेरे पिता हो गये और उन्हीं के भरोसे मैं देश-विदेश में घूमता रहा । फिर 63 के जून से 66 के दिसंबर तक उन्होंने मुझे घोर कष्ट दिया । फिर 66 के दिसंबर में फिर मेरे पुत्र हो गये और मेरी गोद में आकर बैठ गये । जब तक कलह था, वे जीवित रहे, कलह शांत हुआ नहीं कि वे चल बसे ।"[3] डायरी के विभिन्न प्रसंगों से यह स्पष्ट होता है कि जीवन के अंतिम वर्षों में भी दिनकर अपने परिवार की चिन्ता से दुःखी थे ।

---

1. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 250
2. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 86
3. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 109

अध्यात्म में दिनकर की गहरी रुचि थी । अपने युग के अनेक सिद्ध महापुरुषों के संपर्क में आने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ था । दिनकर ने बड़ी आत्मीयता से उन प्रसंगों का वर्णन अपनी डायरी में किया है । सिद्ध महापुरुषों से मिलने के जो भी अवसर प्राप्त हुए, उन्हें दिनकर अपने जीवन के अपूर्व क्षण समझते थे । अध्यात्मवादी दर्शन की प्रशंसा करते हुए दिनकर ने लिखा है - "जिन देशों में अध्यात्मवादी दर्शन जीवित है, वहाँ वैयक्तिक स्वतंत्रता है, भाँति-भाँति के मत हैं, अनेकान्त हैं, स्याद्वाद है और जीवन वहाँ बहुरंगी है । जिन देशों में दर्शन समाप्त हो गया, वहाँ जीवन एक साँचे में ढल गया है या ढाला जा रहा है ।"[1]

दिनकर के व्यक्तित्व के अनुज्ज्वल पक्ष की भी अनेक झलकियाँ इस डायरी में मिलेंगी । उन्होंने स्वयं लिखा है - "दिनकर के दोष लिखता हूँ । वह भागती हुई नौकरी को दांत से पकड़ रहा है । अपना पौरुष भूल गया है ।"[2] दिनकर में पद छूटने की आशंका और पद पाने की आकुलता थी । उनके शब्दों में - "इन्दिरा जी ने वहाँ दिल्ली में क्या आर्डर दिया है, पता नहीं । मन में यहाँ साहस ज़्यादा जगा है । देखें भगवान किधर ले जाते हैं ।"[3] अन्यत्र उन्होंने लिखा है - "मन में राज्यसभा का लोभ अभी भी बना हुआ है । लेकिन जीवन में आकस्मिक कुछ भी नहीं होता । सब ईश्वर की इच्छा से होता है ।"[4] दिनकर की दूसरी कमज़ोरी नारियाँ जान पड़ती हैं । उन्होंने

---

1. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 150
2. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 200
3. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 203
4. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 275

लिखा है - "चित्त को बाबा मुक्तानंद के चरणों से बाँध दिया है । किन्तु जीवन में आयी हुई नारियाँ मन में घूमती रहती हैं ।"[1] दिनकर के आत्मसंघर्ष के चित्र भी इस डायरी से उपलब्ध होते हैं । जैसे - "क्षण-क्षण सफलता की खोज और कीर्ति की कामना, यह भी मनीषी धर्म के विरुद्ध है । गरीबी और धर्म बराबर साथ-साथ जीते हैं । समाज को चुनौती वे ही दे सकते हैं जो गरीबी और असुरक्षा के लिए तैयार हों । मैं शायद मनीषी धर्म से गिर रहा हूँ । गरीबी अब भी कबूल है । लेकिन असुरक्षा से भय लगने लगा है । माथे पर टोकरी भर अनाथ बच्चे हैं । उन्हें धोखा नहीं दे सकता ।"[2]

दिनकर आधुनिक युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में विशिष्ट स्थान के अधिकारी है । एक महान साहित्यकार की डायरी होने के नाते दिनकर की डायरी में स्वभावतः उनके साहित्य विषयक विचार सबसे अधिक मिलते हैं । साहित्य एवं साहित्यकारों पर दिनकरजी के विचार स्पष्ट एवं मौलिक रहे हैं । साहित्यकार के उत्तरदायित्व पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है - "साहित्यकार का पहला कर्तव्य यह है कि वह अपने विचार-स्वातंत्र्य की रक्षा करें ।"[3] दिनकर कवि और समाज को साहित्य का कारण मानते हैं । रचना के क्षण में रचनाकार समाज अथवा लक्षीभूत श्रोता की अवहेलना नहीं कर सकता । इसलिए दिनकर ने यह मान लिया है -"साहित्य का कारण कवि भी है और समाज भी । कविता की रचना दोनों मिलकर करते हैं ।"[4] दिनकर साहित्य रचना को कोई अनायास क्रिया नहीं मानते । उनके

---

1. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 224
2. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 169-170
3. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 323
4. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 252

मत में रचनात्मक प्रतिभा का मूल स्मृति में होता है । काव्य की रचना-प्रक्रिया का वर्णन दिनकर ने यों किया है - "पहले कवि चाहता है कि कविता मुझे पकड ले और जब कविता उसे पकड लेती है तब कवि से न सोते बनता है, न जागते बनता है । अधूरी कविता क्षण-क्षण उसके दिमाग में सुई चुभोती रहती है और जब तक कविता पूरी न हो जाय, कवि दिन रात परेशानी में पडा रहता है ।"[1]

दिनकर कविता को निश्चल मन की सृष्टि मानते हैं । उनके मत में कविता वही श्रेष्ठ है जो प्रतिध्वनि उत्पन्न करती है या आत्मा की शांति को भंग करती है । "ऊँची कविता का लक्षण है कि वह प्रतिध्वनि उत्पन्न करती है, दूसरों के भीतर प्रेरणा जगाती है और अन्य कवि से लगभग वैसी ही कविता लिखाती है जैसी वह स्वयं है ।"[2] इसी तरह "कविता का बडा लक्षण यह है कि वह आत्मा की शांति को भंग करे । आत्मा के शांति भंग में एक आनंद है, जिसे सुसंस्कृत व्यक्ति ही जानता है, जिसके हृदय में विचारों के हल चल चुके हैं ।"[3] दिनकर के मत में श्रेष्ठ कला श्रेष्ठ कलाकार से ही निःसृत होती है । उनके शब्दों में - "कला की बडी होने की शर्त है, कलाकार बडा हो । पवित्र भी वही कला हो सकती है, जिसे पवित्र कलाकार ने सिरजा हो ।

दिनकर की इस डायरी से साहित्यिकवादों तथा अन्यान्य साहित्यकारों के विषय में पर्याप्त सामग्री मिलती है । दिनकर ने नई कविता पर विचार करते हुए एक स्थान पर लिखा है - "नई कविता अत्यन्त गुह्य है,

---

1. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 1
2. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 91
3. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 257
4. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 231

उनके लिए भी, जो सहानुभूति के साथ उसे समझना चाहते हैं और उनके लिए भी जो स्वयं नये ढंग के कवि हैं ।"[1] दिनकर ने देशी-विदेशी अनेक साहित्यकारों पर भी अपना विचार व्यक्त किया है । तुलसीदास, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, भवानीप्रसाद मिश्र, अमृतराय, धर्मवीर भारती, यशपाल, वीरेन्द्रकुमार जैन, रामकुमार वर्मा, अज्ञेय, मोहन राकेश, बच्चन, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, वेणुगोपाल, वेनापुरी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पुश्किन, टालस्टायी, बर्नाडशॉ, नीत्से, बोदलेयर, आदि भारतीय एवं पाश्चात्य जगत के अनेक महान विभूतियों के संबंध में दिनकर ने पर्याप्त टिप्पणियाँ की हैं ।

प्रस्तुत डायरी में दिनकर की काव्य-प्रेरणा, उनकी रचना-प्रक्रिया और उनके अपने काव्य के विषय में भी पर्याप्त विचार मिलते हैं । कविता उन्होंने क्यों लिखी, इसके विषय में उनका कहना है - "शायद यह बात कि भीतर से कुछ निकलना चाहता था और वह केवल कविता बनकर ही निकल सकता था ।"[2] अपनी रचना-प्रक्रिया के संबंध में उन्होंने लिखा है - "मगर कविता पर मेरा इतना बस तो नहीं है कि उसे जिधर चाहूँ उधर मोड सकूँ । कविता जिधर जाना चाहती है, उसे उधर ही जाने देता हूँ ।"[3] दिनकर ने स्थान-स्थान पर अपने काव्य-ग्रंथों पर टिप्पणियाँ भी लिखा हैं । जैसे "उर्वशी में जितना कहा गया है उससे शायद कुछ अधिक कहा जाना चाहिए था । लेकिन उस अकथ्य की भाषा उर्वशी के पास नहीं, क्योंकि वह मेरे पास नहीं है । मैं सिर्फ यह इंगित करना चाहता था कि प्रकृत जीवन बिताकर भी आदमी सन्त हो सकता है ।"[4] एक दूसरे स्थान पर

---

1. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 25।
2. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 25।
3. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 78
4. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 142

उन्होंने लिखा है - "मेरी उर्वशी में पुरूखा के भीतर दोनों प्रवृत्तियाँ हैं । वह ऊँची चीज़ों के लिए बेचैन है, वह निम्न सुखों के लिए भी बेकरार है । और उर्वशी जानती है कि पुरूखा का उच्च रूप ही विजयी होगा । पुरूखा में जो जीवधारी है, उसपर उर्वशी न्योच्छावर होती है । उसके भीतर जो रहस्य-चिंतक है, उससे उर्वशी घबराती है । उर्वशी स्वर्ग नहीं चाहती, मिट्टी के सुखों का आलोडन चाहती है । यह अनुभूति मुझे जीवन से ही प्राप्त हुई है । पुरूखा के भीतर मैं अपना प्रतिबिंब प्रत्यक्ष देखता हूँ । किन्तु उर्वशी ? वह आधी सत्य, आधी कल्पना है या हो सकता है कि सत्य की मात्रा तीन चौथाई हो ।"[1]

दिनकर ने धर्म, विज्ञान, प्रेम, काम, नर-नारी समस्या आदि विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं । धर्म के संबंध में दिनकर का कहना है - "धर्म के विविध अर्थ हैं । मैं मानता हूँ कि धर्म उस विश्व के अस्तित्व में विश्वास का नाम है जो दृश्य नहीं अदृश्य है ।"[2] या "व्यक्ति और समाज के जो कार्य इन्द्रियों से नहीं हो पाते, उनके लिए धर्म है । धर्म भगोड़ों के लिए नहीं है । वह भी संघर्ष के लिए है ।"[3] या "धर्म का ध्येय मन को माया से बाहर ले जाना है । यही भूल है । धर्म का ध्येय प्रकृति और ईश्वर के बीच एकता की अनुभूति है ।"[4] दिनकर ने काम और धर्म के परस्पर संबंध पर भी विचार किया है । उनकी दृष्टि में काम और धर्म परस्पर विरोध नहीं है । "काम आध्यात्मिक विकास का बाधक इसलिए समझा जाता है कि अध्यात्म और प्रकृति को हमने परस्पर भिन्न मान लिया है । अध्यात्म को हमने उस दृष्टि

---

1. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 187
2. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 134
3. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 189
4. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 145

से समझा है कि वह क्या नहीं है, उस दृष्टि से नहीं कि वह क्या है । पिछली दृष्टि से देखने पर अध्यात्म प्रकृति का विरोधी नहीं है, न काम अध्यात्म का शत्रु है ।"[1] काम और अध्यात्म के बीच संतुलन लाने की बात भी दिनकर ने सूचित की है । "काम अध्यात्म के बीच संतुलन लाने से आदमी आधुनिक सन्त बनता है ।"[2] काम के धरातल से अध्यात्म के धरातल तक पहुँचने की प्रक्रिया का संकेत भी उन्होंने दिया है । "काम की उत्तेजना दो व्यक्तियों को पिघलाकर एक कर देती है, यानी ऐसी स्थिति हो जाती है कि वे बहकर एक दूसरे में समा जाते हैं । उस समय शारीरिक वासना शारीरिक नहीं रहती, वह रूपान्तरित होकर दिव्य प्रेम बन जाती है, जिसकी हम केवल कल्पना कर सकते हैं ।"[3]

प्रेम और काम संबंधी विचार भी दिनकर की डायरी में यत्र-तत्र दिखाई पडते हैं । दिनकर प्रेम और काम को एक नहीं मानते । फिर भी उनके वर्णन से कभी-कभी यह सन्देह भी हो सकता है कि वे दोनों को एक मानकर चलते हैं । "वासना को शब्द और भाषा साहित्य से मिली है । अगर साहित्य ने प्रेम पर इतनी बातें नहीं कही होती, तो कम लोग इस जंजाल में फँसते ।"[4] प्रेम और काम संबंधी दिनकर के विचार इस डायरी में सुन्दर सूक्तियों के रूप में उपलब्ध हैं । जैसे - "जब प्रेम मरता है, तब बची हुई चीज़ ग्लानि होती है, पश्चात्ताप होता है ।"[5] "जिसे प्यार करना छोड दिया, उसे फिर से प्यार करना मुश्किल काम है ।"[6] "प्रेम और सतर्कता ये साथ नहीं चल

---

1. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 141
2. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 167
3. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 122
4. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 94
5. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 82
6. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 83

सकते । जैसे जैसे प्रेम में वृद्धि होती है, सतर्कता खत्म होने लगती है ।"[1] "मन का सेक्स बहुत ही खराब चीज़ है, तन का सेक्स उतना बुरा नहीं मान सकता"[2] आदि ।

दिनकर ने नर-नारी समस्या पर विचार करते हुए नारी को नर के समान मानने का उपदेश दिया है । "नारी के प्रति हमारा सच्चा प्रेम-निवेदन यह होना चाहिए कि हम उसे समान मानें, मनुष्य मानें और यह सोचना भूल जायें कि नारी चाँदनी है, नारी स्वप्न है, नारी गुलाब और जुही है, वह आधी देवी और आधी कामिनी है । सेक्स और स्वप्न को मिलाकर नारी की रोमांटिक कल्पना रोमान्टिक लोगों ने की थी । किन्तु नारी का असली रूप वह है जिसे या तो मार्क्स ने देखा था या गाँधी ने ।"[3] लेकिन दिनकर फैमिनिस्ट आन्दोलन वाली औरतों के इस कथन से सहमत नहीं है कि औरत-मर्द का भेद प्रकृति ने नहीं मर्दों की रची हुई सभ्यता ने की है । दिनकर की दृष्टि में स्त्री-पुरुष का भेद प्रकृति ने ही किया है । उनके शब्दों में - "अगर नर-नारी का भेद सभ्यता का किया हुआ है, तो इस सभ्यता को औरतें बर्दाश्त क्यों करती हैं ? असली कारण यह है कि जीव विज्ञान की दृष्टि से औरतों को प्रकृति ने जिस तरह का बना दिया, वे वैसी ही रहेंगी । वे पुरुष को प्यार करने को बनी हैं, पुरुष के द्वारा प्यार किये जाने को बनी हैं । यह स्वभाव नहीं बदलेगा । सामाजिक आचार बदल सकते हैं, मगर बायलाजिकल प्रवृत्ति नहीं बदलेगी । औरतें कहती हैं कि फ्रायड ने औरतों को सहानुभूति से नहीं देखा ।

---

1. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 84
2. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 108
3. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 134

इसलिए कि फ्रायड ने कहा था "एनटामी इज़ डिस्टिनी ।" शरीर रचना में जो भेद है उसी ने औरत को मर्द के अधीन कर लिया ।"[1]

दिनकर की डायरी में राजनीतिक गतिविधियों की पूर्ण झलक दिखाई पड़ती है । उन्होंने जवाहरलाल नेहरू, डा. राजेन्द्रप्रसाद, डा. राधाकृष्णन, श्रीमति इन्दिरा गाँधी जैसे अनेक महान व्यक्तियों के चरित्र का विश्लेषण किया है । साठ के बाद की राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख इस डायरी में सर्वत्र मिलता है । इसके अतिरिक्त दिनकर ने भाषा की समस्या, विश्व शांति आदि बातों पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं । इस डायरी के कुछ पृष्ठों में दिनकर की रूस एवं लंदन की यात्रा का रोचक वर्णन भी दिया गया है ।

---

1. दिनकर की डायरी - दिनकर - पृ. 199

अध्याय - चार

दिनकर की अन्य गद्य रचनाएँ

प्रस्तुत अध्याय में हमने दिनकर की सांस्कृतिक और संस्मरणात्मक रचनाओं का विशेष अध्ययन किया है । इसके साथ ही साथ उनके गद्य काव्य, रेडियो रूपक और बाल साहित्य का विवेचन भी किया है ।

दिनकर की सांस्कृतिक रचनाएँ

संस्कृति मानव के जीवन मूल्यों का पुँजीभूत रूप है । मनुष्य के कुछ आन्तरिक गुण, भावना या विचार-पद्धति मानव-समाज के प्रत्येक क्रिया-कलाप तथा आचार-विचार को प्रभावित करते रहते हैं । जब कोई देश या जाति इन गुणों को अपनी जीवन-परंपरा द्वारा मानव के व्यक्तित्व के मूल्यांकन के स्थायी आधार के रूप में प्रतिष्ठित करती है, और उसका सफल निर्वाह करती है तब उसके जीवन का स्वरूप, धारणा और आदर्श मूर्तिमान हो उठता है । अपने इन जीवन-मूल्यों के वैशिष्ट्य के कारण विश्व की विभिन्न जातियों के बीच उस देश या जाति के व्यक्तित्व को साफ झलकनि मिलती है । वास्तव में जीवन मूल्यों का यही समूह उसकी संस्कृति है । एक दूसरे शब्दों में कहें तो किसी देश या जाति के श्रेष्ठतम संस्कारों का दूसरा नाम उसकी संस्कृति है । प्रत्येक देश या जाति की संस्कृति उसके विशिष्ट भौगोलिक या ऐतिहासिक परिवेश में रूपायित होती है और इसलिए उसकी संस्कृति और उसके जीवन मूल्य भिन्न हो सकते हैं । अतः संस्कृति की एक सुव्यक्त परिभाषा देना बहुत मुश्किल है ।

हमने देखा कि संस्कृति मनुष्य के श्रेष्ठतम संस्कारों का, उनके उदात्त जीवन मूल्यों का पुंजीभूत रूप है । मनुष्य के जीवन में संस्कृति की महत्ता निर्विवाद है । प्रत्येक मनुष्य, विशेषत: प्रत्येक साहित्यकार अपने देश की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवेशों से प्रभावित होता ही है । अत: उसकी रचनाओं में उसके सांस्कृतिक विचार सहज रूप से प्रस्फुटित होते रहते हैं । श्री रामधारी सिंह दिनकर भारतवर्ष के महान कवि ही नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति के प्रतीक और आख्याता हैं । उनकी प्राय: सभी रचनाओं में उनकी सांस्कृतिक मान्यताएँ स्वत: ही अनुस्यूत हो गयी हैं । दिनकर की रचनाओं में उनकी सांस्कृतिक दृष्टि एवं सांस्कृतिक ज्ञान की अपरिमेयता एवं अगाधता का परिचय प्राप्त होता है । मूल्यों के संक्रमण के युग में दिनकर ने भारत की हज़ारों साल पुरानी परम्परा को आत्मसात् कर, अतीत के उज्ज्वल इतिहास को समझकर और वर्तमान युग के जीवन बोध को पचाकर जो कुछ लिखा है वह अवश्य कालजयी सिद्ध हुआ है । दिनकर की साहित्यिक अभिरुचि एवं प्रवृत्तियों से जो तत्त्व उभरकर सामने आता है वह है उनका संस्कृति-प्रेम । उन्होंने संस्कृति की परिभाषा, पहचान-विश्लेषण, स्वरूप-निर्धारण, भारतीय संस्कृति के उत्थान-पतन की समस्त सरणियों का चित्रांकन आदि के संदर्भ में कुछ-न-कुछ अवश्य लिखा है । संस्कृति के विषय में उनकी धारणायें बडी ही स्पष्ट एवं उदार हैं ।

संस्कृति से संबंधित दिनकर की रचनाओं में "संस्कृति के चार अध्याय", "भारत की सांस्कृतिक कहानी", "हमारी सांस्कृतिक एकता", "भारतीय एकता" आदि प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त "रेती के फूल", "वेणुवन" और "वट-पीपल" के कुछ निबंधों में भी दिनकर की संस्कृति-संबंधी मान्यताओं की अभिव्यक्ति हुई है । उनकी ये रचनाएँ उनके सारे जीवन दर्शन का निचोड हैं । लगता है, दिनकर ने अपने जीवन की ऐतिहासिक संपत्ति को अपनी

संस्कृति-संबंधी रचनाओं में सीमित किया है । दिनकर ने जितना साहित्य और उसकी समस्याओं पर लिखा है, शायद, उससे भी ज़्यादा उन्होंने संस्कृति और सांस्कृतिक समस्याओं पर अपनी चिंता को व्यक्त किया है । दिनकर के अधिकांश साहित्य-लेखन का मूल स्वर सांस्कृतिक ही है । उन्होंने अपने लेखन के समूचे दौर में भारतीय संस्कृति की सही शक्ल, सही ज़मीन और सही अवधारणा को अलग से भी उठाया है और अलग से भी स्पष्ट करने की कोशिश की है । दिनकर की संस्कृति संबंधी धारणाओं के पीछे उनके जीवन भर का गहरा दार्शनिक और वैज्ञानिक अध्ययन तथा चिंतन और इतिहास तथा समाज-विकास की गतिविधियों का सूक्ष्म लेखा-जोखा है । मनुष्य के आविर्भाव से लेकर उसकी अब तक की जययात्रा के सिलसिलेदार इतिवृत्त का ज्ञान दिनकर के लिए प्रेरणास्रोत रहा है । भारत के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक जिन मनीषियों, संतों और साधकों ने विषम परिस्थितियों में भी संस्कृति को सही ज़मीन पर प्रतिष्ठित रखने के लिए संघर्ष किया है, उनके प्रति, दिनकर में जो बड़ी श्रद्धा थी वह भी, उनकी संस्कृति संबंधी रचनाओं के पीछे काम करती थी । दिनकर के संस्कृति संबंधी चिंतन के इसी विस्तृत धरातल पर खड़े होकर हम संस्कृति के संबंध में उनके दृष्टिकोण की विवृत्ति करेंगे ।

संस्कृति का स्वरूप अत्यन्त विशाल है । उसमें धर्म, दर्शन, साहित्य, राजनीति, विज्ञान, साधना, भक्ति, सभी समाविष्ट हैं । वह देश, जाति या विश्व की सर्वोच्च उपलब्धियों का सार है । दिनकर ने अपने सांस्कृतिक निबंधों में संस्कृति की व्याख्या करने का प्रयास यत्र-तत्र किया है । उनकी दृष्टि में "संस्कृति ऐसी चीज़ है जिसे लक्षणों से तो हम जान सकते हैं, किन्तु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते । कुछ अंशों में वह सभ्यता से भिन्न गुण हैं । अंग्रेज़ी में कहावत है : सभ्यता वह चीज़ है, जो हमारे पास है, संस्कृति

वह गुण है जो हममें व्याप्त हैं ।"[1] दिनकर संस्कृति को स्थायी और जीवनव्यापी मानते हैं । उनके शब्दों में - "संस्कार या संस्कृति असल में शरीर का नहीं, आत्मा का गुण है और जबकि सभ्यता की सामग्रियों से हमारा संबंध शरीर के साथ ही छूट जाता है, तब भी हमारी संस्कृति का प्रभाव हमारी आत्मा के साथ जन्म-जन्मान्तर तक चलता रहता है ।"[2] संस्कृति की व्याख्या करने का उनका यह प्रयास भी देखने लायक है - "संस्कृति सुख नहीं, सदाचार है । संस्कृति ताकत नहीं, विनम्रता है । संस्कृति संचय नहीं त्याग है । संस्कृति विजय नहीं, मैत्री है । और सबसे बढकर संस्कृति की चरम साधना अहिंसा में प्रकट होती है ।"[3] दिनकर की दृष्टि में समाज की संस्कृति ही मनुष्य की संस्कृति है । संस्कृति को मनुष्य के सारे जीवन को व्यापे हुए तत्त्व मानते हुए दिनकर ने लिखा है - "असल में संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं । इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए है, अथवा जिस समाज से मिलकर हम जी रहे हैं उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति हैं, यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं, वह भी, हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड जाते हैं । इसलिए संस्कृति वह चीज़ मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है । यही नहीं बल्कि संस्कृति हमारा पीछा जन्म-जन्मान्तर तक करती है ।"[4] दिनकर संस्कृति को उसकी व्यापक परिधि में स्वीकार करते हैं ।

---

1. हमारी सांस्कृतिक एकता - दिनकर - पृ. 1
2. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 126
3. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 67
4. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 125

"संस्कृति का स्वभाव है कि वह आदान-प्रदान से बढ़ती है । जो जाति केवल देना ही जानती है, लेना कुछ नहीं, उनकी संस्कृति का एक दिन दिवाला निकल जाता है ।"[1] भारतीय संस्कृति की प्रशंसा करते हुए दिनकर ने जो कुछ कहा है, वह उपर्युक्त बात को और भी स्पष्ट कर देगा । "अतएव सांस्कृतिक दृष्टि से वह देश और वह जाति अधिक शक्तिशालिनी और महान समझी जानी चाहिए जिसने विश्व के अधिक-से-अधिक देशों, अधिक-से-अधिक जातियों की संस्कृतियों को अपने भीतर जज्व करके, उन्हें पचा करके, बड़े-से-बड़े समन्वय को उत्पन्न किया है । भारत देश और भारतीय जाति इस दृष्टि से संसार में सबसे महान है क्योंकि यहाँ की सामासिक संस्कृति में अधिक-से-अधिक जातियों की संस्कृतियाँ पची हुई हैं ।"[2]

संस्कृति और सभ्यता, दोनों, प्रायः एक साथ चलती हैं । लेकिन दोनों एक नहीं हैं । आधुनिक युग में आकर सभ्यता का विकास इतनी तेज़ी से हुआ कि सभ्यता को संस्कृति मानने की आदत-सी हो गयी है । ऐसी स्थिति में संस्कृति को सभ्यता के साथ देखना तथा दोनों का व्यावर्तन करना आवश्यक होता है । दिनकर ने दोनों का विवेचन करते हुए उसका अन्तर भी स्पष्ट किया है । दिनकर की दृष्टि में सभ्यता मनुष्य के बाह्य प्रयोजनों को सहज लभ्य करने का विधान है और संस्कृति प्रयोजनातीत आन्त आनन्द की अभिव्यक्ति । उनके शब्दों में "सभ्यता वह वस्तु है जो हमारे पास है । संस्कृति वह चीज़ है जो हम स्वयं हैं । कल-कारखाने, मोटर, महल, सड़क और हवाई जहाज़ तथा भोजन और पोशाक ये संस्कृति नहीं, सभ्यता के उपकरण हैं । किन्तु

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 51
2. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 126

भोजन करने और पोशाक पहनने में हम जिस रुचि का परिचय देते हैं, वह हमारी संस्कृति है ।"[1] या "सभ्यता बहिर्मुखी गुण है । वह शरीर को सजाती है । संस्कृति मनुष्य की आत्मा की चीज़ है । वह उसे भीतर से कोमल, दयालु और विनम्र बनाती है ।"[2] सभ्यता का संस्कृति पर और संस्कृति की सभ्यता पर पड़नेवाले प्रभाव का क्रम निरन्तर चलता रहता है । लेकिन दिनकर सभ्यता की तुलना में संस्कृति को अधिक श्रेष्ठ और ज़्यादा टिकाऊ मानते हैं । "निष्कर्ष यह कि संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महीन चीज़ होती है । यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगन्ध । और सभ्यता की अपेक्षा यह टिकाऊ भी अधिक है, क्योंकि सभ्यता की सामग्रियाँ टूट-फूटकर विनष्ट हो जा सकती हैं, लेकिन, संस्कृति का विनाश उतनी आसानी से नहीं किया जा सकता ।"[3]

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर की संस्कृति संबंधी धारणायें क्या हैं ? उन्होंने ठीक ही बताया है कि किसी जाति की संस्कृति में उसकी सदियों से चले आ रहे रीति-रिवाज़, रहन-सहन, खान-पान, धर्म-कर्म और सोचने विचारने के तरीके सब कुछ अन्तर्निहित होते हैं । उनकी दृष्टि में संस्कृति मानव की आत्मा की चीज़ है, उनके आन्तरिक गुणों का नाम है । संस्कृतियों के आदान-प्रदान तथा उनके मिश्रण के तथ्य पर दिनकर जी ने बल दिया है ।

संस्कृति को मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति स्वीकार करने पर दिनकर के समक्ष यह प्रश्न पूरी जिज्ञासा के साथ

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 63
2. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 64
3. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 124

खडा रहा कि वे कौन-सी सर्वोत्तम साधनाएँ हैं जो भारतीय संस्कृति का स्वरूप निर्धारित करती हैं । उन्होंने स्वयं माना है कि भारतवर्ष एक विशाल देश है । इसका इतिहास बहुत पुराना है । यहाँ नाना जातियाँ आकर बसती रही, इसे समृद्ध करती रही । अनेक देशों से आयी हुई विभिन्न जातियों के संस्कार, आचार-विचार किसप्रकार भारत भूमि में विलुप्त होते गये और किसप्रकार ये जातियाँ भारतीय परिवेश में पनपकर अपना पराया भूलकर सांस्कृतिक स्तर पर एकत्व को प्राप्त करती रहीं, यह भी दिनकर ने गंभीर चिंतन-मनन द्वारा समझा है । भारत की सामासिक संस्कृति को दर्पण प्रस्तुत करनेवाली अपनी महान कृति संस्कृति के चार अध्याय के माध्यम से दिनकर ने भारतीय संस्कृति का उद्भव, विकास एवं स्वरूप का बहुत ही स्पष्ट चित्र खींचा है । उनकी संस्कृति से संबंधित अन्य रचनाओं में भी भारतीय संस्कृति की गरिमा का वर्णन और भारत की सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकता के प्रति उनका श्रद्धा-सम्मिश्रित मुग्ध भाव दर्शनीय है । भारतीय संस्कृति जिसने अपने आलोक से संपूर्ण विश्व को आलोकित किया, जो अपनी प्राणवत्ता से अनेक विदेशी जातियों के निर्मम प्रहार को सहती हुई भी जीवित रह सकी है और अपनी उदारता से विभिन्न जातियों की संस्कृतियों का वैशिष्ट्य ग्रहण कर अपने स्वरूप को संवारती रही, दिनकर के साहित्य का प्रमुख प्रतिपाद्य रही है ।

भारतीय संस्कृति एक विशेष प्रकार की जीवन-दृष्टि, जीवन मूल्यों के प्रति आस्था तथा एक आदर्श विशेष की प्राप्ति के लिए सतत अभ्यास का प्रतीक है । हमने भारतीय जीवन के अनेक मूलभूत गुणों, विशेषताओं या मूल्यों को स्वीकार कर रखा है । और वे ही एक शब्द में हमारी संस्कृति है । हम प्राय: अपने देश की संस्कृति के संबंध में जानने-समझने का दावा करते हैं और उससे जुडने में गर्व का अनुभव करते हैं । सवाल है, क्या हम उसकी सारी विलक्षणताओं और विशेषताओं के साथ उसे जानते हैं ? कहना

न होगा कि अधिकांश लोगों की जानकारी या पहचान सतही और स्थूल है । यह सर्वविदित है कि भारतवर्ष एक अति प्राचीन देश है जिसकी एक सुदीर्घ परंपरा और इतिहास है । भारतवर्ष की अपनी सही पहचान इस सुदीर्घ परंपरा तथा इतिहास के बीच से गुज़रते हुए ही की जा सकती है । दिनकर ने भारतीय संस्कृति के प्रारंभ एवं विकास को सुव्यवस्थित रूप से दिखाने का प्रयास किया है । दिनकर ने भारत के अन्तर्जीवन के विकास का अध्ययन किया है । संपूर्ण राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्कर्ष की भावना उनकी प्रत्येक रचना में अभिव्यंजित है ।

संस्कृति का विकास नैसर्गिक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया से कहाँ क्या परिवर्तन हो रहा है, यह बात जानना बहुत मुश्किल है । अतः भारतीय संस्कृति का उद्भव कब हुआ या भारत की आदि संस्कृति कैसी थी, इसका केवल अनुमान ही लागया जा सकता है । दिनकर विभिन्न विद्वानों के विचारों का विश्लेषण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "जब आर्य और द्रविड मिलकर एक समाज के अंग बन गये तब उनके आचार, विचार, आदतें और रिवाज़ भी परस्पर मिश्रित होने लगे और इस मिश्रण से जो धर्म निकला वही भारत का सनातन धर्म एवं जो संस्कृति निकली वही भारत की आदी (बुनियादी) संस्कृति हुई ।"[1] भारत की इस संस्कृति में समन्वयन तथा नये उपकरणों को पचाकर आत्मसात् करने की अद्भुत क्षमता थी । उसका स्वरूप सामासिक है और धीरे-धीरे उसका विकास होने लगा ।

दिनकर ने भारतीय संस्कृति के इतिहास का अध्ययन और अनुशीलन पूरी गहराई से किया और उसका स्वरूप भी निर्धारित किया ।

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 47

भारतीय संस्कृति के इतिहास को चार अध्यायों में विभाजित करके उन्होंने यह सिद्ध किया है कि भारतीय संस्कृति का इतिहास चार बड़ी सांस्कृतिक क्रान्तियों का इतिहास है । उनके मत में "भारत में पहली क्रांति तब हुई जब आर्य भारतवर्ष में आये अथवा भारतवर्ष में उनका आर्येतर जातियों से संपर्क हुआ । दूसरी क्रांति तब हुई जब महावीर और गौतम बुद्ध ने स्थापित धर्म या संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उपनिषदों की चिन्ताधारा को खींचकर वे अपनी मनोवांछित दिशा की ओर ले गये । तीसरी क्रांति तब हुई, विजेताओं के रूप में इस्लाम धर्म के आगमन और उसके हिन्दुत्व से संपर्क में आने के साथ और चौथी क्रान्ति का सूत्रपात हुआ भारत में यूरोपीय शक्ति के आगमन पर ।"[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में अनेक जातियाँ आकर बस गयी हैं । वास्तव में रक्त भाषा और संस्कृति सभी दृष्टियों से भारत की जनता अनेक मिश्रणों से युक्त है । उसी तरह भारतीय संस्कृति भी किसी एक जाति की रचना नहीं है । उसमें भारत में आकर यहाँ बस जानेवाली अनेक जातियों के अंशदान हैं । "और यह भी नहीं कहा जा सकता कि भारतीय संस्कृति केवल आर्यों और द्रविडों की रचना है । यूनानी, मंगोल, शक, कुशान, आभीर, हूण आदि जो भी जातियाँ भारत में आकर बस गयीं, उन सब का कुछ न कुछ योगदान यहाँ की संस्कृति में मिला होगा, यद्यपि इसके बिलगाव का अब कोई उपाय नहीं है ।"[2] दिनकर भारत को विविध संस्कृतियों का संगम मानते हैं । उनका विचार है कि भारतीय संस्कृति ने अनेक संस्कृतियों को पीकर अपनी ताकत बढायी है । उनके शब्दों में "भारत की यह विशेषता रही है कि वह अनेक जातियों को घोंटकर एक जाति बना देता है, अनेक धर्मों को मिलाकर एक धर्म तैयार कर देता है, और अनेक संस्कृतियों के मिश्रण से एक नयी संस्कृति पैदा कर देता है ।

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - भूमिका - दिनकर
2. वेणुवन - दिनकर - पृ. 40

नीग्रो, औष्ट्रिक, द्राविड और आर्य कम-से-कम ये चार जातियाँ थीं जिनके परस्पर मिलन और मिश्रण से एक महाजाति पैदा हुई, जिसे हम हिन्दु जाति कहते है ।"[1]

भारत में आर्यों के आगमन के बाद ही भारत की बुनियादी संस्कृति का निर्माण हुआ । विद्वानों के बीच यह मतभेद है कि आर्य भारत में बाहर से आये हैं या वे भारत के ही निवासी थे । दिनकर मानते हैं कि आर्य भारत में बाहर से ही आये हैं और वह भी मध्य एशिया से । आर्य जाति के बाद भी अनेक जातियों के लोग यहाँ आते रहे हैं । उनमें मंगोल, यूची, शक, हूण और आभीर जाति के लोग प्रमुख हैं । मुसलमानों के आने के पूर्व ये सभी जातियाँ हिन्दु समाज में मिलकर चार वर्णों में बँट चुकी थी । दिनकर के शब्दों में "हिन्दु संस्कृति तो महानद के समान है । उसके भीतर अनेक नदियों का जल समाहित हुआ है ।"[2] जिन जातियों के समन्वय से हिन्दु समाज बना उन जातियों के धर्म-कर्म आदि समान नहीं थे । सबों को एक समाज में बाँधने के लिए जाति प्रथा का आश्रय लिया गया । इससे आर्य, द्रविड, नीग्रो, आष्ट्रिक आदि एक समाज के सदस्य हो गये जो आगे चलकर हिन्दु समाज कहलाया । भारतीय सामाजिक जीवन के चले आते प्रवाह में एक नया मोड तब उपस्थित हुआ जब एक हाथ में खड्ग और दूसरे में समानता का आश्वासन लिये इस्लाम ने भारत वर्ष में प्रवेश किया । भारतीय सामाजिक जीवन में मुसलमानों, उनके धर्म-मत और उनकी संस्कृति के साथ सामंजस्य बिठाने की समस्या इसी बिन्दु से प्रारंभ हुई । चले आते हुए भारतीय जीवन प्रवाह के समक्ष चुनौती का क्षण भी यही था । "जब मुसलमानों का आगमन हुआ तब

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 17
2. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 47

देश में एक नयी परंपरा शुरू हुई, यानी आगन्तुकों के हिन्दु हो जाने के बदले हिन्दु ही नये धर्म की शिक्षा-दीक्षा लेने लगे ।"[1] लेकिन इस्लाम जो अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्र रखने का मंसूबा लेकर चला था, वह भी भारत में आकर कुछ परिवर्तित हो गया । धर्म के मामले में अपनी सत्ता को स्वतंत्र रखने में मुसलमान बहुत दूर तक सफल हुए । फिर भी संस्कृति की दृष्टि से वे भी भारतीय हो गये । इसके बाद हिन्दुत्व और इस्लाम दोनों का ईसाई धर्म और यूरोपीय विज्ञान तथा बुद्धिवाद से संपर्क होने लगा । देश में आने और रहने-बसनेवाली जातियों में कैसा-कैसा संघर्ष होता रहा, भारतीय संस्कृति विभिन्न संस्कृतियों को पीकर कैसे बढने लगी, इन सबका वर्णन दिनकर ने किया है । भारत में सांस्कृतिक समन्वय का जो कार्य किया है उसकी प्रशंसा करते हुए दिनकर ने लिखा है - "सांस्कृतिक समन्वय का कार्य इसी अदृश्य गति से चलता है । एक समन्वय चींटी भी पैदा करती है, जब वह अनेक नाजों के कणों को एक जगह जमा कर देती है । किन्तु यह समन्वय असली समन्वय का पर्याय नहीं होता । सच्चा समन्वय मधुमक्खी का काम है, जो रस तो अनेक फूलों से लाती है, किन्तु मधु के स्वाद से सभी फूलों की अलग-अलग पहचान नहीं की जा सकती ।"[2] मतलब यह है कि भारत में जो सांस्कृतिक समन्वय हुआ है वह चींटियों का जैसा नहीं, मधुमक्खियों का जैसा है । अब यह पता लगाना बहुत मुश्किल हो गया है कि भारतीय संस्कृति के भीतर किस जाति की संस्कृति का कितना महत्व है ।

भारतीय संस्कृति ने जिन विभिन्न जातियों की संस्कृतियों को अपनाया था, उनके साथ उसका संघर्ष होना स्वाभाविक था । भारतीय संस्कृति अनेक मतवादों के बीच सामंजस्य की स्थापना में सक्रिय रही है ।

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 53
2. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 44।

विभिन्न जातियों की संस्कृति के समन्वय से जिस भारतीय संस्कृति की उत्पत्ति हुई, उसमें धर्म और आचार को लेकर विरोधी तत्त्वों की उत्पत्ति हो गयीं । कुछ आस्तिक, कुछ नास्तिक, कुछ वेद माननेवाले, कुछ वेद विरोधी इत्यादि । यह एक प्रकार की बौद्धिक अराजकता थी । लेकिन भारतीय संस्कृति ने समन्वय का काम जारी रखा । दिनकर के शब्दों में "..... इसलिए एक ही काल में आस्तिक और नास्तिक दर्शनों की रचना होने लगी और सारा देश चिंतकों की तरह-तरह के विचारों से जगमगा उठा । लेकिन हिन्दु-धर्म अथवा भारतीय संस्कृति फिर भी अपना काम कर रही थी और इन अनेक मतवादों के बीच सामंजस्य कैसे पैदा किया जाय, एकता कैसे लायी जाय, इसके लिए उसका स्वाभाविक प्रयास जारी था ।"[1] हमारी संस्कृति की एक विशेषता यह भी है कि वह बाहर से आयी हुई संस्कृतियों से मिलकर जाग्रत और नवीन हो जाता है । इस दृष्टि से देखने पर विभिन्न संस्कृतियों से भारतीय संस्कृति का मिलन अनेक अंशों में मंगलकारी ही हुआ । दिनकर के शब्दों में "हिन्दुत्व की एक विशेषता यह भी है कि जब-जब भारत में विदेशी नस्लों और संस्कृतियों के लोग आ बसते हैं, तब-तब उसके भीतर से प्रगति का ज्वार उठने लगता है । यूनानी, शक और कुषाण लोग विदेशी थे, किन्तु भारत आकर या तो वे हिन्दु हो गये थे अथवा बौद्ध । × × × × × × जिसका परिणाम यह हुआ कि वैदिक धर्म का विरोधी बौद्ध मत भी हिन्दु-लिबास पहनने को बाध्य हो गया ।"[2]

संसार के हर एक देश पर दृष्टिपात करें तो हमें पता चलेगा कि प्रत्येक देश की एक निजी सांस्कृतिक विशेषता होती है । भारतीय संस्कृति का भी अपना अस्तित्व और व्यक्तित्व है । हमें देखना होगा, भारतीय संस्कृति को अजेय बनानेवाले तत्त्व क्या क्या हैं ? हम ऊपर देख चुके हैं कि

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 171
2. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 189

भारतीय संस्कृति में अन्य संस्कृतियों को अपनाने की अद्भुत क्षमता है । उसमें विचारों के आदान-प्रदान का कार्य भी अधिक चलता है । भारतीय संस्कृति नूतन अवदानों को ग्रहण करने के बाद भी अपना मौलिक रूप हमेशा कायम रखती है । दिनकर के शब्दों में "भारतीय संस्कृति में कोई अजेय शक्ति है, जिसने पराजय नहीं जानी है । इसी शक्ति को स्वीकार करने के कारण भारत, सबको स्वीकार करने के बाद भी भारत ही बना रहता है ।"[1] भारतीय संस्कृति का स्वभाव है कि वह जितनी ही बदलती है, उतनी ही अपने सनातन रूप के अधिक समीप पहुँच जाता है । भारतवर्ष कम-से-कम छह हज़ार वर्ष पुराना देश है । भारत का संपूर्ण इतिहास बताता है कि भारत में अन्य देशों पर आक्रमण करने की इच्छा कभी नहीं हुई है क्योंकि भारत ने अहिंसा को मूलमंत्र के रूप में स्वीकार किया है । "अहिंसा भारत की सभ्यता का सार है । वह हिन्दुओं का सनातन धर्म है ।"[2] दिनकर सोचते थे कि विश्व की एकता को संभव बनाने के लिए सत्य और अहिंसा के इस महान तत्त्व ने विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के बीच भारतीय संस्कृति को आदरणीय बना दिया है ।

भारतीय संस्कृति में अपने को अधिकाधिक समृद्ध करने की प्रवृत्ति है । इसमें विश्व के तमाम धर्म एवं संस्कृतियों का निचोड हम पाते हैं । "हिन्दु संस्कृति ने अपने को कूप मण्डूक नहीं बनाया और उसे जहाँ से भी कोई अच्छी चीज़ मिलनेवाली थी, उसे इसने आगे बढकर स्वीकार कर लिया । यही कारण है कि हिन्दु धर्म में हम विश्व के तमाम धर्मों के असली तत्त्वों का निचोड पाते हैं । यहीं नहीं बल्कि भारतवर्ष के लंबे इतिहास में जब भी कोई अद्भुत धार्मिक चिंतन किया गया, हिन्दुत्व ने उसे प्रसन्नता से स्वीकार किया । इसलिए अब हमारी संस्कृति वही नहीं है, जो वेदकालीन आर्यों की थी, और

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 50
2. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 634

शुद्ध-शुद्ध वह भी नहीं, जिसकी रचना आर्यों और द्रविडों ने मिलकर की थी ।"[1] यह विश्वजनीनता, विभिन्न जातियों को एक साँचे में ढालने का यह अद्भुत प्रयास और अनेक वादों, विचारों और धर्मों के बीच एकता लाने का यह निराला ढंग सभी युगों से भारतीय समाज एवं संस्कृति की विशेषता रहा है । भारत की एक विशेषता यह भी है कि उसका अतीत कभी मरा नहीं । वह बराबर वर्तमान के रथ पर चढकर भविष्य की ओर चलता रहता है । भारत का अतीत कल भी जीवित था, आज भी जीवित है और आगे भी जीवित रहेगा । "जब से विज्ञान का उदय हुआ, संसार के अधिकांश देशों में आज अतीत पराजित और वर्तमान सत्तासीन है । केवल भारत ही एक देश है जहाँ अतीत आज भी युद्ध कर रहा है ।यह संग्राम भारत में पिछले डेढ सौ वर्षों से चल रहा है । लेकिन भारत का अतीत आज भी न तो दुर्बल है, न क्लांत, भारत का अतीत हमेशा वर्तमान को अपनी बाँहों में समेटकर भविष्य की ओर बढने का आदी रहा है । आज भी वह अपने सनातन धर्म की राह पर है ।"[2] भारतीय संस्कृति की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसके अन्दर में ज्ञान और भावना की स्रोतस्विनी अबाध गति से प्रवाहित है ।

दिनकर ने संस्कृत साहित्य की अपार ज्ञान-राशि को भारतीय मनीषा का नवनीत माना है और अनेक स्थलों पर इसे भारतीय संस्कृति का संवाहक ठहराया है । भारतीय संस्कृति के मूल उपकरणों के परिज्ञान के लिए दिनकर संस्कृत भाषा के अध्ययन पर सदा बल देते रहे । उनका विश्वास था कि "प्रत्येक प्राचीन जाति का संस्कार, उसकी आत्मा और उसके प्राण उसकी अपनी भाषा में बसते हैं । भारत की आत्मा और भारत के सूक्ष्म संस्कारों का

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 87
2. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 746

निवास संस्कृत में है । संस्कृत इस देश में बसनेवाले लोगों की सेवा, और नहीं तो तीन चार हज़ार वर्षों से करती आयी है । भारत की सभी भाषायें संस्कृत के घाट पर पानी पीकर जीती आयी है और आज भी उनका उपजीव्य यही भाषा है ।"[1] दिनकर की दृष्टि में संस्कृत सारी जनता के विचार और धर्म का ही प्रतीक नहीं बनी, वरन् भारत की सांस्कृतिक एकता की उसी भाषा में साकार हुई ।

जहाँ दिनकर हमारी संस्कृति के गौरव के प्रति अत्यन्त आकृष्ट व निष्ठावान है, वहाँ वे उसकी वर्तमान गति के प्रति भी आलोचक बुद्धि से पूर्णतया सजग है । वे संस्कृति के कोरे वन्दन मात्र से संतुष्ट नहीं है । भारतीय संस्कृति की देन को लक्ष्य में रहकर भी वे उसकी एकपक्षीय प्रशंसा के लिए कटिबद्ध नहीं रहे हैं । उन्होंने इस संस्कृति की ह्रासोन्मुखता पर भी विचार किया है । जात-पाँत, छुआ-छूत और धर्म के मिथ्या आडंबरों को हिन्दुओं ने बहुत अधिक महत्व दिया था और उसी आदत ने एक हद तक उनका नाश किया । "इस प्रकार हिन्दुओं ने जात-पाँत और धर्म की रक्षा की कोशिश में जाति और देश को बर्बाद कर दिया । भारतवर्ष में राष्ट्रीयता की अनुभूति में जो अनेक बाधाएँ थीं, उनमें सर्वप्रमुख बाधा यही जातिवाद था । जिस गौरव की अनुभूति के लिए मनुष्य राष्ट्रीयता का वरण करता है, उस गौरव की तृषा इस देश में जात-पाँत की अनुभूति से ही शमित हो जाती थी । जात अगर ठीक है तो सबकुछ ठीक है । धर्म अगर बचता है तो सबकुछ बचता है । इस भावना के फेर में हिन्दु इस तरह पडे कि देश तो उनका गया ही, जात और धर्म की भी केवल ठठरी ही उनके पास रही ।"[2] वर्णाश्रम के भीतर से अनेक जातियाँ निकल पडीं ।

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 46
2. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 315

ऊँच-नीच का भाव बेतहाशा बढ गया । दिनकर के मत में भारतीय समाज का सबसे बडा अभिशाप यहाँ जाति का प्रथा है ।

संस्कृति की एक इकाई धर्म भी है । धर्म का उत्थान-पतन संस्कृति का उत्थान-पतन है । दिनकर ने धार्मिक संस्कृति के पतन का चित्रांकन किया है । "धार्मिकता की अति ने देश का विनाश किया, इस अनुमान से भागा नहीं जा सकता । और यह धार्मिकता भी गलत किस्म की धार्मिकता थी जिसका उद्देश्य परम सत्ता की खोज नहीं, प्रत्युत यह विचार था कि किसका छुआ हुआ पानी पीना चाहिए और किसका नहीं, किसका छुआ हुआ खाना खाना चाहिए और किसका नहीं; किसके स्पर्श से अशुद्ध होने पर आदमी स्नान से पवित्र हो जाता है और किसके स्पर्श से हड्डी तक अपवित्र हो जाती है ।"[1] हमारे संस्कार में जो आध्यात्मिक साम्राज्यवादिता है, उसकी सूचना भी लेखक ने की है । "हमारे राष्ट्रीय संस्कार में एक आध्यात्मिक साम्राज्यवादिता है जो सबसे अधिक मुसलमानों के प्रसंग में प्रकट होती है ।"[2] दिनकर राष्ट्रीय एकता के लिए आध्यात्मिक साम्राज्यवादिता का खंडन आवश्यक मानते थे ।

दिनकर का सांस्कृतिक दर्शन केवल भारतीय संस्कृति की विवेचना ही नहीं है, बल्कि विश्व संस्कृति की विवेचना भी उसे कहा जा सकता है । भारतीय संस्कृति की अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में क्या देन हो सकती है, इस मुद्दे पर निगाह रखने के कारण ही दिनकर ने कहा है "भारत भौतिक समृद्धि से हीन है, यद्यपि उसके शरीर में अब भी आध्यात्मिकता का तेज़ वास करता है । यह देश यदि पश्चिम की शक्तियों को ग्रहण करें और अपनी शक्तियों का भी विनाश

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 307
2. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 261

नहीं होने दे, तो उसके भीतर से जिस संस्कृति का उदय होगा, वह अखिल विश्व के लिए कल्याणकारी होगी । वास्तव में वही संस्कृति विश्व की अगली संस्कृति बनेगी ।"[1] संसार के सामने आज जो सबसे बडा सवाल पेश है, वह यह है कि दुनिया की अनेक जातियों, अनेक वादों और विचारों तथा अनेक संस्कृतियों के बीच समन्वय स्थापित करके हम विश्व संस्कृति का निर्माण कैसे कर सकते हैं ? दिनकर मानते हैं कि अनेक जातियों और संस्कृतियों के मिलन से भारतीय संस्कृति में एक प्रकार की विश्वजनीनता उत्पन्न हुई है । अत: विश्व की भावी एकता की भूमिका भारत की सामासिक संस्कृति में है । दिनकर के शब्दों में "स्पष्ट ही संसार को उसी मार्ग को अपनाना पडेगा, जिस मार्ग पर चलकर भारतवर्ष अपने यहाँ की विभिन्न संस्कृतियों के बीच एकता या मेल बिठाता रहा है ।"[2]

भारतीय संस्कृति के गुण-दोष सहित स्वरूप को पहचानने के बाद यह जानना आवश्यक हो जाता है कि दिनकर की संस्कृत संबंधी रचनाओं का उद्देश्य क्या है ? दिनकर भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक हैं । यह संस्कृति उनके साहित्यकार का प्रेरणास्रोत रही है । यह समझने में किसी विशेष बुद्धि की ज़रूरत नहीं कि दिनकर भारतीय संस्कृति की महिमा का गायन करना चाहते हैं । लेकिन दिनकर का लक्ष्य भारतीय संस्कृति का इतिहास प्रस्तुत करना या उसके महत्व का वर्णन करना मात्र नहीं है । दिनकर की मूलचेतना राष्ट्रवादी थी । इस चेतना ने उन्हें भारत की अखंडता को खोजने और साबित करने के लिए प्रेरित किया है । यह खोज इतिहास के संदर्भ में ही संभव थी । जैसे हम जानते हैं, इतिहास जितना वर्तमान से संबद्ध है उतना अतीत से भी । ऐसी दशा में भारत की राष्ट्रीय एकता को पक्की नींव प्रदान करने के लिए अतीत की खोज ज़रूरी हो जाती है । अतीत की यह खोज वास्तव में मानव-विकास,

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 618
2. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 97

उसकी सभ्यता और संस्कृति की गति-विधियों से परिचित होना ही है । कोई संदेह नहीं, भारतीय संस्कृति को जानने-समझने और राष्ट्रीयता को दृढ़ नींव देने की आकांक्षा से ही दिनकर ने भारतीय संस्कृति का इतना गहरा अध्ययन किया है । दिनकर की दृष्टि में भारत की सामासिकता, उदारता और सहिष्णुता ऐसे सूत्र हैं जिन्हें पकडकर भारत के अतीत और वर्तमान की आन्तरिक बुनावट का पता लगाया जा सकता है । इसलिए वे दूरगामी अतीत से लेकर वर्तमान तक की भारतीय संस्कृति का अध्ययन-अनुशीलन करते हैं । देश की अखंडता को बनाये रखने के लिए भावात्मक एकता पर बल देना ज़रूरी है । दिनकर ने भारत की खोज की और उन्होंने इस बात को लक्षित किया कि विचारों में यह देश सदियों से एक रहा है । "विचारों की एकता जाति की सबसे बडी एकता होती है । अतएव भारतीय जनता की एकता के असली आधार भारतीय दर्शन और साहित्य हैं जो अनेक भाषाओं में लिखे जाने पर भी, अन्त में जाकर एक ही साबित होते हैं ।"[1]

दिनकर की संस्मरणात्मक रचनाएँ

संस्मरण स्मृतिप्रधान साहित्य की व्यक्तिप्रधान शाखा है । उसमें किसी व्यक्ति विशेष या विषय विशेष का प्रामुख्य होता है । जब लेखक अपने भीतर की विशेष या प्रिय स्मृतियों को अभिव्यक्त किये बिना नहीं रह सकता तब वह निजी संवेदनात्मक और अनुभवात्मक स्तर पर उन स्मृतियों को शब्दांकित कर देता है । यही क्षण संस्मरण का महत्त्वपूर्ण क्षण है । संस्मरण प्रायः अतीत का ही होता है । संस्मरण के अंतर्गत वैयक्तिक जीवन के विशिष्ट पहलू या संदर्भ अथवा व्यक्तिगत संपर्क में आये हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के विशिष्ट

---

1. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 136-137

क्षण अथवा चारित्रिक वैशिष्ट्य की स्मृतियों को अंकित किया जाता है । अतः संस्मरण को गद्यसाहित्य की आत्मनिष्ठ विधा मानना अधिक समीचीन होगा । संस्मरणों से इतिहास के लिए अनेक बहुमूल्य सामग्री मिल सकती हैं क्यों कि प्रायः समाज के महान लोगों को आधार बनाकर संस्मरण की रचना की जाती है । लेकिन संस्मरण में इतिहास की वस्तुपरक भंगिमा को स्थान नहीं दिया जाता । वह साहित्य की भावानुभूतिपरक ललित विधा है । संस्मरण की एक दूसरी विशेषता यह है कि वह जीवन के खंड रूप को लेकर चलता है, संपूर्ण जीवन को वह अपना उपजीव्य नहीं बनाता । संस्मरण की शैली प्रायः निबंध अथवा ललित-गद्य शैली के निकट होती है । हिन्दी के संस्मरण साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योग देनेवाले साहित्यकारों में पद्मसिंह शर्मा, महादेवी वर्मा, गुलाबराय, बनारसीदास चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर आदि प्रमुख हैं ।

ऊपर हम कह चुके हैं कि हिन्दी के संस्मरण-लेखकों में श्री रामधारी सिंह दिनकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है । उन्होंने "लोकदेव नेहरू", "संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ" और "वट-पीपल" के संस्मरणात्मक निबंधों के माध्यम से संस्मरण साहित्य को समृद्ध बनाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है । संस्मरण को रचनात्मक और अनुकूल प्रभावक्षम बनाने की अद्भुत क्षमता दिनकर में है । मूलतः कवि होने के कारण संस्मरण-लेखन की यह कला-क्षमता उनमें कुछ अधिक है । यही कारण है कि दिनकर की संस्मरणात्मक रचनाओं में रचना-धर्मिता के आयाम बहुत पुष्ट रूप में उभरे हैं । उनके अनेक संस्मरणों में वैचारिक विश्लेषण की प्रधानता है । दिनकर व्यक्ति के इर्द-गिर्द के समूचे परिवेश एवं इतिहास का चित्रांकन करते हैं और व्यक्ति के कोण से इतिहास के भीतर झाँकने का अवसर प्रदान करते हैं । दिनकर के संस्मरण व्यक्तिगत होते हुए भी कर्तृत्वगत हैं । इन रचनाओं की कसौटी राष्ट्रीय उत्कर्ष है । राष्ट्रीय

उत्कर्ष के कार्य में किस व्यक्ति ने किस माध्यम से कितना योगदान किया है - इस मूल्यांकन-प्रक्रिया में इन रचनाओं का निर्माण हुआ है ।

दिनकर की संस्मरणात्मक रचनाओं के अध्ययन करने के पहले यह देखना बहुत आवश्यक है कि संस्मरण लेखन के संबंध में उनका विचार क्या है ? दिनकर संस्मरण लिखने के कार्य को अत्यन्त नाजुक मगर सुखद कार्य मानते थे । उन्हीं के शब्दों में - "अपने सहकर्मियों की चर्चा करना बहुत ही नाजुक काम है । मगर यह चर्चा लेखक के लिए सुखद भी होती है ।"[1] दिनकर ने अपने संस्मरणों में अनेक महान राष्ट्रीय एवं साहित्यिक व्यक्तित्व का चुनाव किया है । "लोकदेव नेहरू" में दिनकर जी ने नेहरू जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को संगृहीत कर पंडित जी की एक अविस्मरणीय मानवीय मूर्ति निर्मित कर दी है । हमारा विचार है, "लोकदेव नेहरू" और अन्य संस्मरणात्मक निबंधों का विस्तृत अध्ययन दिनकर की संस्मरण-लेखन कला का परिचय दिलाने में सहायक होगा ।

लोकदेव नेहरू

पं. जवाहरलाल नेहरू समग्र भारतीय जनता के देवता थे । वे एक कुशल राजनीतिज्ञ और ख्याति-प्राप्त लेखक भी थे । दिनकर के मन में नेहरूजी के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा थी । संसद-सदस्य बनने के बाद ही दिनकर को नेहरू जी को नज़दीक से जानने का अवसर मिला । दिनकर ने प्रस्तुत रचना में नेहरू जी के जीवन की अनेक घटनाओं को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत किया है । इन बहुमूल्य झाँकियों के ज़रिए उन्होंने नेहरूजी का जो चित्र पेश किया है, वह मोहक, चमत्कारिक किन्तु मानवीय है ।

---

1. संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ (भूमिका) - दिनकर - पृ. 4

दिनकर ने नेहरू जी को नज़दीक से पहले-पहले सन् 1948 में देखा था । उसके बाद सन् 1952 से 1964 तक नेहरू जी के सान्निध्य में रहने का, उन्हें निकट से देखने - समझने का अवसर दिनकर को मिला । दिनकर ने प्रस्तुत रचना में पंडित जी के संस्मरण, पंडित जी के विचार और पंडित जी के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किये हैं । विभिन्न परिस्थितियों में नेहरू जी की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का वर्णन करते हुए दिनकर ने नेहरूजी के व्यक्तित्व का सूक्ष्म विश्लेषण किया है । वास्तव में "लोकदेव नेहरू" एक ऐसी पारदर्शी रचना है जिसमें नेहरू के व्यक्तित्व के प्रच्छन्न रूप का बोध होता है । इसमें नेहरू का आकर्षक व्यक्तित्व, उनकी कार्यक्षमता, जनता के प्रति विश्वास, देशानुराग, सांस्कृतिक चेतना, शांति-प्रियता, जागरूकता, अविचलित धैर्य, उदारता, हठवादिता, शिष्टता, विनोद प्रियता, राजनीतिक विवेक, दार्शनिक, धार्मिक और कला संबंधी विचार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, उनकी लोकप्रियता आदि गुणों और तथ्यों को प्रकट करनेवाले संदर्भ प्रस्तुत हैं जो उनके विराट व्यक्तित्व को समझने में हमारी सहायता करते हैं ।

नेहरूजी बड़े साहित्य प्रेमी थे और खुद एक साहित्यकार भी । लेकिन साहित्य या कविता उनके हृदय को आसानी से नहीं झकझोर सकती थी । कविता सुनकर वे कभी भावुक नहीं हो उठते थे । दिनकर के शब्दों में - "पंडितजी कवियों का आदर करते थे, किन्तु कविताओं से बहुत उद्वेलित कभी भी नहीं होता था ।"[1] दिनकर के कई संस्मरणों से यह भी मालूम होता है कि नेहरू हिन्दी के महत्व को स्वीकार करते हुए भी अंग्रेज़ी को पूर्ण रूप से हटाने को तैयार नहीं थे । यह उनके व्यक्तित्व का द्वन्द्व था । नेहरू जी आधुनिक भारत के शिल्पि माने जाते हैं । किन्तु उनमें भारत की पुरानी परंपरा एवं संस्कृति के प्रति बड़ी

---

1. लोकदेव नेहरू - दिनकर - पृ. 2

श्रद्धा थी । "पंडित जी के बारे में इतिहास और चाहे जो बातें लिखें या न लिखें, किन्तु यह बात अवश्य लिखेगा कि भारत के मन को आधुनिक बनाने की दिशा में जवाहरलाल ने जो अनेक प्रयत्न किया, वह विस्मयकारी था । किन्तु आधुनिकता के इतने बडे ध्वजधारी होने पर भी प्राचीन के प्रति उनमें एक प्रकार की ममता थी, जो कभी-कभी ही प्रत्यक्ष होती थी ।"[1]

नेहरू की कार्यक्षमता अपार थी । दिन में पन्द्रह-सोलह घंटों तक वे काम करते थे । फिर भी उनके चेहरे पर झुँझलाहट, परेशानी या असंतोष के भाव दिखाई नहीं देते थे । नेहरू के व्यस्त जीवन का परिचय देते हुए दिनकर ने लिखा है - "पंडित जी काम के लिए आठ-साढे आठ बजे भोर ही तैयार हो जाते थे । ऊपर की मंजिल से उतरते ही उन्हें दो प्रकार के लोगों से मिलना पडता था । एक तो वे लोग जो, समय लिये बिना ही, सीढी के बीचवाले ड्राइंग हाल में जमा होते थे ; और दूसरे वे लोग जो गाँवों से आते थे और अहाते में खडे या बैठे रहते थे । इनसे निबटकर पंडितजी दफ्तर चले जाते थे । दोपहर को भोजन के बाद वे तीन से पहले ही दफ्तर या संसद पहुँच जाते थे । शाम को भोजन वे आठ बजे करते थे और नौ से फिर काम पर बैठ जाते थे । सोने का समय उनका । बजे रात से छह बजे भोर तक का था ।"[2] नेहरू जी जनता का कितना विश्वास करते थे, यह आश्चर्य की बात है । क्षुद्र से क्षुद्र भीड के भीतर भी वे इस विश्वास के साथ पिल पडते थे, मानों उन्हें छूने का साहस कोई नहीं कर सकता । "एक बार भीड़ में से आगे बढकर एक औरत ने कहा, "पंडितजी मैं घर से आप के लिए एक गिलास दूध ले आयी हूँ ।" पंडित जी ने अपनी तन्दुरुस्ती पर पहरा देनेवाले लोगों की बात नहीं मानी । वे उस बहन के हाथ से गिलास लेकर सारा दूध घटाक से पी गये ।"[3] दिनकर की दृष्टि में "नेहरू जी देश के आत्मबल के प्रतीक थे,

---

1. लोकदेव नेहरू - दिनकर - पृ. 8
2. लोकदेव नेहरू - दिनकर - पृ. 10
3. लोकदेव नेहरू - दिनकर - पृ. 17

समझदारी और होश-हवास की जीती-जागती प्रतिमा थे । वे देश के स्वाभिमान के भी प्रतीक थे और अपने स्वाभिमान की अभिव्यक्ति की शैली भी उन्हें तुरन्त सूझ जाती थी ।"[1]

चीनी आक्रमण और भारत की पराजय के बाद दिनकर नेहरू जी से मिले थे । इन प्रसंगों के वर्णन में नेहरू की मानसिक दशा का हल्का-सा संकेत मिलता है । चीन ने जो विश्वासघात किया, उसपर नेहरू जी बड़े दुःखी हो गये थे । दिनकर की दृष्टि में चीन का विश्वासघात नेहरू जी के लिए इतना कठोर प्रहार था कि वह उसकी मृत्यु का कारण बन गया । "पंडित जी गये तो अपने समय पर ही, जैसे एक दिन हम में से हर एक को जाना है, मगर मेरा ख्याल है, उसकी असली बीमारी का नाम फालिज़ या रक्तचाप नहीं, चीन का विश्वासघात था ।"[2] दिनकर सूचित करना यह चाहते हैं कि नेहरू जी देश की स्वाधीनता की रक्षा को अपना परम धर्म मानते थे । अपने देश को ऊँचाई से उतरने देना वे कभी नहीं चाहते थे । शायद इसलिए ही नेहरू जयप्रकाश जी को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे । नेहरू जी बड़े ही साहसी पुरुष थे । उनके आचरण अत्यन्त निर्भीक होते थे । किसी के भी सामने झुकने को वे तैयार नहीं थे । सन् 1935 की एक घटना का वर्णन करते हुए दिनकर ने नेहरू जी के निर्भीक आचरण का चित्रांकन किया है । "पंडित जी घनघोर रूप से साहसी पुरुष थे । राजनीति के कामों में तो वे उबल कर भी शान्त हो जाते थे, किन्तु जहाँ आस्था और व्यक्तिगत पसंद-नापसंद का सवाल ज़रा तेज़ होता, उनके आचरण अत्यंत निर्भीक होते थे । 1935 ई. के आसपास जब पंडित जी रोम होकर भारत लौट रहे थे, मुसोलिनी ने हवाई अड्डे पर अपना दूत भेजा था कि

---

1. लोकदेव नेहरू - दिनकर - पृ. 18
2. लोकदेव नेहरू - दिनकर - पृ. 12

पंडित जी मुझे मिलने को क्षण भर को शहर में आ जायँ । किन्तु पंडित जी ने मुसोलिनी से मिलना कबूल नहीं किया ।"[1]

नेहरू जी मिलने जुलने में, बातचीत में, समारोह में बडे शिष्ट और तत्पर रहते थे । कभी कभी जब बहुत मौज में आते थे तब उनका हँसी-मज़ाक बहुत ही दिलचस्प होता था । फिर भी पंडित जी की सांस्कृतिक चेतना हर समय जागरूक रहती थी । उनकी रुचि बडी सुरम्य और उनका संस्कार अत्यन्त महान था । भूल से भी वे फूहड मज़ाक पर नहीं हँसते थे । "पंडित जी अत्यन्त सभ्य मनुष्य थे । जो शिष्टता उनके पहनावे-ओढावे और वार्तालाप में थी, वही शिष्टता उनके व्यवहार में भी दिखाई देती थी ।"[2] अर्थात् शिष्टता, स्वच्छता और शान्ति उनकी वाणी तक सीमित नहीं थी ।

दिनकर ने संस्मरणों द्वारा नेहरू के व्यक्तित्व के गुण और दोष, दोनों का चित्रण किया है । उनके चित्र एकांगी नहीं है । उन्होंने बहुत ही कलात्मक ढंग से नेहरू जी के व्यक्तित्व के द्वन्द्व और विरोधाभास को उजागर किया है । "किंतु पंडितजी कितने ही विरोधी गुणों के समवाय थे और विरोधी बातों का भी सम्मिश्रण उन्हें खूबसूरत बना देता था । उनमें विश्वास भी था और संशय भी ; संकल्प भी था और द्विधा भी ; वे समझौते के खिलाफ भी रहते थे और समझौतों के प्रेमी भी थे । उनमें विनम्रता भी थी और अहंकार भी था । वे मूलतः मनीषी थे । किन्तु हृदय क्रांतिकारी का रखते थे । वे कल्पक थे, सौन्दर्यसेवी और अत्यंत ऊँचे अर्थ में रुचिवान थे । किन्तु राजनीति

---

1. लोकदेव नेहरू - दिनकर - पृ. 18
2. लोकदेव नेहरू - दिनकर - पृ. 27

की धूर्तता का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था । विचार और कर्म से वे सांसारिकता में गर्क थे, किन्तु उनका आध्यात्मिक लंगर कल्पना की भूमि में गड़ा था ।"[1] पंडित जी में चिंतक और शासक के बीच का द्वन्द्व निरन्तर चलता था । सज्जन और शिष्ट व्यक्ति होने पर भी उनमें अहंकार भी था । दिनकर ने बताया है - "महात्मा गाँधी को छोड़कर अपने से श्रेष्ठ उन्होंने किसी को भी नहीं समझा और विचारों में भी गाँधीजी के ही विचार थे, जिनके सामने पंडित जी झुक जाते थे ।"[2]

शासकीय कठोरता नेहरूजी के भीतर आ गयी थी । अगर कोई बात अव्यवहारिक अथवा उन्हें नापसन्द हो तो बड़े से बड़े लोगों को, अपनी नज़दीकी-से-नज़दीकी आरमियों को वे नाहिं कर सकते थे । दिनकर नेहरूजी की तानाशाही प्रकृति की ओर भी संकेत किया है । "तब भी पंडित जी की मिज़ाज में तानाशाही की झौंक काफी थी । वे अपनी तानाशाही प्रवृत्ति का विरोध करनेवालों को बर्दाश्त नहीं करते थे, मगर चाहते थे कि दूसरे लोग उनकी ऐसी प्रवृत्ति को भी दुलरायें और उनका साथ दें ।"[3] नेहरू जी सदैव लोकप्रिय बने रहना चाहते थे । दिनकर के शब्दों में "असल में प्रधानमंत्री का जो पुरस्कार है, उसे वे अपने लिए काफी नहीं समझते थे । दुनिया का इतिहास प्रधानमंत्रियों का इतिहास नहीं है । वह संतों का इतिहास है, नबियों, दार्शनिकों, कवियों और पैगम्बरों का इतिहास है । इतिहास की जिस चोटी पर कवि, दार्शनिक और पैगम्बर बैठते हैं, जवाहरलाल चाहते थे कि इतिहास उन्हें भी उसी चोटी पर स्थान दे ।"[4]

---

1. लोकदेव नेहरू - दिनकर - पृ. 58-59
2. लोकदेव नेहरू - दिनकर - पृ. 31
3. लोकदेव नेहरू - दिनकर - पृ. 61
4. लोकदेव नेहरू - दिनकर - पृ. 59

दिनकर ने स्तालिन और जवाहरलाल की तुलना में दोनों के व्यक्तित्व और कार्य-पद्धति का विरोध दिखाया है और दोनों की उपलब्धियों का आकलन किया है । गाँधी जी और जवाहरलाल का संबंध उन्होंने गुरु-शिष्य का संबंध प्रमाणित किया है । गाँधीजी और नेहरू दोनों के परस्पर संबंध के चित्रों के माध्यम से देश का राजनीतिक इतिहास भी प्रस्तुत किया गया है ।

वस्तुतः दिनकर ने नेहरू जी के बहुआयामी व्यक्तित्व का उद्घाटन किया है । यह संस्मरण मुक्त मन से, बिना किसी पूर्वाग्रह के लिखा हुआ है । नेहरू जी के जीवन के अनेक स्तरों और पक्षों के चित्रण द्वारा लेखक ने नेहरू जी को एक महामानव के रूप में चित्रित किया है । नेहरू जी के प्रति दिनकर की अपार श्रद्धा भी यहाँ प्रकट हुई है । इसमें अनुभव और चिंतन का सुन्दर समन्वय है । इस रचना की भाषा बहुत समृद्ध, व्यावहारिक, सक्षम, परिमार्जित और प्राणवान है । कुल मिलाकर "लोकदेव नेहरू" दिनकर के चुस्त एवं व्यावहारिक गद्य का सुन्दर नमूना है ।

अन्य संस्मरणात्मक निबंध

"संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ" दिनकर के 27 संस्मरणों का संग्रह है । उनमें से कुछ श्रद्धांजलियों के रूप में लिखे गये हैं । फिर भी उनमें संस्मरण का पुट मिल ही जाता है । इसलिए हमने उनको भी संस्मरणात्मक निबंधों की कोटि में रख दिया है । इसके अतिरिक्त "वट-पीपल" के कुछ आरंभिक निबंध भी संस्मरणात्मक है । इन सभी निबंधों में दिनकर ने अनेक महान व्यक्तियों के जीवन के महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डालते हुए उनके चतुर्दिक जीवन का अवलोकन किया है । जायसवालजी, पं. राहुल सांकृत्यायन, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिली शरण गुप्त, बच्चन, पंत, नलिन विलोचन शर्मा, लक्ष्मीनारायण सुधांशु, मामा वरेरकर,

पं. बालकृष्ण शर्मा नवीन, महादेवी वर्मा, डा. राधाकृष्णन, काका साहेब, डा. राजेन्द्र प्रसाद जैसे अनेक महान लेखकों के जीवन को विषय बनाने के कारण दिनकर के संस्मरणों की गरिमा बहुत बढ गयी है ।

दिनकर के इन संस्मरणात्मक निबंधों में अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न करने की भंगिमा और काव्य की चुस्ती दिखाई पडती है । "पुण्यश्लोक जायसवाल जी" शीर्षक रचना में इतना कसाव और ऐसी सघनता है कि उससे कथा साहित्य का स्वाद मिल जाता है । यह संस्मरण जायसवाल जी के चरित्र के अन्तःप्रदेश में प्रवेश करने के उद्देश्य से लिखा हुआ है । जायसवाल जी अनुपम विद्वान थे । वे बडे ही भले आदमी थे । दिनकर ने उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन किया है, जैसे "जायसवाल जी मजाकिया भी एक ही थे और उनके सारे मज़ाक खूब गहरे, पैने और पुष्ट होते थे । अद्भुत से अद्भुत बातें उन्हें ठीक मौके पर सूझ जाती थीं । मज़ाक वे नये भी गठते थे और यदाकदा पुराने मज़ाक भी पूरी ताज़गी से सुनाया करते थे ।"[1] इसी तरह दिनकर ने जायसवाल जी की विद्वत्ता और उनके स्वाभिमान की झाँकी भी प्रस्तुत की है ।

दिनकर अपने संस्मरणों में कभी कभी व्यक्तियों के समग्र जीवन का सपाट किन्तु प्रभावशाली वर्णन इस ढंग से करते हैं कि रचनात्मकता का कोण सही और भरपूर रूप से उठा हुआ प्रतीत होता है । इस दृष्टि से "राहुल सांकृत्यायन" शीर्षक रचना बहुत प्रौढ है । "पीले उत्तरीय से आवृत एक दीर्घ काय मनोरम मूर्ति, नख से सिख तक प्रतापवान, ओठों पर अन्तर्मन से पल-पल उल्लसित आनन्द की हल्की रेखा, आँखों की ऐसी प्रभा जैसे उनके पीछे बहुदृष्टता

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 9

का कोश छिपा हो और जैसे वे अब भी कुछ हेर रही हों, आकृति प्रसन्न, आनन के चतुर्दिक् अमोघ शान्ति का आलोक, राहुलजी सचमुच पुरानी परंपरा के गुरू, तथागत से मिलते जुलते हैं, सिवा इसके कि उनकी आँखों में बुद्धदेव की आँखों की नीलिमा नहीं है ।"[1] पुष्ट रेखा चित्रात्मकता के सहारे दिनकर जी अपने संस्मरणों में जान डाल देते हैं । जैसे पंत जी के संबंध में "पंत जी को देखते ही सहसा यह भान होता है मानों आप परियों के देश से उतरे हुए किसी देवर्षि के सामने खडे हों । छोटा-हल्का शरीर, चेहरे पर सौम्य शांति जो, सचमुच ही, देवताओं की शांति है और सिर पर घने, लहराते बाल जो सुन्दर से सुन्दर रमणी को और भी सुन्दर बना सकते हैं, पंत जी के दर्शन से उत्पन्न होनेवाला प्रभाव नारी-दर्शन से उत्पन्न प्रभाव से मिलता-जुलता है ।"[2]

दिनकर के संस्मरणों में कुछ बातें सूत्र और सुभाषित पद्धति पर सामने आ जाती है । जैसे राहुल सांकृत्यायन के विषय में - "उनके जीवन में समय का माप कार्य है, दिन-रात नहीं ।"[3] या "मेहंदी का गुण लाली और अग्नि का गुण जैसे ताप है उसी प्रकार राहुल जी के स्वभाव की सबसे बडी विशेषता उनकी बुद्धिप्रियता और विचार-स्वातन्त्र्य है ।"[4] या जैसे बेनीपुरी के संबंध में "हिन्दी में वे अपने ढंग के शैलीकार थे ।"[5] दिनकर के अनेक संस्मरणों में वैचारिक विश्लेषण की प्रधानता है । राहुलजी, रघुवीर जी, निराला, पंत, बेनीपुरी आदि से

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 19
2. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 43
3. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 24
4. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 24
5. संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ - दिनकर - पृ. 115

संबंधित इन संस्मरणों में इतिहास के कोण से व्यक्ति के भीतर नहीं, बल्कि व्यक्ति के कोण से इतिहास के भीतर प्रवेश करने की प्रवृत्ति रही है ।

दिनकर के अनेक संस्मरणों में ऐसे विचारों को उभारा गया है जिनसे लेखक का वैयक्तिक लगाव है । "राजर्षि टंडन जी" शीर्षक रचना में दिनकर ने इतिहास के भीतर टंडन जी के संदर्भ में तीन बिन्दुओं को उजागर किया है - गाँधीजी से तुलना, हिन्दी का प्रश्न और भारतीय संस्कृति का प्रश्न । दिनकर ने इतनी गंभीरता के साथ इन बातों का विश्लेषण किया है कि हम कह सकते हैं, निस्सन्देह दिनकर ने कुछ ऐसे दुर्लभ क्षणों का उद्धार किया है जो मूल्यवान होते हुए भी काल प्रवाह में समा जाते तो भावी पीढ़ियाँ उसके स्वाद से शायद वंचित रह जातीं । लोक सभा में टंडन जी द्वारा मौलाना आज़ाद की आलोचना और उनकी प्रतिक्रिया पर मैथिलीशरण गुप्त की कविता या ऐसे अगणित दुर्लभ प्रसंगों को लेखक ने सहज रूप में प्रस्तुत किया है । कहने का तात्पर्य है, दिनकर ने इतिहास की अनेक महत्वपूर्ण बिन्दुओं को जान देने की कोशिश की है ।

दिनकर के कई संस्मरणों में अतिरिक्त स्वाद इसलिए आया है कि समय समय पर सामने आयी रंग-बिरंगी कविताओं को उन्होंने उसमें स्थान दिया है । प्रसंग के अनुकूल कविता जोड देने की उनकी कुशलता बिलकुल सराहनीय है । जैसे पं. बालकृष्ण शर्मा नवीन के संबंध में "आप भावुक थे जो दूसरों की पीडा ही देखकर नहीं रोता, उन्हें विशेष रूप से प्रसन्न देखकर भी आनंद के आँसू बहाता है । × × × × × कितनी विचित्र बात है कि दान की प्रवृत्ति अक्सर उनमें होती है जिनके पास धन नहीं होता और धन बहकर, बहुधा उनके पास जाता है, जो देने में असमर्थ होते हैं । मगर जो दानी है वह धनी होगा कैसे ?

"सूरा के तार सिर नहीं, दाता के धन नाहिं,
पतिबरत के तन नहीं, सुरति बसे मन माहिं ।"[1]

इसी तरह दिनकर ने बच्चनजी की ही एक कविता का उद्धरण देते हुए उन्हें जीवन के कवि साबित किये हैं - "हैं लिखें मधुगीत मैं ने हो खडे जीवन समर में ।"[2] कविताओं की उद्धृत करने की यह प्रवृत्ति "पं. बालकृष्ण शर्मा नवीन" में सबसे ज़्यादा है ।

दिनकर ने संस्मरणों में अपने दृष्टिकोण को परिचयात्मक से अधिक समीक्षात्मक बनाने का प्रयास किया है । अतिभावुक होने से वे बच सके हैं दिनकर के संस्मरणों की समीक्षात्मकता का स्वाद अनुभव करने योग्य ही है । महादेदीजी के संबंध में उन्होंने लिखा है - "कवि के रूप में महादेवी जी लगभग चालीस वर्षों से शून्य मंदिर में कर्पूर की शिखा के समान जलती रही हैं । शून्य से यहाँ तात्पर्य गार्हस्थ्य के अभाव से है और शिखा का अर्थ विरहानुभूति है । कविता में उनका जो रूप प्रकट हुआ है, वह तपस्विनी का रूप है, किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में वे कर्मठता की मूर्ति रही हैं । अतएव कहा जा सकता है कि प्रवृत्ति उनके बाहरी जीवन में है, भीतर वे निवृत्ति में लीन हैं । यह स्थिति लगभग ज्ञान की स्थिति है ।"[3] उसी प्रकार मामा वरेरकर के संबंध में उन्होंने लिखा है - "जीवन भर नाटकों से समाज का मनोरंजन और सुधार करते रहने के बाद मामा वरेरकर आज नाटकों की मृत्यु का दृश्य देख-देख हाथ मलकर रह जाते हैं । उनके भीतर का नाटककार आज भी जीवित और चैतन्य है, वर्ना भूमि-कन्या-सीता

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 36
2. संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ - दिनकर - पृ. 119
3. संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ - दिनकर - पृ. 83

जैसे नाटक की रचना वे नहीं कर पाते । किन्तु प्रोड्यूसर बरेरकर के हाथ बँध गये हैं ।"[1]

दिनकर अपने संस्मरणों में उद्दिष्ट चरित्र की एक कसी रेखा प्रस्तुत कर बाद में उसका विस्तार करता है । अत्यंत सधे कसे संक्षिप्त वाक्य में चरित्र की संपूर्ण रेखाओं में से व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करनेवाली प्रमुख रेखा को चित्रित कर देना लेखक की रेखाचित्रांकन कला का भी निदर्शक है । वेनीपुरी जी के संबंध में वे लिखते हैं - "वे उस आगे के भी धनी थे, जो राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलनों को जन्म देती है, जो परंपराओं को तोडती, और मूल्यों पर प्रभाव करती है, जो चिंतन को निर्भीक और कर्म को तेज़ बनाती है ।"[2] इसी तरह पं. लक्ष्मीनारायण सुधांशु का परिचय देते हुए वे लिखते हैं - "व्यक्तित्व मधुर, आचरणशील और सौहार्दपूर्ण बोली बेलोच लेकिन मीठी और प्रत्येक संबंध को पारिवारिक बनाने की इच्छा, राजनीति में रहते हुए भी साहित्य की चिंता ..... निर्भीक हिन्दी सेवी और श्रद्धेय मित्र सुधांशुजी गुणों के भंडार हैं ।"[3] इस तरह के अनेक प्रयोग दिनकर के संस्मरणों में देखने को मिलते हैं :- जैसे आचार्य रघुंवीर के संबंध में - "वे अकेले संस्था नहीं, लगभग एक राष्ट्र थे"। काका साहेब के बारे में "वे सच्चे अर्थों में इस युग के ऋषि है ।" महादेवी के बारे में "कवि के रूप में महादेवी जी लगभग चालीस वर्षों से शून्य मंदिर में कर्पूर की शिखा के समान जल रही है ।" इसी प्रकार "डा. राधाकृष्णन का ठाटबाद पैगम्बराना है" अथवा "राजेन्द्रबाबु मूर्तिमान भारतवर्ष थे" आदि में उक्त विशेषता लक्षित होती है

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 50
2. संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ - दिनकर - पृ. 108
3. संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ - दिनकर - पृ. 131

दिनकर के संस्मरणों में आर्द्रता और सहजता बहुत पुष्ट हैं । "पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी" जैसे कुछ संस्मरण विवरणात्मक और सूचनात्मक हैं । लेकिन ये सूचनाएँ साहित्यिक स्तर की हैं और लेखक की स्मरण शक्ति की विलक्षणता को ज्ञापित करती हैं । दिनकर ने टंडन जी, आचार्य रघुवीर, किशोरीदास वाजपेयी तथा लक्ष्मीनारायण सुधांशु के बहाने हिन्दी और उससे संबंधित प्रचार प्रसार या सुधार की समस्यायें और आन्दोलनों को छान डाला है । सुधांशु जी के संबंध में दिनकर ने लिखा है - "हिन्दी के अनन्य भक्त और सेवक के रूप में उन्होंने हिन्दी के लिए लडाई लडी और हिन्दी के नेता हुए । उनकी प्रकृति विशुद्ध साहित्यिक थी और राजनीति में जाकर भी उन्होंने हिन्दी की सेवा नहीं छोडी । जीवन भर हिन्दी के लिए वे रचनात्मक कार्य करते रहे और विपुल साहित्य के सृष्टा बने । वे कवि और कहानीकार भी थे । पर "काव्य में अभिव्यंजनावाद एवं जीवन के तत्त्व" और "काव्य के सिद्धांत" ये दोनों आलोचना पुस्तकें उनके अक्षयकीर्ति के आधार हैं । इनके कारण ही वे विशुद्ध साहित्यकार और आलोचक माना है जिसका राजनीतिज्ञ रूप राष्ट्रीयता का ही रूपान्तर था ।"[1] इसे देखकर निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि दिनकर के संस्मरण मात्र साहचर्य के संस्मरण, या महान व्यक्तियों के प्रति आदर प्रकट करने का कार्य ही नहीं, अपितु उनमें संपूर्ण कर्तृत्व की परख और मूल्यांकन विश्लेषण की वृत्ति कार्यरत है ।

दिनकर ने अपने संस्मरणों में तुलनात्मकता की प्रवृत्ति से विशेष आकर्षण पैदा कर दिया है । राहुल और बुद्धदेव, राहुल और आचार्य रघुवीर, गाँधी और पंत, पंत और निराला, सुधांशुजी और तिलक जी तथा राजेन्द्रबाबु और जवाहरलाल आदि की तुलनाएँ बहुत सटीक लगती हैं । गाँधीजी

---

1. संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ - दिनकर - पृ. 127

और पंत की तुलना एक विशेष मुद्दे को सामने रखकर की गयी है । लेखक प्रेमचन्द का एक कथन पहले उद्धृत करता है जिसके अनुसार नर जब नारी के गुण सीखता है तब वह देवता बन जाता है, और फिर सूचना देता है, "गाँधीजी ने भी धीरे-धीरे, व्यक्तित्व की साधना पूरी कर ली थी । उनकी पोती ने अपनी किताब के लिए जो "बापु मेरी माँ" यह नाम चुना, वह बहुत ही सार्थक चुनाव है । किन्तु पंत जी के लिए नारीत्व की साधना नयी नहीं, वह बचपन से ही उनके साथ है ।"[1] दिनकर के संस्मरणों में अंतरंगता का सहारा लिया गया है । नलिन विलोचन शर्मा के संबंध में उन्होंने लिखा है - "जन्म लेनेवाले लोग मरते ज़रूर हैं । लेकिन तब भी ऐसे लोग होते हैं जो मरने पर भी निःशेष नहीं होते । अपनी कृतियों के भीतर से, मित्रों के स्मृति-निकुंज से अपनी मरणोत्तर आयु की सूचना देते रहते हैं । नलिन जी सिंहासनासीन होकर गये हैं । उनकी मरणोत्तर आयु अभी शेष है ।"[2]

दिनकर के संस्मरणों में केवल अन्य व्यक्तियों के जीवन और विचारों की झाँकी ही नहीं मिलती, बल्कि उसके अपने विचारों की झाँकी मिलती है-"कलाकार को जो शक्ति जीवित रखती है वह, मुख्यतः भावों की शक्ति है, ज्ञान की नहीं । जब तक चिंतन भावुकता की अधीनता में चलता है, तब तक सरस कृतियों का निर्माण होता रहता है ; जब भावुकता को वह ठोकर मार देता है, तब बातें नीरस हो जाती हैं । किसी ने सच ही कहा है कि सरस्वती की जवानी कविता और उसका बुढापा दर्शन है ।"[3] अपने संस्मरणों में दिनकर कभी भी गंभीर बनने की चेष्टा नहीं करते हैं । उन्होंने कई संस्मरणों में अपने अन्तर्विरोधी टकराहटों का उल्लेख किया है । अपने मानसिक संघर्ष की

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 44
2. संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ - दिनकर - पृ. 126
3. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 47

सूचना एक स्थान पर दिनकर ने यों दी है - "आपका यह पलायनवादी शिशु संघर्ष से भागता रहा है । वह आज भी उदासी, मुर्दनी और शून्यता से भागकर घर में छिप गया है । लेकिन पलायन क्या चिरकाल तक संभव होता है ?"[1] दिनकर में महान लोगों से मिलने और उनके सत्संग का लाभ उठाने की तीव्र ललक थी । महान लोगों से मिलने पर जो प्रेरणा और आनंद प्राप्त होते थे, उसको अभिव्यक्त करने में दिनकर कभी हिचकते नहीं थे । उन्होंने लिखा है - "जायसवाल जी का प्रेम मेरे भीतर सूर्य बनकर उदित हुआ और मेरे भीतर जो कमल बन्द था, उसके दल स्वयमेव उन्मुक्त होने लगे ।"[2]

गद्य-काव्य - "उजली आग"

गद्य-काव्य साहित्य की वह विधा है, जिसमें शक्ति और सौन्दर्य लाने के लिए काव्यात्मक अभिव्यंजना-पद्धति का सहारा लिया जाता है । जब लेखक गद्य से काव्य का आनन्द लेना चाहता है तब वह भावानुभूति, रसानुभूति या चित्रात्मकता जैसे काव्य-गुणों को अपने गद्य का लक्ष्य बना देता है । "अपने उत्कृष्ट क्षणों में गद्यकार कवि बन जाता है और उसके गद्य में काव्य-गुण स्वतः ही आ जाते हैं ।"[3] अतः जिन गद्य-रचनाओं में भावना और कल्पना की प्रमुखता है वे ही गद्यकाव्य या काव्यात्मक गद्य कहला सकती हैं । दिनकर के मत में गद्य-काव्य वह गद्य-रचना है जो औसतन गद्य से ऊपर उठ जाता है, लेकिन काव्य का पद नहीं पाती । " वस्तुतः कल्पना, कोमल चिंतन, रागपूर्ण और ओजस्वी अभिव्यंजना, जो काव्य के तत्त्व हैं, गद्य में भी हो सकते हैं, और होते भी हैं,

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 40
2. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 3
3. गद्य-साहित्य का उद्भव और विकास - सं. डा. शंभूनाथ पांडेय - पृ. 179

किन्तु उन्हें हम कविता नहीं कहते, बल्कि एक उपसर्ग जोडकर गद्य-काव्य कहते हैं, जिसका अभिप्राय यह है कि काव्यात्मक अभिव्यंजना से जिस गद्य की सुन्दरता बढ जाती है वह औसत गद्य से ऊपर उठ जाता है पर वह काव्य का पद नहीं पाता ।"[1] दिनकर गद्य-काव्य को गद्य-काव्य न कहकर कवि या गायक के गद्य की संज्ञा देना चाहते है । दिनकर यह भी बताना चाहते हैं कि गद्यकार की भावना छन्दों में अपनी राह बना लेती है । उनके शब्दों में "..... आवेश की वाणी गेय बनकर निकलना चाहती है और उसे जब हम गद्य में व्यक्त करते हैं तब भी वह छन्द की लय को नहीं भूलती, गद्य में भी अपने लिए छन्द का एक क्षीण प्रवाह बनाती चलती है ।" विश्लेषण के उपरान्त, यह जानना कठिन नहीं कि गद्य भी काव्य बनने के लिए छंदों के प्रवाह की सहायता लेता है । मेरे विचार में ऐसे साहित्य को गद्य काव्य न कहकर कवि या गायक का गद्य कहना अधिक उपयुक्त होगा ।"[2] हमें यह देखना है कि क्या दिनकर की "उजली आग" "गद्य-काव्य" की इन परिभाषाओं के अनुरूप है ? और यह भी कि इस रचना की विशेषताएँ क्या हैं ?

दिनकर की "उजली आग" अपने ढंग की अद्भुत गद्य रचना है । डा. रामचन्द्र तिवारी "उजली आग" को लघुकथाओं, गद्य गीतों और सूक्तिबद्ध विचारों का संग्रह मानते है । उनके शब्दों में - "इसमें कुछ सांकेतिक लघुकथायें हैं, कुछ गद्य गीत हैं, कुछ अनुभाव के भीतर से छनकर आई हुई सूक्तियाँ हैं । कुछ उद्‌बोधनपरक वार्तालाप है । विशेषता यह है कि प्रत्येक गद्य-सृष्टि में धर्म, अध्यात्म, कला, दर्शन या जीवन के किसी अन्य पक्ष से संबद्ध प्रखर सत्य

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 113
2. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 114

की अनुभूति समाई हुई है ।"[1] पं.लक्ष्मीनारायण सुधांशु जी भी लगभग इसी विचार के हैं । उन्होंने लिखा है - "वास्तव में इस छोटी सी पुस्तक में प्रधानता बोध-कथाओं की है । इन कथाओं के कथानक कभी तो यूरोप में प्रचलित पुराणों से लिये गये हैं और कभी चीन के दर्शनाचार्यों से । किन्तु कितने ही कथानक बिलकुल मौलिक हैं । इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में कुछ विचारोत्तेजक काव्य गंधी निबन्ध भी हैं । सबसे विलक्षण निबंध "नूतन-काव्यशास्त्र" है जिसकी शैली गद्य-काव्य की है, किन्तु चिंतन काव्य शास्त्रीय है ।"[2] हमारा विचार है, उजली आग में कविता को जैसी संवेदनशीलता और रसात्मकता है । इसका बाह्य रूप भी साधारण गद्य की अपेक्षा अधिक लय युक्त, अलंकृत और सधा हुआ है । इसके अतिरिक्त "उजली आग" में वैयक्तिक आत्मनिष्ठता, तीव्र भावात्मकता, अन्तर्निहित ध्वनि-संगीत, भाव की एकात्मकता या भाव-संकलन और गद्य काव्य के लिए अपेक्षित भाव विकास और उसकी परिणति - सभी लक्षण न्यूनाधिक रूप में पाये जाते हैं । अतः "उजली आग" को गद्य-काव्य की श्रेणी में रखना ही समीचीन है ।

"उजली आग" की छोटी-छोटी रचनाओं में तीखी चुभन है, गहरा व्यंग्य है और है मनोमोहक काव्यात्मक स्फुलिंगों की जगमगाहट । छोटी होने पर भी इनमें गहरी-चोट करने की क्षमता है । दिनकर ने इसमें जीवन का सार निचोड कर रख दिया है । जैसे मधुमक्खी विभिन्न फूलों से पराग इकट्ठा करके मधुर मधु बना लेती है, ठीक उसी प्रकार दिनकर ने अनेक स्रोतों से सत्य के कणों को एकत्र कर अपनी प्रभावपूर्ण शैली में सँजो दिया है । सबसे बडी बात यह है कि ये रचनाएँ वर्तमान संदर्भ से याने आज के जीवन से जुडी हुई हैं ।

---

1. हिन्दी गद्य-साहित्य - डा. रामचन्द्र तिवारी - पृ. 423
2. दिनकर - सं. डा. सावित्री सिन्हा - पृ. 98

"आदमी का देवत्व" नामक पहली रचना में देवलोक में घटित एक घटना का जिक्र करते हुए लेखक यह प्रतिपादित करते हैं कि वास्तव में ज्ञान हमारे भीतर ही है । "बीज बनने की राह" में सत्कर्म करते हुए जीवन को सार्थक बनाने का उपदेश दिया गया है । "धर्म लोगे, धर्म में सूचित किया गया कि धर्म-गुरुओं की गोद में शरण लेने की अपेक्षा बच्चों के समान निष्कलंक होना ईश्वर को पहचानने का सही रास्ता है । "गुफावासी" में मनुष्य को दुष्कर्मों से अलग रहकर आत्मा को मलिन होने से बचाने का संदेश दिया गया है । "दो ध्रुव" में बैबिल का एक प्रसंग दिखाते हुए लेखक ने कहा है "..... जो राग में फँसा है, उसे विराग सिखाओ, किन्तु जो वैरागी हो चुका है, उसे रागों से अलग रहने का उपदेश तो निरर्थक हमेशा है ।"[1] "अफसर और पैगम्बर" में इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि जीवन संघर्षमय है और जो मनुष्य इस संघर्ष को समझता है, उससे लडता है वही विजयी हो सकता है । "उजला हाथी और गेहूँ के खेत" दो भाईयों के परस्पर प्रेम की कहानी है । "रहस्यवादी" में दिनकर के दार्शनिक विचारों की झाँकी मिलती है । "दृश्य के परे एक और वास्तविकता है जो अदृश्य है और इस अदृश्य वास्तविकता को छूने की कोशिश में आदमी पहली कुर्बानी अपनी अक्ल की देता है ।"[2] इस तरह के वाक्यों के सहारे दिनकर बता देते हैं कि विज्ञान ही सबकुछ नहीं है । बुद्धिवाद के साथ अध्यात्मवाद के समन्वय की बात वे सूचित करते हैं । मनुष्य मृत्यु से डरता है । जीवन की कठिनाईयों से तंग आकर मृत्यु की अगवानी करनेवाला भी मृत्यु के पास आ जाने पर, भयभीत होकर उससे बचने का प्रयास करता है । "जीवन के बोझ" में इस सत्य का उद्घाटन किया गया है ।

---

1. उजला आग - दिनकर - पृ. 10
2. उजला आग - दिनकर - पृ. 15

"नर-नारी", "माया की रचना", "नारी की रुचि", "लो बेल दाम साँस सस्ती", "अर्धनारीश्वर" जैसी रचनाओं में नर-नारी संबंध का विश्लेषण किया गया है । "सिर मुँडा देने से नारी का नारीत्व लुप्त नहीं होता"[1], "रूप साकार कवित्व है"[2], "धरती पर अगला अवतार अर्धनारीश्वर का अवतार होगा"[3] आदि परामर्श काफी सारगर्भित हैं । "कवि" कवि के आत्मनिर्वासन की ओर उसकी कभी न खतम होनेवाली खोज की सूचना देती है । "नूतन काव्य-शास्त्र" दिनकर के मौलिक चिंतन का प्रतिफलन है । "दर्शनों के जाल और विचारों के व्यूह में फँसकर मनुष्य हैरान हो रहा है । इस घमासान में क्या उस बिन्दु का पता नहीं लगाया जा सकता जहाँ से पाप और पुण्य समान दूरी पर है, जहाँ से नाम और अर्थ एक समान समीप है, जहाँ से देह और मन तुल्य दीखते है ।"[4] ऐसी बातों के सहारे दिनकर साहित्य के क्षेत्र में एक नया दृष्टिकोण पेश करते हैं । कविता क्या हैं ? क्या होना चाहिए ? जैसी बातों पर भी विचार किये गये हैं । कोई संदेह नहीं, यह रचना दिनकर की प्रतिभा की झलक देती है । "कला और आचार " में एक गहरा सामाजिक व्यंग्य है । लेखक इस सत्य की ओर इशारा करते हैं कि पाप की पूजा करनेवाले लोग समाज के माथे पर बैठे हुए हैं । "मन्दिर की वेदी" में लेखक ने कर्म की महत्ता बतायी है तो "नदी के पार की आग" में कवि को उसके अपने आचरणों पर ध्यान रखने का उपदेश दिया है । "कलाकार" में यह बताया गया है कि कलाकार का काम कला की रक्षा करने का है, समाज-सुधार का नहीं । "बनिया और किसान" प्रतीकात्मक और व्यंग्यात्मक रचना है । "ईर्ष्या" में यह सत्य दर्शाया गया है कि ईर्ष्या किसी भी हालत

---

1. उजली आग - दिनकर - पृ. 18
2. उजली आग - दिनकर - पृ. 23
3. उजली आग - दिनकर - पृ. 35
4. उजली आग - दिनकर - पृ. 50

में पराजय नहीं मानती, वह किसी न किसी रूप में अपने को अभिव्यक्त करती है । "मृत्यु" में लेखक ने जीवन-मरण की मार्मिक व्याख्या की है । "अंतिम दृश्य" का स्वरूप रूपक है । इसमें भी मृत्यु को शाश्वत सत्य बताने का प्रयास किया गया है । संसार का इतिहास में लेखक संसार का समग्र इतिहास एक ही वाक्य में कह देते हैं - "सब जन्में, सब ने यातनाएँ भोगीं, और सब मर गये ।"[1] "मृत्यु के बाद" में बताया गया है कि कोई भी यह नहीं जानता कि मृत्यु के बाद जीव का क्या होता है । "आशा और निराशा" में लेखक साबित करते हैं कि यह जीवन सुख-दुःख सम्मिश्रित है । "पत्थर के दूसरी ओर" में एक नीतिपरक घटना का जिक्र किया गया है । मनुष्य के भीतर में ही उसका शत्रु निवास करता है - यह तत्त्व "पराजय" में देखने को प्राप्त होता है । "फूल की आरी" में लेखक ने यह विचार व्यक्त किया है कि "आदमी जिस आसानी से फूलों से चीरा जा सकता है उस आसानी से वह लोहे से चीरा नहीं जा सकता ।"[2]

निर्माता और विजेता में इस सत्य की ओर संकेत किया गया है कि विजेता का काम प्रायः विध्वंसात्मक होता है । "वीर" में लेखक कहना चाहते हैं कि वीर वही है जो शत्रुओं का शिरश्चेत करते समय इस बात का सवाल रखता है कि तलवार कहीं उसकी अपनी आत्मा पर तो नहीं चल रही है । "विश्व-पालक" में पसीने से कमाकर अन्न खाने की बात बतायी गयी है । "यमराज का साला" दो मूर्खों की कहानी है । "तेज़ औज़ार का भय" में दिनकर का कहना है - "जिसका औज़ार सीधा नहीं, उसका व्यवहार सीधा नहीं ।"[3] "सपनों का सपना" एक स्वप्न के समान सुन्दर रचना है जिसमें लेखक ने बताया है कि "सत्य क्या है और असत्य क्या है, इसे मानने का कोई निश्चित आधार नहीं है ।

---

1. उजली आग - दिनकर - पृ. 67
2. उजली आग - दिनकर - पृ. 76
3. उजली आग - दिनकर - पृ. 85

जो बात निश्चितता से कही जा सकती है, वह यही है कि हम सबके सब अँधेरे में घूम रहे हैं ।"[1] रूठी हुई आत्माओं में बौद्धिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया गया है । मनुष्य की सबसे बड़ी कमज़ोरी है उसका संशय ग्रस्त होना- इस तथ्य का चित्र "मन का पाप" में देखने को मिलता है । "खंडन का सुख" सूचित करती है कि आध्यात्म के क्षेत्र में हठवादिता का कोई स्थान नहीं । दुनिया में सज्जनों की संख्या बहुत कम है - "सुकरात का मकान" इस बात का सूचक है । "साहस माता" में बताया गया है, महत्वाकांक्षा का बीज बचपन में ही व्यक्ति के भीतर बोना चाहिए । "घोड़ा और ऊँट" में लेखक ने कहा है कि अति लोभ में आकर मनुष्य जो कल्पना करता है, उसका कुफल मनुष्य को भोगना ही पड़ेगा । "ऊँचाई गीत" उन कवियों पर गहरा व्यंग्य है जिनकी कविताओं में अस्पष्टता है । "कौआ और बाज" में स्पष्ट बताया गया है कि कलाकार के बाह्य रूप और उनकी रचनाओं के बीच कोई संबंध नहीं है । ईर्ष्या नाश का कारण हो सकती है - चाँद और सूरज में यह सत्य दर्शाया गया है । "ज्ञान की जिज्ञासा बुद्धिमानी का चिह्न है । आत्म-सुधार की बेचैनी पुण्य का प्रमाण और लज्जित होने की योग्यता साहस की पहली किरण है । ये तीन गुण जिसमें हैं, वह सच्चा प्रशासक बन सकता है"[2] - ऐसी बातों का उल्लेख कर "शासन और राजनीति" में लेखक ने एक आदर्श समाज की कल्पना प्रस्तुत की है ।

2. रेडियो रूपक - "हे राम !"

रेडियो नामक साहित्य का अभिनव स्वरूप विधान है । इसके विभिन्न रूप प्रचलित हैं जैसे - नाटक, रूपक, रूपांतर, फैंटसी, मोनोलॉग, संगीत रूपक आदि । इनमें से रेडियो रूपक अत्यधिक प्रभावोत्पादक माना जाता है । रेडियो रूपक वास्तविक घटनाओं और तथ्यों का नाटकीकृत रूप है । लेकिन जब

---

1. उजली आग - दिनकर - पृ. 87
2. उजली आग - दिनकर - पृ. 108

ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करना पड़ता है तब रूपक में ऐतिहासिक पात्रों का कार्य अभिनेता ही संपन्न कर देता है । आजकल रेडियो रूपक शब्द अंग्रेज़ी के "रेडियो फीचर" के लिए व्यवहृत किया जाता है । रेडियो रूपक में सजीवता, सरसता, मनोरंजकता, नाटकीयता, गतिशीलता और समुचित वातावरण की सृष्टि अनिवार्य मानी जाती है । दिनकर जी शब्दों की ध्वनि को रेडियो रूपक का आधार तत्त्व मानते हैं । "हे राम" की भूमिका में दिनकर ने अपनी रेडियो रूपक संबंधी धारणाओं का निरूपण किया है । उनके अनुसार "रेडियो रूपक" की विशेषता शब्दों की ध्वनि में है । रेडियो रूपक में ध्वनि के ही ज़रिए कथा कही जाती है, चरित्र-चित्रण किया जाता है और प्रसंग का कवित्व उभारा जाता है ।"[1]

"हे राम" दिनकर के तीन रेडियो रूपकों का संग्रह है जिसमें गाँधीजी, स्वामी विवेकानन्द और महर्षि रमण के जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गयी है । स्वामी विवेकानन्द और महर्षि रमण वाले रूपक में उन महापुरुषों के संपूर्ण जीवन की झाँकी मिलती है । लेकिन गाँधीजी के जीवन के केवल अंतिम चार वर्षों की घटनाओं का प्रस्तुतीकरण हुआ है । इसमें कोई संदेह नहीं कि गंभीर श्रद्धा और प्रामाणिक जानकारी के आधार पर ही दिनकर ने ये रेडियो रूपक लिखे हैं । इन कृतियों का मुख्य लक्ष्य चरित नायकों की प्रमुख विशेषताओं को कथोपकथन के माध्यम से उभार कर देना है ।

रेडियो रूपक की सफलता इस बात में है कि पाठक इस स्थिति का बोध करे कि वह पढ़ नहीं, सुन रहा है, और श्रोता यह सोचें कि वह सुन नहीं देख रहा है । केवल ऐसी ही स्थिति में पाठक या श्रोता रूपक का सही आनन्द

---

1. "हे राम" की भूमिका - दिनकर - पृ. 4

ले सकता है । इसके लिए कथात्मक विकास, पात्रों के चारित्रिक विकास, उनके अन्तर्द्वन्द्वों, विचारों और भावों से पाठक या श्रोता को परिचित कराना आवश्यक है । रूपक के विविध प्रसंगों में जो कवित्व और सौन्दर्य है इसका बोध भी ध्वनि के माध्यम से कराना पडता है । दिनकर के तीनों रूपक अपने चरित नायकों के आधारभूत गुणों का विश्वसनीय परिचय देने एवं श्रोताओं और पाठकों के मन में उनके प्रति श्रद्धा जगाने में समर्थ हैं । कथात्मक विकास, चारित्रिक द्वन्द्व और जीवन्त रस सृष्टि की दृष्टि से दिनकर के रेडियो रूपक अत्यंत सफल हुए हैं ।

वाचक-वाचिका (नरेटेर्स) के कथोपकथन द्वारा प्रारंभ में अभीष्ट विषय की भूमिका प्रस्तुत करने, बीच-बीच में प्रसंगों को जोडते चलने और अन्त में चरित्र व्यंजक टिप्पणी (या गीत) द्वारा समापन करने का ढंग दिनकर ने अपनाया है । उन्होंने कर्मठ वेदान्ती विवेकानन्द और तत्त्वज्ञान के मूर्त रूप महर्षि रमण के जीवन दर्शन का परिचय दिया है और उन दोनों को एक मानवोत्तर दिव्यता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है । इसके बदले गाँधीजी के चित्रण में अधिक मानवीयता और अधिक आत्मीयता झलकती है । एक ऐसे महापुरुष की दुर्बलता और शक्तिमत्ता उनमें एक ही साथ उभरी है जो विजय की घडियों में अपने अनुयायियों द्वारा ही प्रवंचित और परित्यक्त होने पर भी अपने सिद्धान्तों में आस्था नहीं खोता और अपने विश्वासों का मूल्य अपने प्राणों से चुकाता है । दिनकर ने गाँधीजी के अडिग विश्वासी मानवीय रूप का प्रभावी दिग्दर्शन कराया है ।

3. बाल-कथाओं का संग्रह - "चित्तौर की साका"

"चित्तौर की साका" दिनकर की बालकथाओं का संग्रह है । इसमें जो सात कहानियाँ हैं, वे भारतीय इतिहास के रजपुत काल से संबद्ध हैं । मेवाड का स्थान भारत वर्ष में ही नहीं, प्रत्युत समस्त विश्व के इतिहास में अत्यंत

ऊँचा रहा है । और चित्तौर तो संपूर्ण मेवाड के बलिदानों की केन्द्रभूमि ही है । चित्तौड वीरता, बलिदान और स्वाभिमान आदि का पर्याय रहा है । इस पुस्तक की सातों कहानियों {"चित्तौर की पहली साका", "हठी हम्मीर", "मेवाड मुकुट-राणा सांगा", "चित्तौर की दूसरी साका", पन्नाधाई का अपूर्व बलिदान", "चित्तौर की तीसरी साका", "गौरव की अंतिम शिखा - राणा प्रताप"} में इतिहास प्रसिद्ध पात्रों के वीरता-बलिदान पूर्ण कार्यों का ओजस्वी ढंग से वर्णन किया गया है । ये कहानियाँ बच्चों के निष्कलुष मन में वीरता, निर्भीकता और राष्ट्रीयता की ऊँची भावनाएँ जगाने में समर्थ हो गयी हैं । सरल सुबोध भाषा में बच्चों के लिए लिखी इन कहानियों में राष्ट्रीय उद्‌बोधन का कार्य सफलता से किया गया है ।

प्रस्तुत संग्रह की प्रथम कहानी है "चित्तौर की पहली साका" । राणा पद्मिनी के अलौकिक सौन्दर्य से अभिभूत होकर उसको पाने के लिए अलाउद्‌दीन खिलजी ने मेवाड पर आक्रमण किया । जान की बाजी लगाकर चित्तौड के रजपुतों ने अलाउद्‌दीन का सामना किया । दिनकर ने प्रस्तुत कहानी में चित्तौडवासियों की वीरता एवं उनके बलिदान का रोचक वर्णन किया है । "हठी हम्मीर" में बहादुर बुद्धिमान और उदार राणा हम्मीर की वीरता की कहानी है । उन्होंने मेवाड ... की छिन्न-भिन्न शक्ति को संगठित करके उसे सुदृढ बना डाला और कई बार महमूद को पराजित किया । उनके बचपन की वीरता, फिर राजा बनने के बाद का साहस, इन सबका चित्रांकन प्रस्तुत कहानी में हुआ है । "मेवाड मुकुट राणा सांगा" में राणा सांगा और बाबर के बीच के संग्राम का वर्णन है । "चित्तौर की दूसरी साका" में राणी करुणावती की कहानी कही गयी हैं । यद्यपि बाबर से राणा सांगा ने कडी लडाई लडी थी तो भी बाबर के पुत्र हुमायूँ ने अपनी राखीबन्द बहिन करुणावती की विनती स्वीकार कर चित्तौड के लिए लडाई लडी ।

उन्होंने बहादुरशाँह को पराजित करके चित्तौड विक्रमाजित को सौंप दिया । प्रस्तुत कहानी में दिनकर मानव चरित्र की अपूर्व उज्ज्वलता का दृष्टांत प्रस्तुत किया है । "पन्नाधाई का अपूर्व बलिदान" सचमुच एक अमूल्य एवं अपूर्व बलिदान की कहानी है । राणा सांगा के पुत्र उदयसिंह की रक्षा के लिए पन्नाधाई ने अपने बच्चे का बलिदान किया । अपनी कोख से जन्मे हुए पुत्र की निर्मम हत्या के हृदयविदारक दृश्य को उसने पूरे धैर्य के साथ देखा । रजपुतों के अटूट देशप्रेम की यह एक उज्ज्वल कहानी है । चित्तौड की उदयसिंह की कायरता और उनके दो वीर सेनानियों के त्याग एवं बलिदान की कहानी है "चित्तौड की तीसरी साका" । अक्बर के आक्रमण के समय चित्तौड नरेश उदयसिंह देश छोडकर भाग गया । लेकिन वहाँ के जयमल और फत्ता नामक दो सरदार हार मानने को तैयार नहीं थे । हर तरह की वीरता दिखाने के बाद उन्होंने मातृभूमि के लिए अपने शीश चढा दिये । "गौरव की अंतिम शिखा - राणा प्रताप" राणा प्रताप के साहस एवं देशप्रेम का परिचय देती है । अभावों के बीच भी मातृभूमि की स्वतंत्रता की रक्षा का मोह रखनेवाले प्रताप की कहानी बिलकुल प्रेरणादायक है ।

दिनकर ने इन कहानियों के माध्यम से लोगों के मन में देशप्रेम एवं साहस की भावना जगाने का कार्य किया है । उन्होंने हमारे इतिहास के उस महत्वपूर्ण अध्याय को खोलकर दिखाया है जो हमें जीवन की सही राह का पता दे सकता है । दिनकर ने कहा है - "किन्तु प्रताप का अहंकार एक दैवी वरदान था जो सिर्फ सत्रहवीं सदी के हिन्दुस्तान में ही नहीं, बल्कि आगे की पीढियों में भी हिन्दुस्तान का मुख उज्ज्वल करने को उत्पन्न हुआ था । यह एक ऐसा अहंकार था जिसे याद करके भारतवासी गुलामी के गाढे दिनों में भी एक आत्मिक संतोष पाते रहे और जो आज भी हमारा मस्तक ऊँचा किए हुए हैं ।"[1]

---

1. चित्तौर की साका - दिनकर - पृ. 55

दिनकर ने एक कहानी में जीवन में मुसीबतों का सामना करके आगे बढने का संदेश दिया है - "मगर मुसीबतों की शिक्षा जीवन की सबसे बडी शिक्षा होती है । विपत्तियाँ ही वे विद्यालय है जहाँ पर सीखे हुए पाठ मनुष्य के जीवन भर काम देते हैं ।"[1] दिनकर के इस तरह के और भी महत्वपूर्ण विचार इस पुस्तक में यत्र-तत्र प्रस्तुत किये गये हैं - जैसे - "यह मानव-चरित्र की उज्ज्वलता का एक ज्वलंत दृष्टांत है । यह इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य जब धर्म और संप्रदाय तथा कलह और द्वेष के बंधनों से मुक्त होकर अपने हृदय के शुद्ध भावों से प्रेरित होकर आगे बढने लगता है, तब उसके चरित्र से ऐसी रोशनी फैलती है जिनसे वर्तमान ही नहीं, प्रत्युत्, भावष्य भी आलोकित होता है ।"[2]

कहना न होगा, सुबोध शैली में रचित प्रस्तुत कृति दिनकर साहित्य की एक विशेष दिशा उद्घाटित करती है ।

---

1. चित्तौर की साका - दिनकर - पृ. 43
2. चित्तौर की साका - दिनकर - पृ. 35-36

अध्याय - पाँच

दिनकर का गद्य-शिल्प

दिनकर जी का गद्य-साहित्य विभिन्न साहित्य-रूपों के माध्यम से सामने आया है । वे आलोचक, निबंधकार, संस्मरण लेखक जैसी अनेक भूमिकाओं में दिखाई पड़ते हैं । दिनकरजी शैली पर विशेष ध्यान नहीं देते थे । उनकी दृष्टि में शैली वक्तव्य वस्तु से भिन्न नहीं है । कविता की शैली पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है -"शैली कविता की पोशाक नहीं, त्वचा होती है । वह भावों के साथ अवतीर्ण होती है, आगे या पीछे नहीं और भाव कवि के दृष्टिबोध से आते हैं । दृष्टिबोध वह चीज़ है जिसे साम्य आइडियोलजी और जर्मन विद्वान वेल्टअनशाऊँग (**Weltanschauung**) कहते हैं । वह उस समग्र दृष्टि का नाम है जिससे हम संसार और उसकी समस्याओं को देखते हैं । यह दृष्टिबोध कवि की प्रेरणा का स्रोत होता है और कृतियों में वह, ठीक उसी प्रकार, अदृश्य रूप से विद्यमान रहता है, जैसे सृष्टि के भीतर ब्रह्म की सत्ता विद्यमान है । शैली के अनुरूप भावों की खोज नहीं की जाती, भाव ही अपने अनुरूप शैली का संधान कर लेते हैं ।"[1] दिनकर जी शैली को विचार से अलग करके देखना नहीं चाहते । उनके मत में शैली और विचार दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध है । "शैली विचार की त्वचा होती है । जहाँ विचार नहीं, वहाँ कोई भी शैली काम नहीं करेगी । एक ही भाव दो शैलियों में नहीं कहा जा सकता । शैली में परिवर्तन का अर्थ विचार में परिवर्तन होता है । जो कवि यह कहता है कि अब मैं शैली का परिमार्जन में लगा हुआ हूँ, वह असल में विचारों के परिमार्जन की ही बात सोच रहा है । जिस अनुपात में विचार अभिव्यक्ति पाते हैं, उसी अनुपात में

---

१. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृ. १४८

वे विचार होते हैं । जो विचार अभी व्यक्त नहीं हुआ, समझना चाहिए कि वह अभी अस्तित्व में नहीं है । जब विचार धुँधले और अस्पष्ट रह जाते हैं, कवि की शैली भी धुँधली और अस्पष्ट हो जाती है । जब हमें कहने योग्य कोई बात सूझती है, उसकी भाषा हमें आप-से-आप मिल जाती है । किन्तु जब कहने की बात हमें नहीं सूझती, कलम, कूँची और जीभ सब के सब निश्चल रह जाते हैं, मौन रह जाते हैं । कोई भी कवि दूषित शैली में अच्छी बात नहीं कह सकता । अतएव, शैली पर ज़ोर देना अच्छा काम है, वह साहित्य का काम है, कला का काम है । जिसका अभ्यास कठोर है उसकी शैली मितव्ययी और चुस्त होती है और चुस्त विचार चुस्त शैली में ही प्रकट हो सकते हैं ।"[1] भाषा या शैली के प्रति दिनकर का कोई विशेष आग्रह नहीं जान पडता । उनके शब्दों में "साहित्य में जब भी शैली का सौन्दर्य प्रधान होता है, जीवन गौण बन जाता है । और जो भी कवि जीवन को प्रभावित करना चाहता है, वह शैली के पीछे अपना दिमाग कम खपाता है ।"[2] इन्हीं बातों से स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर भाव और शैली को एक ही सिक्के के दो पहलू मानते हैं ।

दिनकर की गद्य शैली के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने संक्षिप्त रूप में ही सही, अपने-अपने मत व्यक्त किये हैं । उनमें से दिनकर की गद्य शैली की विशेषताओं को समझने में सहायता देनेवाली कुछ टिप्पणियों पर एक सरसरी दृष्टि डालना उचित ही होगा । डा. रामचन्द्र तिवारी ने हिन्दी गद्य साहित्य में लिखा है - "दिनकर की भाषा और शैली उनकी मानसिक चेतना का प्रतीक है । दिनकर के व्यक्तित्व के अनुरूप उनकी गद्य शैली अनेक प्रकार की

---

1. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृ. 147
2. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृ. 173

भंगिमायें ग्रहण करती है । दिनकर का व्यक्तित्व पौरुष, ऊर्जा निष्ठा, सरसता, गंभीरता और समर्पण के समन्वित आधार पर संघटित है । उनकी शैली में ये सभी तत्त्व विद्यमान हैं ।"[1] डा. आनन्द प्रकाश दीक्षित के अनुसार "आपने अध्ययन, चिंतन और अनुभूति तीनों को समान रूप से अपनाया है और विचारों के प्रकाशन के समय सन्तुलित शैली के साथ-साथ जहाँ तहाँ वक्तृता-शैली का प्रवाह और ओज भी मिश्रित हो गया है । इस रूप में आपका गद्य उक्त चार प्रकार की शैलियाँ उपास्थित करता चलता है । भाषा के प्रति दिनकर का कोई विशेष आग्रह न जान पड़ता, भले ही तत्समता की ओर उनकी भाषा का झुकाव सर्वत्र दिखाई देता है । जटिलता और दुर्बोधता का प्रयत्न न होने से गद्य साफ-सुथरा और सुबोध है ।"[2] हिन्दी वाङ्मय - बीसवीं शताब्दी में दिनकर की भाषा और शैली के संबंध में लिखा गया है - "वे कवि प्रतिभा के धनी लेखक हैं इसलिए गद्य में भी अप्रस्तुतों की सहायता से बिम्ब विधान करने की कुशलता उनके भीतर पायी जाती है । यही कारण है कि उनका विषय-निरूपण स्पष्ट होने के साथ-साथ कलात्मक सज्जा से भी आपूर्ण होता है, लेकिन जैसा उनका दावा है वे कलाकार की-सी पच्चीकारी नहीं करते और न सर्जना के बीच में ठहरकर शैली को निखारने के लिए शिल्पात्मक प्रयोग भी कर सकते हैं । विचार प्रवाह उत्पन्न हो जाने पर उनकी लेखनी में इतना धीरज नहीं रहता, फिर भी स्वाभाविक ढंग से वे ऐसी काव्यात्मक भाषा का व्यवहार कर जाते हैं जो विचारों को मूर्तिमान कर सके ।"[3]

डा. ओंकार नाथ शर्मा के अनुसार "दिनकर जी ओजस्वी शैली के प्रयोक्ता हैं और उनकी शैली विस्तारमयी अथवा व्यास प्रधान है ।"[4]

---

1. हिन्दी गद्य साहित्य - डा. रामचन्द्र तिवारी - पृ. 430
2. गद्य साहित्य का उद्भव और विकास - पृ. 138
3. हिन्दी वाङ्मय बीसवीं शती - पृ. 352
4. हिन्दी निबन्ध का विकास - पृ. 269

उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर की शैली उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है । उनकी शैली सहज और स्वाभाविक है । आगे हम दिनकर के गद्य की भाषा एवं शैली का विस्तृत अध्ययन करेंगे । यद्यपि दिनकर ने शैली पर विशेष ध्यान नहीं दिया तो भी उन्होंने जाने-अनजाने अपने समय की प्रचलित सभी शैलियों का प्रयोग किया है । हमें विश्वास है, दिनकर के गद्यकार को समझने में उनकी गद्यशैली का अध्ययन काफी सहायक होगा ।

दिनकर की गद्य-शैली

दिनकर जी मूलतः कवि हैं । फिर भी उनके गद्य का विस्तार अनेक दिशाओं में गतिशील दिखाई देता है । दिनकर निबंध, आलोचना, संस्मरण, यात्रा विवरण, डायरी, सांस्कृतिक निबंध, कहानियाँ, गद्य काव्य आदि के लेखक के रूप में हमारे सामने हैं । दिनकर जी समन्वय युक्त जीवन को सुखदायी मानते हैं । शायद इसलिए उनकी रचनाओं में विभिन्न शैलियों के समन्वय की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है । इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उन्होंने कभी किसी विशेष शैली पर ध्यान नहीं दिया । भावों के अनुरूप शैली बनती रही, बदलती रही । आगे हम दिनकर के संपूर्ण गद्य साहित्य में दिखाई पड़नेवाली विभिन्न शैलियों पर विचार करेंगे ।

दिनकर जी की अभिव्यंजना शैली सरल, कवित्वपूर्ण और प्रवाहमयी है । उनकी शैली की विशिष्टता यह है कि उसमें वक्तव्य की नवीनता, मौलिकता और चिंतन की सुव्यवस्थित पद्धति है । दिनकर ने प्रचलित सभी शैलियों का प्रयोग किया है । फिर भी मुख्यतः उन्होंने विचारात्मक शैली अपनायी है । इसके अतिरिक्त विवरणात्मक, भावात्मक, काव्यात्मक, व्यंजनात्मक, व्यंग्यात्मक और सूक्तिशैली का प्रयोग भी उन्होंने किया है ।

विचारात्मक शैली

दिनकर जी के समस्त गद्य साहित्य के अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उनकी मुख्य शैली विचारात्मक है । उनकी प्रायः सभी रचनाओं में यह विचारात्मक शैली देखने को मिलती है । उनकी यह विचारात्मक शैली वस्तुनिष्ठ और अध्ययन प्रधान है । संस्कृति के चार अध्याय, हमारी सांस्कृतिक एकता, धर्म, नैतिकता और विज्ञान, शुद्ध कविता की खोज, अर्ध नारीश्वर वट-पीपल आदि प्रबंधों और निबंधों में इस शैली के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं । जैसे "हिन्दु धर्म बहुत प्राचीन काल से, दो प्रकार के ग्रंथों पर आधारित रहा है । इनमें से एक को निगम और दूसरे को आगम कहने का रिवाज़ है । निगम वेद है जिन्हें हिन्दु अपौरुषेय मानते हैं । आगमों की उत्पत्ति शिव शक्ति या विष्णु से मानी जाती है जो ईश्वर-कोटि में होने पर भी, पुरुष-कोटि में आते हैं । निगम आर्य-भावों तक सीमित हैं । आगमों की विशेषता यह है कि वे आर्य, आर्येतर और प्राग्वैदिक, तीनों ही प्रकार की परंपराओं का आख्यान करते हैं । वैसे भक्ति के पुट दोनों में भी हैं, किन्तु वेदों का सारा ज़ोर कर्मकाण्ड पर है । जिस भक्ति का व्यापक प्रचार भागवत के समय में आकर हुआ, उसके बीज, उद्भव और विकास की सारी कहानियाँ आगम-ग्रंथों में हैं, जिनमें से अनेक को पुराण भी कहते हैं । इसी आगमिक धारा की परिणति भक्ति में हुई ।"[1]

दिनकर जी जिस युग में लेखनी चलाना शुरू कर रहे थे, उस युग का प्रभाव उनकी रचनाओं में स्पष्ट ही दीख जाता है । उनके युग का भारतवर्ष पुराने और नये के संघर्ष में से गुज़र रहा था । नवीन के प्रति

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 368

उत्कट औत्सुक्य और प्राचीन के प्रति दुर्दमनीय निष्ठा, यही उस भारतवर्ष का परिचय है । दिनकर ने इन दोनों बातों का बड़ा ही प्रौढ सामंजस्य किया है । उनकी दृष्टि में भारतीय संस्कृति में नयी मान्यताओं को आत्मसात् कर लेने की अद्भुत क्षमता है । उनके शब्दों में "भारत कोई नया देश नहीं है । जिस भाषा में उसकी संस्कृति का विकास हुआ वह संसार की सबसे प्राचीन भाषा है । जो ग्रंथ भारतीय सभ्यता का आदि ग्रंथ समझा जाता है, वही समग्र भावना का भी प्राचीनतम ग्रंथ है । विदेशियों के द्वारा बार-बार पद-दलित होने पर भी भारत अपनी संस्कृति से मुँह मोडने को तैयार नहीं हुआ । अब जो वैज्ञानिक और औद्योगिक सभ्यता आ रही है, वह भी भारत से उसके अतीत का प्रेम नहीं छीन सकेगी । सत्य केवल वह नहीं है, जो पिछले दो सौ वर्षों में विकसित हुआ है । उस ज्ञान का भी बहुत-सा अंश सत्य है, जिसका विकास पिछले छह हज़ार वर्षों में हुआ है । भारत को एक नवीन सत्य भी चाहिए, जो शारीरिक समृद्धि को संभव बनाता है और प्राचीन काल का वह सत्य भी जो शारीरिक समृद्धि के लिए आत्मा के हनन को पाप समझता है ।"[1]

दिनकर जी ने वस्तुकथन की पद्धति को अपनाया है जिसमें विचारात्मक और तथ्यमूलक तत्त्व विशिष्ट मात्रा में देखे जा सकते हैं । जैसे "अतल में, रोमांसवाद, गतिशील आन्दोलन था, जिसकी यात्रा जीवन के समुच्चय की ओर थी । यह उस एकान्त का काव्य नहीं था, जहाँ आत्मा निष्क्रिय और निस्पंद रहती है, प्रत्युत, यह जीवन के होने का काव्य था, उसके आस्फोटन और गतिमयता की कविता थी । अतीक के प्रति ममता और अतीत से विद्रोह, अतिवादी आदर्शवाद और स्थूल वास्तविकता, जो विषय

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 745

दैनिक जीवन के हैं और जो वस्तुएँ काल्पनिक और दूरस्थ हैं, प्रजातन्त्र में विश्वास और सामंतशाही की चाह, मनुष्य की पूर्णता की आशा और उसका गंभीर नैराश्य, ये सारे लक्षण यूरोप के रोमांसवाद में भी थे और हिन्दी की छायावाद में भी ।"[1]

दिनकर जी की विचारात्मक शैली में परिस्थितियों का अवलोकन करने की विशेष प्रवृत्ति है । किसी भी मत की स्थापना करने के लिए वे परिस्थितियों का अवलोकन करते हुए अपनी स्थापना प्रस्तुत करते हैं । "नर-नारी का पारस्परिक संबंध सदा से विवाद का विषय रहा है । सच पूछिए तो नारी गृहस्थ जीवन का प्रतीक है । इसलिए जब-जब प्रवृत्ति के मार्ग का उत्थान हुआ, नारी और गृहस्थ, दोनों की पद-मर्यादा में वृद्धि हुई । किन्तु अपने देश में तो वैदिक काल को छोड़कर, प्रायः सदैव निवृत्ति का ही बोल-बाला रहा । अतएव नारी की मर्यादा यहाँ सदैव दबी रही । समाज में प्रतिष्ठा उनकी थी जो वैयक्तिक मुक्ति के लिए वैराग्य ले लेते थे । नारी वैरागियों के किसी काम की चीज़ नहीं थी । अतएव, सभी संत उसे पाप की खान बताते गये । बुद्ध और महावीर ने भिक्षुणी होने का अधिकार देकर नारियों को नर के समक्ष अवश्य माना, किन्तु जिस कारण नारी पाप की खान मानी जाती थी, उसका विलाप भी दोनों धर्मों में मिलता है ।"[2]

विवेचनात्मक शैली

दिनकर जी की विवेचनात्मक शैली सामान्यतः उनकी आलोचनात्मक रचनाओं और काव्य कला संबंधी मान्यताओं में प्राप्त होती है ।

---

1. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृ. 35
2. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ. 642

उनकी चिन्तनप्रधान विवेचनात्मक शैली की विशेषता यह है कि लेखक उसे इतना सरल और आकर्षक रूप देता है कि पाठकों को कथा-कहानियों का सा आनंद प्राप्त होता है । कहीं भी दुराव या अस्पष्टता का आभास तक नहीं है । वे पाठकों को साथ लेकर आगे बढ़ते हैं - "सोद्देश्य कला के खिलाफ सारे तर्कों से अवगत रहते हुए भी मुझे ऐसा लगता है कि कवि भी सामाजिक जीव है और निरुद्देश्य उसकी जीभ नहीं खुलनी चाहिए । सौन्दर्य-सृजन की कला में असफल हो जाने पर कवि को पश्चात्ताप होना स्वाभाविक है, किन्तु चमत्कारपूर्ण सौन्दर्य के स्रष्टा को इस सूचना से सिर नीचा करने का कोई कारण नहीं दीखता कि अमुक समालोचक ने उसकी कृति में सोद्देश्यता का दोष निकाला है, विशेषतः उस समय, जब वह उद्देश्य सुन्दरता की झीनी चादर में आवृत हो । कला मौलिक वस्तु नहीं होती, वह तो कृत्रिम है, प्रकृति या जीवन का अनुकरण मात्र है । किन्तु प्रकृति की जो तस्वीर हम साहित्य में देखते हैं उसमें कवि के ही हृदय के रस का रंग होता है । फिर यह समझ में नहीं आता कि कवि प्रकृति के रूप को पाकर उसे उगलते समय तटस्थ क्यों कर रहेगा । काव्य की ज्योति सूर्य की सीधी किरण नहीं, बल्कि दर्पण या ताल में पड़ा हुआ उसका प्रतिफलित प्रकाश है । इसलिए जब हम साहित्य में किसी वर्ण्य वस्तु का चित्र देखते हैं तब उसके चारों ओर हमें एक प्रकार का आलोक मिलता है जो कवि की निजी भावनाओं तथा उस वस्तु-विषयक उसकी निजी धारणाओं से निस्सृत होता है । वर्ण्य वस्तु के साथ कवि की निजी भावनाओं के सम्मिश्रण में ही सत्य और कल्पना का परस्पर आलिंगन होता है । चूँकि चित्र रचने के समय रचयिता के वर्ण्य वस्तु-विषयक निजी भावों की अभिव्यक्ति आवश्यक हो जाती है, इसलिए उसकी क्रिया तटस्थ नहीं रह सकती । लाख कोशिश करने पर भी कलाकार के जीवन संबंधी दृष्टिकोण से आप कला को भिन्न नहीं कर सकते ; क्योंकि जीवन ही उसका जन्मस्थान है, जीवन ही उसका पोषक है और जीवन पर ही इसकी

प्रतिक्रिया भी होती है । किसी की यह उक्ति बड़ी मौजूँ मालूम होती है कि "काव्यगत कल्पना सत्य होती है, क्योंकि वह कभी भी आदर्श नहीं होती तथा वह आदर्श भी होती है, क्योंकि वह कभी भी सत्य नहीं होती ।"जीवन से अन्योन्य संबंध होने के कारण साहित्य को जाने या अनजाने अपने सौन्दर्य के कोष में जीवन के उद्देश्य को छिपाकर चलना पड़ता है । मिट्टी से कल्पना का संबंध टूट नहीं सकता । काव्य की सबसे बड़ी मर्यादा इसमें है कि वह राष्ट्र की आधिभौतिक उन्नति और विकास तथा उसके स्थूल इतिहास के ऊपर कोमल और पवित्र आकाश बनकर फैलता रहे - किसी दूरस्थ शंख की भांति ध्वनित होकर हमारी वृत्तियों को गगनोन्मुख किये रहे, हमारी बौद्धिक आनन्ददायिनी शक्ति को सोने न दे तथा उन भावों को जागरूक तथा चैतन्य रखे जो समकालीन सामाजिक आदर्श के अंग है ।"[1] संपूर्ण साहित्य संबंधी समस्त प्रश्नों का इतना पूर्ण विवेचन उपस्थित करना केवल दिनकर जी जैसे आलोचकों का काम है । उपर्युक्त उद्धरण में विचारों की जो कसी हुई परंपरा देखने को मिलती है, वह दिनकर जी की अपनी विशेषता है । वे अपने समय के मौलिक चिंतक हैं । उनकी शैली अत्यन्त संयत और सुसज्जित है । व्यर्थ का आडंबर उसमें नहीं है ।

दिनकर जी की विवेचनात्मक शैली अपने नैसर्गिक सौन्दर्य से पाठक को बरबस अपनी ओर आकृष्ट करती है । दिनकर जी में अपने पाठकों को साथ ले चलने की अद्भुत क्षमता है । यह देखकर हम इसे प्रभावाभिव्यंजक शैली भी कह सकते हैं । अपने पाठकों को प्रभावित करने की कला का एक उदाहरण देखिए । "किन्तु इस सुयश को क्या हम दूषित कहेंगे ? यदि हाँ तो इसका दूषण कहाँ पर है और वह कैसे दूर हो सकता है ? जिस वस्तु की रचना

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 47-48

ही दूसरों को जाग्रत, उत्तेजित अथवा प्रसन्न करने को की गयी हो उसकी सफलता तो तभी समझी जायेगी जब उसके संपर्क में आनेवाले लोग जाग्रत, उत्तेजित अथवा प्रसन्न हो जायँ और यही जागृति, उत्तेजना और प्रसन्नता की कीर्ति बन कर कवि को घेर लेती है । रचना की इस प्रक्रिया को न तो कवि रोक सकता है, न पाठक समुदाय । कविता की प्रक्रिया उसकी रचना के साथ पूरी नहीं होती । पूरी वह तब होती है जब पाठक उससे आन्दोलित होने लगते हैं ।"[1] यहाँ लेखक स्वयं प्रश्न उठाता है, उसका विवेचन भी देता हैं और इस सारे क्रिया कलाप में पाठकों को भी वे अपने साथ लिये चलता है । दूसरों को प्रभावित करना और अपने पक्ष में मिला लेना, यही शैली की विजय की परम सीमा है । दिनकर में इसकी क्षमता बहुत अधिक थी ।

कुशल चित्रकार में दो एक रेखाओं के द्वारा एक संपूर्ण चित्र उपस्थित करने की क्षमता होती है । दिनकर जी ने अपने विवेचन में थोड़े में बहुत कहने की कला का प्रयोग किया है । "चरित्र कर्म है, व्यक्तित्व चिंतन है । चरित्र की कठोरता साहित्य में क्लासिक शैली को जन्म देती है । व्यक्तित्व की उद्दामता से रोमांटिक शैली का आविर्भाव होता है । साहित्य की आधुनिक समस्या यह है कि लेखक शैली तो चरित्र की अपनाना चाहते हैं । किन्तु उद्दामता उन्हें व्यक्तित्व की चाहिए ।"[2]

भाषा का अबाध प्रवाह, स्निग्ध लय और मधुर तान उनकी शैली में सर्वत्र व्याप्त है । अपने अभिमतों पर अटल विश्वास के कारण भाषा ओज और स्फूर्ति से अभिमंडित हो जाती है । जैसे "लेकिन फक्कडपन में जो

---

1. वेणुवन - दिनकर - पृ. 23
2. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृ. 199

एक झाँस होती है, वह आप में नहीं थी । त्याग उस त्यागी का भार बन जाता है, जो बराबर यह कहता चलता है कि मैं ने त्याग किया है । आप कितने महान थे कि आपने कभी भी किसी को अपने त्याग, औदार्य एवं दान की कहानी विदित नहीं होने दी । और इस विनम्रता में किसी सौदागिरी अथवा बनियापन का भाव नहीं था । आप इस बात से अवगत ही नहीं थे कि आपकी ज़िन्दगी त्याग और परोपकार की ज़िन्दगी रही है । सूर्य क्या यह जानता है कि वह संसार का अंधेरा दूर करता है ? और वायु क्या यह जानती है कि वह शीतलता वितरण करती है ? आप गीता के कर्मयोगी थे और त्याग आपका स्वभाव था ।"[1]

किसी कवि या उसके काव्य के अंतरंग में प्रवेश कर उसकी विशेषताओं का उद्घाटन करने की अद्भुत क्षमता दिनकर जी में हैं । किसी कवि के काव्य को पढते हुए सहज भाव से उसके प्रभावों को ग्रहण करने और उतने ही सहज भाव से उसे शब्दों के साँचे में ढाल देने की विशेष प्रतिभा उनमें हैं । इसी तरह वे प्रत्येक कवि की खासियत को पहचानने में भी समर्थ थे । हम एक उदाहरण देना चाहते हैं - "छायावाद की दुर्दशा अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गयी होती, यदि उसमें पन्त जी, निरालाजी, प्रसाद जी, माखनलाल जी, भगवतीचरण वर्मा और पं. बालकृष्ण शर्मा नवीन नहीं हुए होते । इस कुहासे में निराला जी सदैव वृद्ध और पंतजी हमेशा प्रसन्न रहे । जैसे छायावाद के विद्रोही स्वभाव का प्रतिनिधित्व निराला जी कर रहे थे, उसी प्रकार नव जागरण के आनंद और उल्लास का प्रतिभान पंत जी थे । प्रसाद जी अपनी समस्त दार्शनिकता, ज्ञान गरिमा और विद्या-वैभव को लेकर इस कुहासे में समृद्ध साधक के समान बैठे हुए थे

---

1. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 38

तथा उन्हें वे लोग भी सिर नवाते थे जो इस नई दुनिया के खिलाफ थे । भगवती बाबु विशिष्टता के अधिकारी इसलिए है कि आरंभ से ही छायावाद की कमज़ोरियों का ज्ञान उन्हें हो गया था तथा उस युग में वे ही एक ऐसे कवि थे जो छायावाद के तत्कालीन रूप को असमर्थ जानकर कुछ अधिक शक्तिशाली स्वर फूँकने के लिए जब-तब नये-नये प्रयोगों की ओर उन्मुख हो रहे थे ।"[1]

विवरणात्मक शैली

विवरणात्मक शैली का नितान्त भव्य स्वरूप दिनकर के यात्रा विवरणों में प्राप्त होता है । उनकी विवरणात्मक दृश्यांकन की प्रतिभा का यहाँ पता चलता है । जैसे -"लंदन, पेरिस, ब्रसलस और जिनेवा को देखकर यूरोप के विषय में जो अनुमान हुआ, उससे तो यही कहा जा सकता है कि पोलैंड का अनादर नहीं होता । उदाहरणार्थ, पोलैंड में जो ग्रामीण हार्दिकता है, प्रेम परिचय में वहाँ जो घनत्व है, वह लन्दन और पेरिस में नहीं दिखाई पड़ा । मशीनों का उपयोग पोलैंड में भी हो रहा है, किन्तु आदमी वहाँ मशीन से अभी बहुत कुछ ऊपर है । कदाचित यही कारण हैं कि लोह-प्राचीरों का देश होते हुए भी पोलैंड उन प्राचीरों से बहुत कुछ स्वतंत्र है, प्रत्युत जो कुछ मैं ने वहाँ देखा उससे मुझे तो यह कहने का कोई आधार नहीं मिलता कि पोलैंड के चारों ओर कोई लक्ष्मण-रेखा भी विद्यमान है । लोग कला का आनन्द लेने में पटु हैं । कलाकारों का सम्मान वे उसी प्रकार करते है, जैसे भारतवासी देवताओं और ऋषियों का ।"[2]

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 24
2. देश-विदेश - दिनकर - पृ. 89

भावात्मक शैली

चिन्तन और तर्क से आपूरित अपनी विवेचनात्मक शैली के साथ ही साथ कभी कभी दिनकरजी में भावप्रवणता भी प्रस्फुटित हो उठती है । प्रभावोत्पादन के प्रयत्न में ओज और आवेग प्रधान भावात्मक शैली विचारों के बीच बीच में आ जाती है जो सर्वथा प्रशंसनीय लगती है । "गाँव की मिट्टी तुम्हें बुलाती है कवि । टाई और कालर खोलकर फेंक दो । धुले कपडों और रंगीनियों का मोह तुम्हारे बंधन और व्यवधान हैं । तुम जैसा जन्मे थे वैसा ही बनकर अपने घर जाओ । माँ ने जो बोली तुम्हें सिखलाई थी उसी में बोलते हुए तुम घर लौटो । उस बोली को केवल मनुष्य ही नहीं, गाँव के पशु-पक्षी और फूल-पत्ते भी समझेंगे । पहले अपना पात्र भरो । उफनाया हुआ रस बाहर आ जायेगा और संसार तुम्हें खोजता हुआ तुम्हारे घर तक आकर रहेगा ।"[1]

काव्यात्मक शैली

दिनकर जी के कुछ निबन्धों में अनुभूति और कल्पनाप्रधान काव्यात्मक शैली का सहज रूप लक्षित होता है । जैसे "वीणा मूक है और मन-ही-मन वह सोचती जाती है । वह कविता, जिसे वह आज निशीथ में गायेगी । कविता उन फूलों की, जो शहीदों की समाधि पर दिखते जाते हैं, कविता उन चाँदनियों की जो समर भूमि की लाशों पर चादर बनकर फैलती है, मानों खड्ग की ग्लानि पर परदा डाल रही हो, कविता उन दुष्ट आवेगों की, जो मनुष्य को तलवार पकडने के लिए विवश करते हैं । और कविता उन आदर्शों की, जो खड्ग के अस्तित्व को भंग करनेवाले हैं ।"[2]

---

1. मिट्टी की ओर - दिनकर - पृ. 160
2. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 44

दिनकर जी के आत्मव्यंजक निबंधों को इस शैली ने अधिक प्रभावोत्पादक बना दिया है । एक और उदाहरण देखिए - "प्रेम की सहज भूमि उस हृदय को मानना चाहिए, जिसमें अतृप्त प्रवृत्तियों की भरमार है और जो यह अनुभव करता है कि वह उपेक्षित, रीता और असन्तुष्ट है । कलाकारों में इच्छाएँ और प्रवृत्तियाँ असंख्य होती हैं और वे सदैव एक प्रकार की तृषा से चंचल एक प्रकार की रिक्तता से आक्रांत रहते हैं । इसीलिए सौन्दर्य को देखते ही कलाकार के हृदय में हलचल मचने लगती है, जो प्रेम और कला दोनों की पहली पहचान है ।"[1] दिनकर के गद्य में कवि सुलभ चित्रमयता के दर्शन होते हैं, लेकिन उसकी योजना सायास नहीं है, वे नैसर्गिक रूप से विद्यमान है । जैसे "बरसों से देश के शेर सीखचों में बन्द हैं और बाहर शृगाल और भेड़िये अपनी तुरही बजा रहे हैं । देश ने गर्जन किया, लेकिन बन्दीगृह के प्राचीर नहीं गिरे । देश ने तप्त आहें भेजीं, लेकिन सीखचे गले नहीं, कड़ियाँ पिघलीं नहीं । देश ने आक्रोश भेजा, लेकिन प्रलय के बादल घुमड़कर रह गये - शाप का एक वज्र भी आततायियों पर नहीं गिर सकें, क्रोध, आक्रोश, गर्जन, आँसू और आह- सब के सब बेकार हुए । अस्सी वर्षों की कठिन तपस्या जब सफल होने जा रही थी, ठीक तभी इन्द्र का आसन डोल गया । मार ने आकर अभियानियों का मार्ग घेर लिया । निर्भीक प्रवाहित होनेवाला निर्झर सहसा ठिठककर रुक गया । वर्षों से उद्दीप्त होकर जलनेवाली आग ने अपनी लपटें समेट लीं, मानों किसी दुष्ट देवता ने उसकी गति बाँध दी हो ।"[2]

व्यंजनात्मक शैली

दिनकर जी हमेशा इस बात पर ध्यान देते हैं कि निबंधों में व्यंजना को कभी आघात न लगे । उनकी भाषा वक्रता भी सिर्फ वहीं तक है,

---

1. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 14
2. अर्ध नारीश्वर - दिनकर - पृ. 10-11

जहाँ तक व्यंजना को आघात न लगे । "जनता का हृदय सहज ही स्वच्छ और द्रवशील होता है । उसके साथ हस्तक्षेप न करना ही योग्य है । हस्तक्षेप करेंगे तो हृदय या तो डूबकर नीचे चला जाएगा या खलबलाकर बाहर आना चाहेगा । और इन दोनों में से कोई भी अवस्था ठीक नहीं है ।"[1] दिनकर जी की संकेत निष्ठ व्यंजनात्मक शैली का और एक उदाहरण देखिए - "राजभवन कहता है, लोग संसार में लिप्त है ; वासना के रोगों से पीडित है ; हम उन्हें संसार से विरक्त करेंगे जिससे दण्ड-विधान की ज़रूरत ही नहीं रह जाय ।

राजभवन कहता है, लोग संसार में अनुरक्त हैं । और जब तक वे अनुरक्त है, तब तक उन पर पहरा देने के लिए एक सत्ता की ज़रूरत है । वह सत्ता हम हैं ।

मंदिर कहता है, हम मनुष्यों को सुधारेंगे ।
राजभवन कहता है, हम मनुष्यों पर शासन करेंगे ।"[2]

सूक्ति शैली

संदेश प्रधान सूक्तिशैली के अनेक उदाहरण दिनकर जी के उजली आग में मिलते हैं । जैसे - "और अगर आग में जलकर खाक हो जाता तो ?
तब तो मैं स्वयं बीज बन जाता ।"[3]

"दूध से अधिक बलवर्धक तो वह अमृत है, जो बच्चे को देखनेवाले लोचनों में होता है ।"[4]

---

1. उजली आग - दिनकर - पृ. 103
2. अर्ध नारीश्वर - दिनकर - पृ. 1
3. उजली आग - दिनकर - पृ. 4
4. उजली आग - दिनकर - पृ. 23

"स्वप्न कितना लम्बा होता है और सत्य से वह कैसा अभिन्न है ।"[1]

"सरकार कितनी ही तेज़ तर्रार होती है, जनता में असन्तोष भी उतना ही अधिक हो जाता है ।"[2]

"प्रेम में पागल हो जाना किसी हद तक ठीक है, बेवकूफ बनना बिलकुल ठीक नहीं ।"[3]

व्यंग्यात्मक शैली

दिनकर जी के गद्य में हास्य और व्यंग्य का प्रमुख स्थान नहीं है ; फिर भी रह-रहकर उसका संयत रूप अवश्य दृष्टिगोचर होता है । दो एक उदाहरण देखिए - "लवा ने कहा, हाँ बहन यह बात मैं ने उन कवियों से सीखी है, जो मनुष्य की पहुँच से परे होते हैं और जिनकी प्रशंसा का कारण ही यह होता है कि लोग उन्हें समझ नहीं पाते ।"[4] या "शिक्षा का स्तर अभी ही बहुत नीचा है । अगर वह और नीचे लाया गया, तो बेकारों की फौज बढ़ेगी और उनकी फौज भी, जिन्हें कोई भी काम सौंपा नहीं जा सकेगा ।"[5] व्यंग्य करते समय दिनकर जी कभी कभी भाषा वक्रता भी ग्रहण करते हैं जैसे - "अगर औद्योगिक सभ्यता नहीं आयी होती, तो औरतों को घर के कामों से छुटकारा नहीं मिलता, न वे नारी-स्वाधीनता आन्दोलन के

---

1. उजली आग - दिनकर - पृ. 87
2. उजली आग - दिनकर - पृ. 103
3. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 30
4. उजली आग - दिनकर - पृ. 99
5. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 45

लिए समय निकाल पाती । छाती से दूध पिलाने की प्रथा इसलिए खत्म हो रही है कि औद्योगिक सभ्यता ने शिशुओं के लिए अलग से दूध तैयार कर दिया है ।"[1]

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि दिनकर जी ने अपनी गद्य रचनाओं में अनेक शैलियों का प्रयोग कुशलतापूर्वक किया है । उनकी शैली में ओज तथा प्रसाद गुण वर्तमान है । उनकी शैली विस्तारमयी है, अतः उसको व्यास शैली कहना अनुचित न होगा । एक उदाहरण से हम इस बात को अधिक स्पष्ट करना चाहते हैं । - "हम जो बातें बोलना चाहते हैं, उन्हें हम लज्जा के कारण नहीं बोलते हैं, भय के कारण नहीं बोलते हैं । वास्तविकता जिस रूप में प्रकट होना चाहती है, निषेधात्मक प्रवृत्तियाँ उस रूप में प्रकट होने नहीं देतीं ; जब हम जाग्रत होते हैं, हम सुयश के लोभ से चालित होते हैं, निन्दा के भय से चालित होते हैं, संस्कृति और सौजन्य की भावनाओं के अधीन रहते हैं । हम अपने ऊपर रोक लगाते हैं, नियंत्रण लगाते हैं, अवरोध की पोशाक पहनकर सुसंस्कृत और सभ्य दिखाई देना चाहते हैं ।"[2] दिनकर जी की गद्य शैली में भाषण-कला का रूप भी देखा जा सकता है । दिनकर जी एक कुशल अध्यापक थे । शायद इसलिए उनके निबंधों की शैली विस्तारमयी है । विवरणात्मक, विवेचनात्म भावात्मक आदि सभी शैलियों के बीच में व्यास शैली के अनेक उदाहरण मिलेंगे । अतः दिनकर जी की गद्य शैली को व्यास शैली कहना उचित होगा । आगे हम दिनकर जी के गद्य की भाषा की विशेषताओं पर विचार करेंगे ।

---

1. विवाह की मुसीबतें - दिनकर - पृ. 20
2. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृ. 91

भाषा

दिनकर जी की गद्य रचनाओं की भाषा संयत, स्पष्ट तथा सरल है । वह आलंकारिक न होते हुए भी प्रवाहमयी, समर्थ तथा प्रांजल है । वस्तु और परिस्थिति के अनुसार भाषा को मोड लेना दिनकर जी की निबंध कला का विशिष्ट गुण है । भावानुरूपता, जो भाषा की प्रथम अनिवार्यता है, दिनकर की गद्य रचनाओं में बखूबी मिलती है । उदारता, दृढ़ता तथा स्पष्टता - दिनकर जी के व्यक्तित्व की ये विशिष्टताएँ उनकी भाषा में भी हैं । अपनी भाषिक क्षमता के ही कारण दिनकर जी काव्य शास्त्र, साहित्य, धर्म, समाज, विज्ञान, राजनीति, कला, दर्शन, इतिहास, आदि समस्त विषय आकर्षक ढंग से प्रस्तुत कर सके हैं ।

दिनकर जी की गद्य भाषा के संबंध में डा. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है - "सब मिलाकर दिनकर की भाषा समृद्ध, व्यावहारिक, सक्षम, परिमार्जित और प्राणवान है तथा उनके व्यक्तित्व के अनुकूल उनकी शैली में वैविध्य और ऊर्जा है । उनकी गद्य शैली का अपना आकर्षण है । उसमें किसी प्रकार का उलझाव नहीं है । उसमें धरती की गन्ध और आकाश की रंगीन छटा, अतीत का राग-रंग और भविष्य की दिशाहीन अनजानी संभाव्यता एक साथ व्यक्त हुई हैं ।"[1] भाषा के संबंध में दिनकर जी का अपना मत भी देखने लायक है । उनके शब्दों में "काव्यों में अस्पष्टता बडाई नहीं, निंदा की चीज़ है । कला की विजय भावों को अस्पष्टता से लिखने में नहीं, उसे सुस्पष्टता प्रदान करने में है ।"[2]

---

1. हिन्दी गद्य साहित्य - डा. रामचन्द्र तिवारी - पृ. 431
2. वट-पीपल - दिनकर - पृ. 122

दिनकर जी अपनी बात सहज रूप में कहने के पक्षपाती है । इसलिए उनकी गद्य रचनाओं में आयास साध्य पदावली दृष्टिगोचर नहीं होती । उनकी शब्दावली परिनिष्ठित हिन्दी के अन्तःस्वरूप के बिलकुल अनुरूप है, क्योंकि दिनकर ने भाषा के ऊपर आये संकट को अपने प्रारंभिक काल में ही देख लिया था । उन्होंने शुद्ध कविता की खोज नामक अपने ग्रंथ में साफ बताया है कि भाषा के अवमूल्यन का सोपान महानगर और नगर है । भाषा के अवमूल्यन से अवगत होने के कारण दिनकर जी ने भाषा का सम्मान किया और परिनिष्ठित और सरल भाषा का प्रयोग सर्वत्र किया । उन्होंने गंभीर तत्व भी काफी सीधे-सादे ढंग से प्रस्तुत किया है ।

दिनकर जी के व्यक्तित्व में भारतीय संस्कृति की प्रधानता है । शायद इसलिए उनकी भाषा में तत्सम शब्दों की प्रधानता है । उन्होंने अपने व्यक्तित्व के उदार गुण के कारण यथाप्रसंग अंग्रेज़ी, उर्दू, फारसी, अरबी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी ग्रहण किया है । दिनकर जी हिन्दी भाषा के प्रेमी है, इसलिए अंग्रेज़ी का विरोध करते हैं । फिर भी भाषा के सामंजस्यपूर्ण रूप को दिखाने और भाषा में बल देने के लिए अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया । जैसे "क्रान्ति की कविताओं को रसल **Rhetoric** या रीति कहते हैं ।"[1] या रवीन्द्रनाथ कलम से रोमांटिक और कुंवी के सुररियलिस्ट थे ।"[2] या "उनकी वेदना समय के गियर {गियर} से छूट जाने की वेदना है और उसका एकमात्र इलाज भी यही है कि वे किसी न किसी प्रकार ज़िन्दगी के गियर से मेल बिठा लें ।"[3] उसके अलावा दिनकर जी ने अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग विभिन्न

---

1. अर्ध नारीश्वर - दिनकर - पृ. 137
2. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृ. 93
3. रेती के फूल - दिनकर - पृ. 11

रूपों में किया है -

1. शब्दों का हिन्दी अनुवाद और कोष्ठक में अंग्रेज़ी शब्द - हिन्दी वर्णमाला में - जैसे प्रगति (लिरिक)[1]

2. शब्दों का हिन्दी अनुवाद और कोष्ठक में अंग्रेज़ी शब्द अंग्रेज़ी वर्णमाला में - जैसे - चौकोर (**Rounded**)[2]

3. पहले अंग्रेज़ी शब्द हिन्दी वर्णमाला में और कोष्ठक में हिन्दी शब्द - जैसे रिफार्मेशन (धार्मिक क्रान्ति)[3]

इस तरह दिनकर के निबंधों में एवोल्यूशन, आईवरी टावर, मेनिफेस्टो, सुपरमैन, ईगो, विज़न, एबर्सिसिटी, यूनिक, डेस्टिनी, फ्री एसोसियेशन, मिनियेचर, माइनेटिक्स, अस्सिमिलेशन, मिडवाईफ, ट्रान्स्पेरेन्ट, जैसे अनेक अंग्रेज़ी शब्द देखने को मिलेंगे। अंग्रेज़ी और संस्कृत के अलावा दिनकर ने मरकज, मशाल, मशगूल, मशहूर, इलम, इंतिहा कबूल, गदर, किताब, कायल, सींखचा, कारोबार, खुशामद, खैरियत, मस्जिद, बुनियादी, बेताबी, शिकायत, पहलू, हवाला, जादूगरी, गुंजाइश, सवाल, दलील, आसान, शिकंजा, निगाह, जिक्र, हैसियत, हलचल, छिछला, ढूँढना, ऊबड-खाबड, छानबीन, धुन, नाज, सिलसिला, जाहिर, पौहद्दी, बेतहाशा जैसे उर्दू, अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है। सुगबुगाना, बुदबुदाना, टुकुर-टुकुर, सनसनाहट आदि ठेठ बोली के शब्द भी उनकी रचनाओं में विद्यमान हैं।

---

1. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर - पृ. 139
2. अर्धनारीश्वर - दिनकर - पृ. 130
3. शुद्ध कविता की खोज - पृ. 28

दिनकर जी का वाक्य-विन्यास भी अपनी विशेषता रखता है । उनकी वाक्य रचना प्रसंगानुकूल होती है । उनकी भाषा भावानुगामिनी है । विषय के अनुसार उनकी भाषा में गंभीरता, रुचिरता और उदात्तता वर्तमान है । उनके विवेचनात्मक निबंधों की भाषा गंभीर है तो संस्मरणों की भाषा भावात्मक है । यात्रा संबंधी लेखों में विवरणात्मक शब्दों का प्रयोग अधिक दिखाई पडता है । हम दो एक उद्धरणों के माध्यम से इस बात को अधिक स्पष्ट करेंगे । "जार्ज रसल टालस्टाय की हठयोग- जैसी वृत्ति के भी विरोधी थे, क्योंकि उन्होंने लिखा है कि "टालस्टाय की नैतिकता सभी प्रिय लगनेवाली बातों का वध करनेवाली है । शायद, टालस्टाय इस भाव से पीडित है कि जो भी इच्छाएँ हमें प्रिय दीखती हैं वे अवश्य ही पापमयी होंगी, अतएव चुन-चुन करके हमें भी सुहावनी इच्छाओं का वध कर डालना चाहिए ।" यहाँ दिनकर जी ने गंभीर भाषा का प्रयोग किया है । अब देखिए दिनकर जी के भावविभोर होने पर उनकी भाषा में कौन सा परिवर्तन आता है । "ज्योतिर्मय मनुष्य ! तू अपने आपको भूल रहा है । तुम में बुद्ध का तेज़ हैं, जिसने स्वर्ग और पृथ्वी दोनों के लिए प्रकाश का निर्माण किया था । तुझ में राणा प्रताप का प्रताप है, जिसने बन-वन मारे मारे फिरकर भी अपने आदर्श के प्रदीप को बुझने नहीं दिया । तुझमें मन्सूर की ज़िद है, जिसने मर जाने पर भी उसके माँस की बोटी-बोटी "अनलहक" पुकारती थी । आज का घनान्धकार तेरे पौरुष को चुनौती दे रहा है । नींद से जाग ! आलस्य को झाडकर उठ खडा हो । सूरज और चाँद के प्रकाश में चलनेवाले बहुत हो चुके हैं । इतिहास उनकी गिनती नहीं करता । आज तुझे अपने भीतर के तेज़ को प्रत्यक्ष करना है । तेरे लहू में तेल, शिरा में वार्त्तिका और हड्डी में चिराग है । मिट्टी के दिये शाम को जलते और सुबह से पहले ही बुझ जाते हैं । आज दीवाली की रात अपनी

---

1. अर्धनारीश्वर - दिनकर - पृ. 135

हड्डी के उस चिराग को जला, जिसकी लौ सदियों तक जलती रहती है ।"[1]

दिनकर जी की भाषा में मौलिकता का पुट दिखाई पडता है, जो उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व का सूचक है । उनकी भाषा में कसावट, अर्थगौरव, तथा प्रौढ़ता विद्यमान है । शब्दों और वाक्यों का गठन अत्यंत व्यवस्थित तथा व्याकरणानुकूल है ।

निष्कर्ष

दिनकर जी की भाषा एवं शैली के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उनकी शैली कथ्य के अत्यन्त अनुकूल है । वह बिलकुल सुग्राह्य और प्रभावोत्पादक है । यद्यपि दिनकर जी ने प्रचलित सभी शैलियों का प्रयोग किया है तो भी विचारात्मक एवं विवेचनात्मक शैली को अधिक प्रमुखता दी है । दिनकर जी की शैली में ओज तथा प्रसाद गुण वर्तमान है और वह विषय-स्थापन में पूर्णत: समर्थ है । जहाँ तक शैली के बहिरंग पक्ष का प्रश्न है, दिनकर जी का भाषा और शब्द-चयन पर बहुत अच्छा अधिकार है । उपयुक्त शब्द चयन, व्याकरण शुद्धता, संयत वाक्य-योजना और प्रसाद गुण के कारण दिनकर जी की भाषा में अभिप्रेत अर्थ व्यंजित करने की क्षमता है । उनकी भाषा प्रसंगानुकूल है और उसमें अस्पष्टता का आभास तक नहीं । दिनकर जी की शैली उनके गंभीर व्यक्तित्व से आलोकित रहती है और वह हमेशा उनके निर्मल मन और सुलझे हुए मस्तिष्क को अभिव्यक्ति देती है ।

---

1. अर्धनारीश्वर - दिनकर - पृ. 12

उपसंहार

हिन्दी के ओजस्वी साहित्यकार दिनकर जी के गद्य साहित्य के अध्ययन के अन्त में हम कुछ निष्कर्षों पर पहुँचते हैं । दिनकर जी गद्य और पद्य दोनों के सिद्धहस्त लेखक हैं । लेकिन कवि के रूप में वे इतने प्रख्यात हुए कि उनके गद्यकार का रूप आँखों से ओझल होता रहा । अधिकतर इतिहास लेखकों ने गद्यकार दिनकर का परिचय मात्र देकर मौन धारण कर लिया । दिनकर जैसे प्रतिष्ठित साहित्यकार के महत्वपूर्ण गद्य साहित्य की उपेक्षा मुझे बहुत बडी कमी प्रतीत हुई । इसीलिए मैं ने इस प्रबंध के माध्यम से दिनकर जी के गद्य साहित्य के अध्ययन से कुछ इस कमी को दूर करने का प्रयास किया है ।

व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रबंध के पहले अध्याय में हमने देखा कि दिनकर का जन्म एक सामान्य किसान परिवार में हुआ । उनका बचपन आर्थिक कठिनाईयों में बीता । उनका संपूर्ण जीवन संघर्षपूर्ण था । लेकिन उन्होंने साहित्य का अनुशीलन अपने जीवन का प्रमुख उद्देश्य बनाया । वे अपने संकल्पशील व्यक्तित्व के बल पर लोकप्रि कवि बन गये । उनका गद्य साहित्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । दिनकर जी के गत्यात्मक व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी रचनाओं पर पडा है । उदारता, विनम्रता, स्पष्टवादिता, निर्भीकता, ईमानदारी, संवेदनशीलता, भावुकता - उनके व्यक्तित्व की ये सभी विशेषताएँ उनकी रचनाओं में भी दिखाई पडती हैं । दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व के अनुरूप ही दिनकर जी की संपूर्ण रचना-यात्रा संपन्न हुई है ।

आलोचक दिनकर

दिनकर का साहित्य चिंतन अत्यन्त प्रखर और तेजस्वी है । वास्तव में अपने काव्य-जीवन की यात्रा में उन्होंने जो चिंतन-मनन किया, उनकी आलोचना उसी की ही उपज है । सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही दृष्टियों वे एक सफल आलोचक के रूप में हमारे सामने आते हैं ।

काव्य की रचना-प्रक्रिया वर्षों से साहित्य-चिंतकों के समक्ष प्रश्न-चिह्न एवं चुनौती बनकर सामने आती रही है । दिनकर ने एक तत्त्व चिंतक के रूप में इस विषय को अत्यंत गंभीरता से लिया, अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि के साथ रचना-प्रक्रिया की बारीकियों में पैठकर उसके रहस्य का उद्घाटन किया । उन्होंने सृजन प्रक्रिया को एक स्वायत्तता प्रक्रिया बतलाया है । उनके अनुसार सृजन प्रक्रिया साहित्यकार के मन में उठते भावों की सही भाषा में सही अभिव्यक्ति है । इस प्रकार रचना-प्राक्रिया को उन्होंने एक वस्तुगत एवं मनोवैज्ञानिक धरातल प्रदान किया है । काव्य की रचना-प्रक्रिया के विवेचन में दिनकर का आलोचक व्यक्तित्व अधिक मौलिक और दार्शनिक प्रतीत होता है । कहना न होगा कि काव्य की रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण हिन्दी आलोचना को दिनकर का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण प्रदेय है ।

अपने चिंतन के अगले स्तर पर दिनकर ने दो नये काव्य रूपों रूपकाव्य एवं विचार काव्य की चर्चा की है । काव्य के भेद का यह विश्लेषण अत्यन्त मौलिक है । दिनकर ने इन दोनों काव्य रूपों की परिभाषा देते हुए रूपकाव्य को अधिक श्रेष्ठ माना है । रूप काव्य और विचार काव्य के इस विभाज की मौलिकता इसमें है कि सभी काव्य रचनाओं की चर्चा इन दो काव्य रूपों के अन्तर्गत आ जाती है ।

दिनकर ने पुराने काव्य-सिद्धांतों को नये युग की बदली काव्य-चेतना के अनुरूप बनाने का प्रयत्न अवश्य किया है । ध्वनि को काव्य की आत्मा मानते हुए दिनकर ने ध्वनि सिद्धान्त को एक नया रूप प्रदान किया और इसके आधा पर रीतिकाल का पुर्नमूल्यांकन किया । दरअसल उन्होंने यह सिद्ध किया कि साहित की अभिवृद्धि में रीतिकाल का विशेष महत्व है । रीतिकाल के पुनर्मूल्यांकन का यह प्रयास संपूर्ण हिन्दी-साहित्य के पुनर्मूल्यांकन की दृष्टि देता है ।

दिनकर ने अपने मौलिक चिंतन के माध्यम से हिन्दी आलोचना को एक नयी दिशा प्रदान करने की कोशिश की । उन्होंने काव्यालोचना का एक स्वतंत्र एवं विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया । काव्य-समीक्षा को उन्होंने प्रतिभा विशेष का साधन माना है । उनके अनुसार समालोचक में भावुकता, चिंतन की कोमलता, भावों की प्रवीणता और सारग्राहिता होनी चाहिए । प्रचलित समीक्षा पद्धतियों की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए दिनकर ने इसमें कुछ ऐसे तत्त्वों का समावेश किया है जो उसे नयी दिशा दे सकने में समर्थ हैं । उन्होंने जीवन की समग्र अवधारणा को ग्रहण किया और उसे साहित्य चिंतन के केन्द्र में प्रतिष्ठित किया । यथार्थ को उन्होंने उसकी समग्रता, संश्लिष्टता एवं गतिशीलता में ग्रहण किया है । दिनकर ने साहित्य के सैद्धान्तिक प्रश्नों पर सर्वत्र दृढ़ता एवं गंभीरता से विचार किया है । उनके विचारों में कहीं कहीं अन्तर्विरोध के दर्शन भी होते हैं किन्तु वे जिस आत्मविश्वास एवं निष्ठा के साथ साहित्य-चिंतन में प्रवृत्त होते हैं वह कई मूर्धन्य आलोचकों में भी दुर्लभ हैं ।

दिनकर की समीक्षा दृष्टि व समीक्षा पद्धति को समझने के लिए दो तीन बातों की चर्चा अपेक्षित है । दिनकर कलाकृति को स्वानुभूत जीवन की पुनर्रचना मानते हैं । इसलिए वे समीक्षक के लिए जीवन ज्ञान को ठोस आधार

भूमि के रूप में स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार साहित्य में प्रकट वस्तुतत्त्व की सत्यता की कसौटी सिद्धान्त या कल्पना नहीं वरन् वास्तविक जीवन में पाये जानेवाले तत्त्व है । फिर भी वे समीक्षा-सिद्धांत के महत्व से इनकार नहीं करते दिनकर समीक्षक के लिए एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को ज़रूरी मानते हैं । वे समीक्षा को रचना के गुण-दोष विवेचन तक सीमित न रखकर उसे मूल्यांकन शास्त्र के स्तर तक उठाते हैं । उन्होंने रचना की आंतरिकता में पैठने के लिए समाज-सापेक्ष मनोविज्ञान एवं सौन्दयशास्त्र के महत्व को स्वीकार किया है ।

समीक्षा के लिए किसी स्थूल प्रतिमान या सिद्धान्त की अपेक्षा एक निश्चित पद्धति पर दिनकर ने बल दिया है । दिनकर की इस समीक्षा पद्धति के अनुसार हमें साहित्य को तीन दृष्टिबिन्दुओं से देखना पडेगा । एक तो यह है कि वह किन किन स्रोतों से उद्गत हुआ है, दूसरे उसका कलात्मक प्रभाव क्या है और तीसरे, उसकी अन्त:प्रकृति या रचना कैसी है ? कहना न होगा कि दिन की यह समीक्षा-दृष्टि, छायावादी प्रभावाभिव्यंजक, मनोवैज्ञानिक, प्रगतिवादी और नयी आलोचना का एक समन्वित रूप है । दिनकर की आलोचना की एक बडी विशेषता यह है कि वे रूप तत्त्व की आलोचना को वस्तुतत्त्व की आलोचना के समान मूलभूत मानते हैं । दिनकर की समीक्षा-दृष्टि अत्यंत संतुलित और साहि के प्रतिमानों को स्थायित्व प्रदान करने में सक्षम होती है ।

दिनकर में व्यावहारिक आलोचना का वह रूप विद्यमान है जो अत्यंत तेजस्वी और प्रखर है । अपनी काव्यगत मान्यताओं के आधार पर उन्होंने कलाकार के बाह्य एवं आभ्यंतर जीवन की परीक्षा करते हुए कृति का मूल्यांकन किया है । उन्होंने "कामायनी" का मनोवैज्ञानिक सौन्दर्यशास्त्रीय विश्लेषण किया । उन्होंने कामायनी के रहस्यवादी जीवन-दर्शन की तीखी

आलोचना की है । कामायनी की भाषाई कमज़ोरी पर भी उनकी दृष्टि पड़ी है फिर भी दिनकर ने कामायनी को इसकी सारी सीमाओं के साथ एक महान कृति मान ली है । कामायनी का यह पुनर्मूल्यांकन दिनकर के मौलिक चिंतन का स्पष्ट नमूना है । इसके अलावा दिनकर ने "पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त" के माध्यम से मैथिलीशरण जी को हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में प्रस्तुत किया । इसके अतिरिक्त छायावाद, नई कविता, भविष्य की कविता, शुद्ध कविता विषयक दिनकर की व्यावहारिक समीक्षा भी अत्यंत गंभीर एवं मौलिक है ।

दिनकर ने समीक्षा के क्षेत्र में स्पष्ट, सरल भाषा का आदर्श पेश किया है । दिनकर की आलोचना की भाषा सूर्यालोक के समान स्वच्छ है । दिनकर के मत में काव्य में प्रयुक्त भाषा की सफाई ही उसके सौन्दर्य का कारण बन जाती है । शायद इसीलिए ही दिनकर ने काव्य में निहित उस सौन्दर्य की खोज के लिए साफ सुथरी भाषा को अपनी आलोचना का माध्यम बनाया ।

दिनकर के आलोचना सिद्धान्त वस्तुतः भारतीय तथा पाश्चात्य आलोचना के प्रतिमानों का एक समाहित रूप है । उनके सिद्धान्त काल सापेक्ष होते हुए भी कालातीत है क्यों कि उनकी मूल्यदृष्टि सक्रिय और संवेदनात्मक होने के कारण मानवीय अस्तित्व के साथ संपृक्त है । समीक्षा के किसी भी मानदण्ड पर परखने पर दिनकर के आलोचना-सिद्धान्तों की प्रासंगिकता कभी भी समाप्त नहीं हो सकती,। दिनकर की आलोचनाएँ हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में तथ्यपरक तथा निर्भीक अभिमत प्रकट करने में सर्वाधिक समर्थ सिद्ध हुई है । अतएव दिनकर को हिन्दी के मूर्धन्य आलोचकों की कोटि में स्थान देना उचित ही होगा ।

दिनकर की निबंध कला

दिनकर एक स्वच्छन्दयेता निबंधकार है । उनके निबंधों में स्वाधीन चिंतन-मनन तथा मौलिकता विधमान है । विचारों व भावों की कसावट की दृष्टि से भी उनके निबंध महत्वपूर्ण हैं । दिनकर के सभी निबंधों में उनके व्यक्तित्व की झलक मिल ही जाती है । उनके अधिकांश निबंध विषय-प्रधान है । उनके निबंधों में अद्भुत विषयगत विविधता दृष्टिगोचर होती है । दिनकर ने अपने निबंधों में प्राय: सभी शैलियों का प्रयोग किया है । उनके निबंधों की भाषा एवं शैली विषय, अवसर तथा वातावरण के अनुसार बदलती है ।

दिनकर मूलत: सृजनशील लेखक हैं । दिनकर की सृजनशीलता, स्वच्छन्दता और प्रगतिशीलता उनके निबंधों में भी अभिव्यक्त हुई है । दिनकर के निबंध उनके विचार, जीवन दर्शन और व्यक्तित्व के बोलते हुए चित्र मालूम होते हैं । दिनकर के कवि व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समझने में ये निबंध बहुत सहायक हैं । दिनकर के निबंध व्यक्तिनिष्ठ हैं और वस्तुनिष्ठ भी । इसलिए उन निबंधों को उभयनिष्ठ कहना अधिक, समीचीन लगता है ।

संक्षेप में दिनकर के निबंध विषय, भाषा एवं शैली की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । उनके निबंध बडे ही सुलझे हुए होते हैं । उनके निबंधों में जो आत्मीयता है, वह पाठकों को साथ ले चलती है और निबंध को सार्थक बना लेती है ।

यात्रा-विवरण

दिनकर ने अपनी देश-विदेश की यात्राओं के वर्णन में उन स्थानों, वस्तुओं और व्यक्तियों का उल्लेख किया है, जिनसे उनकी मानसिकता उद्वेलित

हुई है । अतः उनके यात्रा-विवरण में वैयक्तिकता, रोचकता, आत्मीयता और कल्पनाप्रवणता का सुन्दर समावेश हुआ है । उनके यात्रावृत्त से सामाजिक जीवन की देशगत विशेषताओं, उनके जीवन की परिपाटियों और उनकी संस्कृति एवं सभ्यता के चित्र प्राप्त होते हैं । दिनकर के यात्रा साहित्य का लक्ष्य प्रदेश विशेष का वर्णन करना मात्र नहीं है, बल्कि वहाँ की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराना भी है । देश विदेश की यात्रा के चित्रण में उन्होंने अपने अनुभवों, प्रतिक्रियाओं और विचारों का प्रतिपादन भी किया है । दिनकर की भावाभिव्यक्ति स्वच्छन्द एवं सौन्दर्यनिष्ठ है । वर्णनात्मक एवं विवेचनात्मक शैली में विरचित उन यात्राविवरणों में दिनकर की सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि सहज ही परिलक्षित होती है । उनके यात्राविवरणों की भाषा भी बहुत रोचक, स्पष्ट एवं सरल है । दिनकर के यात्राविवरण पाठकों में उत्सुकता जगाने और उनको लेखक के साथ सहगामी बनाकर ले चलने में अवश्य सफल हुए हैं ।

दिनकर की डायरी

दिनकर ने साहित्य, राजनीति, धर्म, विज्ञान, नैतिकता, प्रेम और काम, नर-नारी समस्या आदि अनेक बिन्दुओं का परामर्श अपनी डायरी में किया है । दिनकर के व्यक्तित्व की झलक यहाँ मिल जाती है । उनकी स्पष्टवादिता, धैर्य और साहस इसमें प्रकट होता है । दिनकर की शैली बौद्धिक प्रखरता, ओज तथा प्रसाद गुण से परिपूर्ण है । विषय वर्णन, स्वतंत्र प्रतिक्रियाओं और सुबोध भाषा शैली के कारण यह डायरी साहित्य में अपनी निजी सत्ता का प्रमाण देती है । अनेकायामी यह डायरी दिनकर और उनके विचारों को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

सांस्कृतिक रचनाएँ

दिनकर भारतीय संस्कृति के अमर गायक और प्रखर व्याख्याता हैं । वस्तु स्थिति का साक्षात्कार करने के उद्देश्य से उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्त्वों का विश्लेषण अत्यन्त उदारता के साथ किया है । वे न तो प्राचीन रूढियों, जडीभूत परंपराओं का समर्थन करते हैं औरअअचिंतित एवं भ्रमात्मक विचारों का । उनका विश्वास भारतीय संस्कृति की दार्शनिक मान्यताओं एवं काल क्रम से प्राप्त विभिन्न संस्कारों को आत्मसात् करने की समन्वयवादी दृष्टि पर आधारित है । दिनकर भारतीय संस्कृति को विश्व-संस्कृति का मार्गदर्शक मानते हैं । उनकी दृष्टि में भारतीय संस्कृति अमर, अजर, चिर नूतन और चिर पुराण है । दिनकर की संस्कृति संबंधी रचनाओं में उनके हृदय का आनंद और प्रेरणा, अपने देश से उनका लगाव, अपनी संस्कृति और सभ्यता पर गौरव, उनका पांडित्य एवं विशाल अध्ययन, परिश्रम, दक्षता, ये सब समान रूप से रूपायित हैं ।

संस्मरण लेखक

दिनकर ने संस्मरणों में ऐसे महान व्यक्तियों को चुना है, जो लेखनी, वाणी और चरित्र के योग से इतिहास पर अपना प्रभाव छोड गये हैं । दिनकर ने व्यक्ति और उसके जीवन के पहलुओं-संदर्भों का चित्रात्मक प्रकाशन किया है । इन संस्मरणों में व्यंग्य-विनोद का पुट भी काफी मात्रा में मिलता है । दिनकर ने कई जगहों पर उद्धरणों और कविताओं से विशेष आकर्षण पैदा कर दिया है । इन संस्मरणों में विवेचन, मूल्यांकन, अंतरंगता और आत्माभिव्यक्ति की पूरी गुंजाईश है । दिनकर की भाषा सरल एवं सुबोध है और संस्मरणों में कसाव और सघनता है । एक कवि की भावुकता, कोमलता और एक सफल गद्यकार की कुशलता का सफल सम्मिश्रण यहाँ हुआ है । इन संस्मरणों की और एक विशेषता

वे छोटी-छोटी बातें हैं जिनसे चरित नायकों की रूचि और स्वभाव का पता चलता है । ये संस्मरण और उनमें चित्रित महान व्यक्तियों के चरित्र मिलकर दिनकर के व्यक्तित्व का सही चित्र भी पेश करते हैं । दिनकर के संस्मरणों की सबसे बडी उपलब्धि यह है कि उनमें इतिहास की चमकती बिन्दुओं को आगामी पीढियों के समक्ष रख देने की योग्यता है और क्षमता भी ।

अन्य गद्य रचनाएँ

दिनकर के गद्य काव्य उजली आग में उनके काव्य के सभी गुण मौजूद हैं । यह रचना जीवन में क्रियाशील होने के लिए अवश्य प्रेरणा दे सकती है । इसके छोटे-छोटे विचार स्फुलिंग मन की समस्याओं के घटाटोप को दूर करने वाले हैं । सुगम गद्य में दिनकर ने ऐसी बातें की हैं कि यह रचना ब्रेजोड बन गयी है । कभी कभी सीधी सरल भाषा में ऐसी ऊँची-ऊँची बातों का बखान मिलता है, जो दर्शन का सूत्र बन सकती है । इस पुस्तक की अनेक रचनाएँ प्रतीकात्मक हैं । लेकिन उन्हें समझने में कोई कठिनाई महसूस नहीं होती । इसकी शैली आद्यंत कवित्वमयी एवं सुरूचिपूर्ण है । हिन्दी में गद्य काव्य की परंपरा काफी समृद्ध नहीं है । प्रसन्नता की बात है कि उजली आग में इस कलंक को मिटाने की क्षमता है ।

दिनकर ने अपने रेडियो रूपक "हे राम" में भारतीय सांस्कृति चेतना के तीन उन्नायकों के चिंतन और जीवन को लोकप्रिय शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । इसमें लेखक ने चरित नायकों की ही भाषा में उनका संदेश जनसाधारण तक पहुँचाने की कोशिश की है । इन महापुरुषों के विचारों को इस कुशलता से संजो दिया है कि उनकी मान्यताओं की महत्ता का संक्षेप में

ज्ञान हो जाता है । इन रूपकों की भाषा स्वाभाविक एवं पात्रों के अनुरूप है । दिनकर ने बच्चों के लिए जो कहानी संग्रह प्रकाशित किया है वह दिनकर साहित्य की एक विशेष दिशा उद्घाटित करता है ।

मूल्यांकन

दिनकर जी का गद्य साहित्य विविधतापूर्ण और अत्यधिक समृद्ध है । आलोचना से लेकर निबंध, यात्राविवरण, संस्मरण, सांस्कृतिक रचनाएँ, डायरी, गद्य काव्य, रेडियो रूपक जैसे इसके अनेक रूप हैं । दिनकर के विविध आयामी गद्य साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उनका गद्य साहित्य उनकी काव्य रचना के समान मूल्यवान, कमनीय और अनुरंजक है । उनके गद्य साहित्य में अध्ययन की व्यापकता, चिंतन की गहराई और विचारों की मौलिकता एवं परिपक्वता हैं । दिनकर का गद्य साहित्य उनके प्रबुद्ध विचारक, प्रखर समाज-चेता, संवेदनशील साहित्यकार, उनकी रचनात्मक प्रतिभा तथा मौलिक चिंतन का परिचायक है ।

दिनकर का गद्य साहित्य उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का प्रतिफलन है । दिनकर काव्य का उदात्त मानवतावादी स्वर उनके गद्य में भी व्यंजित हुआ है । दिनकर साहित्य अथवा कला को मानवीय दृष्टि से देखने के पक्षपाती हैं । उनकी दृष्टि में साहित्य की महत्तम उपादेयता मानवीय कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता है । दिनकर के गद्य साहित्य का आधार यही मानवतावादी दृष्टिकोण है । दिनकर अपूर्व दृष्टि संपन्न साहित्य स्रष्टा हैं । उन्होंने अपने गद्य साहित्य के माध्यम से समाज, साहित्य और संस्कृति को नयी दृष्टि दी है । उनका गद्य साहित्य नयी और पुरानी मान्यताओं के समन्वय का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करता है ।

दिनकर जी के गद्य साहित्य में एक प्रकार का खुलापन है । उनका गद्य आत्मोन्मुख नहीं है । दिनकर स्वयं से बातें करने की अपेक्षा दूसरों से बातें करने में अधिक आनन्द अनुभव करते हैं । इसलिए उनके गद्य में पाठक को साथ ले चलने की अद्भुत क्षमता है । जहाँ तक भाषा एवं शैली का प्रश्न है दिनकर ने अपनी गद्य रचनाओं में सब कहीं जीवन्त भाषा एवं सहज शैली का प्रयोग किया है ।

उपयोगिता और सौन्दर्यनिष्ठा दोनों का सामंजस्य दिनकर के गद्य साहित्य का सबसे बडा आकर्षण है । उनके गद्य साहित्य की सबसे बडी उपादेयता यह है कि वह न केवल उनकी काव्य कृतियों को समझने में सहायक है बल्कि संपूर्ण आधुनिक साहित्य में अन्तर्निहित चेतना की अखण्डता को लक्षित करने में भी सहायक है । उदार वैज्ञानिक दृष्टिकोण, बौद्धिकता और हार्दिकता का समन्वय, मानवतावा दृष्टि, भाव और भाषा का पूर्ण परस्परावलंब सौन्दर्यबोध, आडंबर हीनता एवं आत्मीयता जैसे वैशिष्ट्य दिनकर के गद्य साहित्य की पूर्णता के द्योतक हैं । उनका गद्य साहित्य जहाँ उनके समृद्ध व्यक्तित्व का द्योतन करता हैं वहीं पर हिन्दी गद्य साहित्य की समस्त संभावनाओं का प्रत्यक्षीकरण भी कराता है ।

दिनकर का गद्य साहित्य गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से काफ़ी महत्वपूर्ण हैं । उनका गद्य अकृत्रिम, सहज स्फूर्टित गद्य की झलक लिया हुआ है । दिनकर के गद्य साहित्य में गहरी समझदारी और मूल्य-विवेक के दर्शन होते हैं । उनका गद्य साहित्य स्थायी रहने में सक्षम है क्योंकि उनमें सहज विवेक-धर्म का स्पर्श है । दिनकर का गद्य साहित्य इतना विस्तृत, समृद्ध और महार्घ है कि उसे निकाल देने पर हिन्दी गद्य साहित्य का वृत्त काफी कुछ छोटा हो जायेगा । हमारा विश्वास है कि दिनकर के गद्य साहित्य के अध्ययन के बिना आधुनिक हिन्दी गद्य का इतिहास और उसका अध्ययन अपूर्ण रह जायेगा ।

ग्रंथ-सूची

1. अर्धनारीश्वर - दिनकर, उदयाचल, पटना, प्र. सं. 1956

2. अपने समय का सूर्य दिनकर - डा. मन्मथनाथ गुप्त, आलेख प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, प्र. सं. 1981

3. आधुनिक बोध - दिनकर, पंजाबी पुस्तक भंडार, दरीबाकलाँ, दिल्ली-110006, 1973.

4. आत्मा की आँखें - दिनकर, पटना, 1964.

5. आधुनिक हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास - डा. भगवत् स्वरूप मिश्र, साहित्य सदन, दिल्ली, 1951.

6. आस्था के चरण - डा. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2/35, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली - 6, प्र. सं. 1980

7. इतिहास के आँसू - दिनकर, पटना, 1951

8. उजली आग - दिनकर, उदयाचल, पटना प्र. सं. 1956.

9. उर्वशी - दिनकर, उदयाचल, पटना, प्र. सं. 1961.

10. कविश्री - दिनकर, पटना, 1957

11. काव्य की भूमिका - दिनकर, उदयाचल, पटना, प्र. सं. 1958.

12. काव्य के रूप - डा. गुलाबराय, आत्माराम एण्ड संस, प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता-कश्मीरी गेट, दिल्ली-6, चतुर्थ सं. 1958.

13. कुरुक्षेत्र - दिनकर, उदयाचल, पटना, चौबीसवाँ सं. 1976.

14. कोयला और कवित्व - दिनकर, पटना, 1964.

15. गद्य साहित्य का उद्भव और विकास - सं. डा. शंभूनाथ पाण्डेय, प्रकाशक-सरस्वती संवाद - मोतीकटरा, आगरा ।

16. चक्रवाल - दिनकर, पटना, 1956.

17. चित्तौड़ की साका - दिनकर, पटना, 1949.

18. चेतना की शिखा - दिनकर, उदयाचल, पटना, 1963.

19. छायावादोत्तर हिन्दी गद्य साहित्य - डा. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, विश्व विद्यालय प्रकाशन - के 4016 भैरवनाथ - वाराणसी - प्र. सं. 1968.

20. त्रिशंकु - अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र. सं. 1954.

21. दिनकर - डा. सावित्री सिन्हा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1967.

22. दिनकर एक मूल्यांकन - डा. जितेन्द्र नारायण सिंह, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1965.

23. दिनकर : सृष्टि और दृष्टि - डा. छोटेलाल दीक्षित, अभिलाषा प्रकाशन, ब्रह्मनगर, कानपुर, प्र. सं. 1978.

24. दिनकर की डायरी - दिनकर, उदयाचल, पटना, 1973.

25. दिनकर की सूक्तियाँ - दिनकर, पटना, 1965.

26. दिनकर की काव्यभाषा - डा. यतीन्द्र तिवारी, पुस्तक संस्थान, 109/50 ए नेहरू नगर, कानपुर-208012, प्र. सं. 1976.

27. दिनकर के गीत - दिनकर, पटना, 1973.

28. दिल्ली - दिनकर, पटना, 1954.

29. द्वन्द्वगीत - दिनकर, पटना, 1940

30. देश विदेश - दिनकर, उदयाचल, आर्यकुमार रोड, पटना, 1957.

31. धर्म नैतिकता और विज्ञान - दिनकर, उदयाचल, पटना, 1959.

32. धूप और धुआँ - दिनकर, अजन्ता प्रेस लि. पटना, 1951.

33. धूप और छाँह - दिनकर, पटना, 1946.

34. नये सुभाषित - दिनकर, पटना, 1957.

35. नीम के पत्ते - दिनकर, पटना, 1954.

36. नील कुसुम - दिनकर, पटना, 1954.

37. पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण - दिनकर, उदयाचल, पटना, प्र. सं. 1958.

38. प्रणभंग - दिनकर, राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी रोड, नई दिल्ली-110001, प्र. सं. 1929.

39. परशुराम की प्रतीक्षा - दिनकर, उदयाचल, पटना, 1963.

40. बापू - दिनकर, उदयाचल, पटना, 1947.

41. भारतीय एकता - दिनकर, पटना, 1970.

42. भारत की सांस्कृतिक कहानी - दिनकर, उदयाचल, पटना, 1955.

43. मधुशाला - बच्चन, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र.सं. 1947.

44. महाकवि दिनकर : उर्वशी तथा अन्य रचनाएँ - विमलकुमार जैन, भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली, प्र.सं. 1965.

45. मिट्टी की ओर - दिनकर, उदयाचल, पटना, तृ.सं. 1952.

46. मेरी यात्रायें - दिनकर, पटना, 1970

47. मिर्च का मजा - दिनकर, पटना, 1951.

48. मृत्तितिलक - दिनकर, चक्रवाल प्रकाशन, पटना-4, 1964.

49. युग चरण दिनकर - डा. सावित्री सिन्हा, नेशनल पब्लिषिंग हाऊस, 26 ए चन्द्रलोक, जवाहर नगर, दिल्ली, 1963.

50. रसवंती - दिनकर, पटना, 1940.

51. रश्मिरथी - दिनकर, पटना, 1952.

52. रश्मिलोक - दिनकर, पटना, 1974.

53. राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता- दिनकर, उदयाचल, पटना, 1958.

54. राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गाँधीजी - दिनकर, उदयाचल, पटना, 1968.

55. रामधारी सिंह दिनकर - दिनकर, पटना, 1960.

56. रेती के फूल - दिनकर, श्री अजन्ता प्रेस लि. पटना-4, द्वि. सं. 1956.

57. रेणुका - दिनकर, पटना, 1935.

58. लोकदेव नेहरू - दिनकर, पटना, 1965.

59. वट-पीपल - दिनकर, उदयाचल, पटना, 1961.

60. विवाह की मुसीबतें - दिनकर, पटना, 1974.

61. वेणुवन - दिनकर, उदयाचल, पटना, 1958.

62. शुद्ध कविता की खोज - दिनकर, केदारनाथ सिंह, उदयाचल, राजेन्द्र नगर, पटना-4, प्र. सं. 1966.

63. संघर्षिता - दिनकर, पटना, 1973.

64. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, राजपाल एन्ड सन्ज़, दिल्ली, 1956.

65. संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ - दिनकर, पटना, 1969.

66. सामधेनी - दिनकर, उदयाचल, पटना, 1947.

67. साहित्यमुखी - दिनकर, उदयाचल, पटना, 1968.

68. सीपी और शंख - दिनकर, पटना, प्र. सं. 1957.

69. सूरज का ब्याह - दिनकर, पटना, 1955.

70. हमारी सांस्कृतिक एकता - दिनकर, पटना, 1954.

71. हारे को हरिनाम - दिनकर, पटना, 1970.

72. हिन्दी गद्य साहित्य - डा. रामचन्द्र तिवारी, विश्व विद्यालय प्रकाशन, वारणासी, द्वि. सं. 1968.

73. हिन्दी समीक्षा स्वरूप और संदर्भ - रामदरस मिश्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटड, दिल्ली, 1979.

74. हिन्दी निबंधकार - जयनाथ नलिन, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली - 6.

75. हिन्दी ध्वन्यालोक - आनन्द वर्धन - व्याख्याकार विश्वेश्वर, गौतम बुक डिपो, आगरा ।

76. हिन्दी आलोचना की बीसवीं शती - डा. निर्मला जैन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवट लि., 2/38 अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्र. सं. 1992.

77. हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ - राजकमल प्रकाशन, द्वि. सं. 1958.

78. हिन्दी वाङ्मय - बीसवीं शती - सं. डा. नगेन्द्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्र. सं. 1972.

79. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - डा. शिवदानसिंह चौहान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.

80. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा सं. 2019, चौदहवाँ सं., काशी ।

81. हिन्दी साहित्य का निबंधात्मक इतिहास - आचार्य उमेश शास्त्री, देवनागर प्रकाशन, चौडा रास्ता, जयपुर ।

82. हे राम - दिनकर, पटना, 1969.

83. हुंकार - दिनकर, पटना, 1939

84. हिन्दी निबंध का विकास - डा. ओंकार नाथ शर्मा, अनुसंधान प्रकाशन, 87/249 आचार्य नगर, कानपुर, 1964.

ENGLISH BOOKS:

85. Encyclopedia Britanica

86. Ben Johnson, Vol.III Ed. Herford brothers, Oxford Universi press - London - 1954.

87. The Making of Literature - Scott James - Martin Secker & Warburg Ltd. 14, Carlisle Street, London W.1 - 1967.

88. Essays in Criticism - Mathew Arnold - Macmillan & Co., London , 1951.

[P.T.O]

पत्रिकाएँ

89. आजकल - जुलाई 1956, मार्च 1958.

90. आलोचना - जनवरी 1956, नवांक 56-57, जनवरी-जून 1957.

91. प्रतीक - जून 1951

92. समीक्षा - मई-जून 1974

93. समीक्षा - दिनकर स्मृति अंक, 11-12, मार्च अप्रैल 1975.

94. हिमालय - अप्रैल 1946.

95. हंस - मार्च 1941.

G5632
UNIVERSITY LIBRARY
COCHIN - 682 022
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY